वार्षिक राजभाषा पत्रिका

सिद्धार्थ: सरसों संदेश

अंक : 7 वर्ष 2016

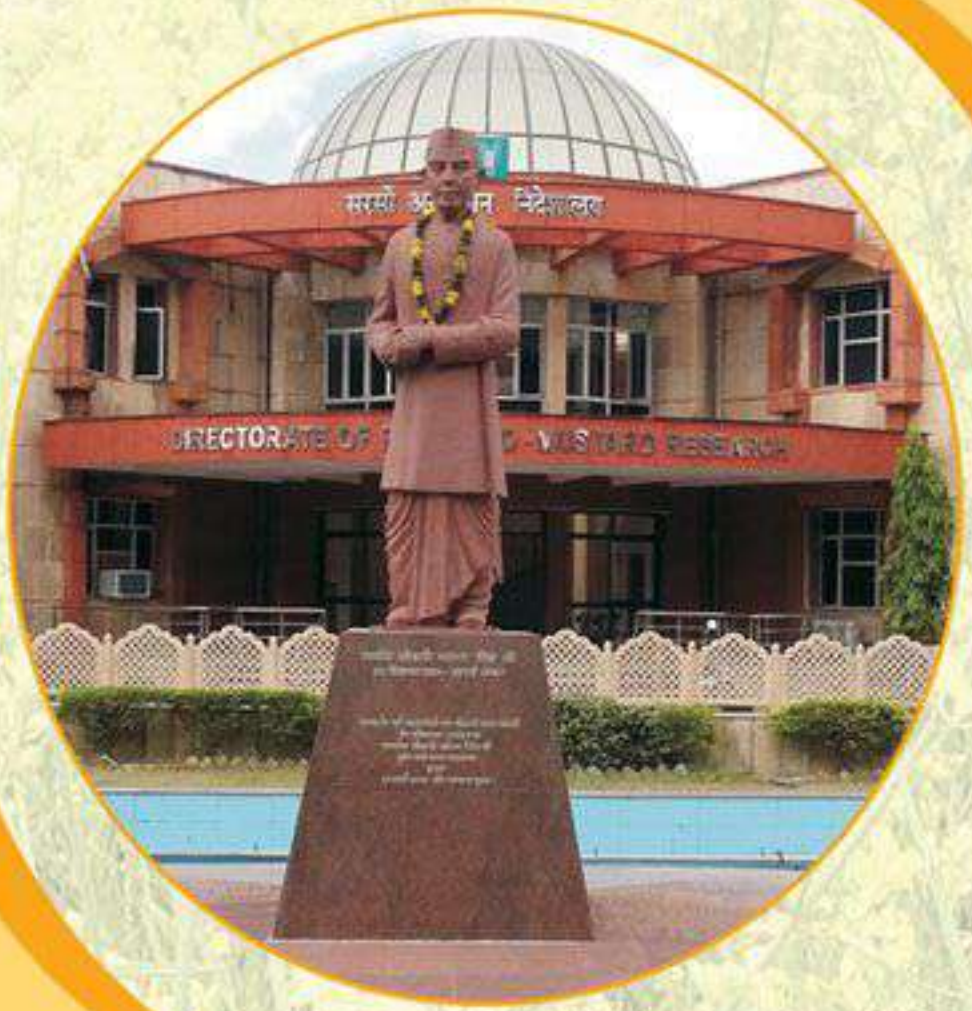

भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय
सेवर, भरतपुर - 321303 (राज.)
(आई.एस.ओ. 9001:2008 प्रमाणित संस्थान)

वार्षिक राजभाषा पत्रिका

सिद्धार्थ : सरसों संदेश

अंक : 7 वर्ष 2016

प्रधान सम्पादक

धीरज सिंह

सम्पादक मण्डल

विनोद कुमार

अनुभूति शर्मा

रामस्वरुप जाट

प्रिया मेधा

छाया चित्र : राकेश गोयल

प्रकाशक : निदेशक

सरसों अनुसंधान निदेशालय

सेवर, भरतपुर 321303 (राज.)

दूरभाष : 05644–260379, 2604

फैक्स : 05644–260565

वेबसाइट : www.drmr.res.in

ई–मेल : director.drmr@gmail.com

मुद्रण : वाई. के. ग्राफिक्स

आगरा. फोन : 0562–4040240, 9927144088

॥ अनुक्रमणिका ॥

1. सरसों की गुणवत्ता के नये आयाम : कनोला गोभी सरसों एवं कनोला राया — 1
वीरेन्द्र सरदाना एवं पुष्प शर्मा

2. राई–सरसों (क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता) ऑनलाइन डाटाबेस — 5
विनोद कुमार, प्रशान्त यादव एवं धीरज सिंह

3. भारत में राई–सरसों जननद्रव्य की स्थिति, महत्व, रखरखाव एवं उपयोग — 9
जोगी नन्जुन्दन, अजय कुमार ठाकुर, कुँवर हरेन्द्र सिंह, लाल सिंह, यदुनन्दन सेन एवं दीपिका शर्मा

4. मार्कर–सहायक चयन : सरसों में गुणवत्ता एवं रोग प्रतिरोध में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण विधि — 13
सुबरन सिंह, सुप्रिया, वी वी सिंह, पंकज शर्मा एवं धीरज सिंह

5. राई–सरसों में आई.पी.आर. की अहम भूमिका — 16
कृष्णकांत सिंह, विनोद कुमार एवं कुँवर हरेन्द्र सिंह

6. राई–सरसों डॉक्टर : रोगों की पहचान और प्रबंधन की एक वेब आधारित प्रणाली — 20
विनोद कुमार, अशोक शर्मा कुमार एवं प्रभू दयाल मीना

7. राई की उन्नतिशील प्रजातियों से अधिक उत्पादन की विधियाँ — 22
महक सिंह

8. सरसों में लगने वाले जड़ गलन रोग की पहचान एवं प्रबंधन — 25
प्रभू दयाल मीना, अनुभूति शर्मा, हरि सिंह मीना, रितिका गुप्ता एवं पंकज शर्मा

9. सरसों के तेल में आर्जीमोन की मिलावट, प्रभाव, पहचान एवं रोकथाम के उचित मापदंड — 27
रूपेन्द्र कौर, अशोक कुमार शर्मा, भगवत सिंह राठौड, अनुभूति शर्मा एवं धीरज सिंह

10. सरसों के उत्पादन एवं प्रबंधन हेतु नवीन तकनीकें — 29
सुनील कुमार, बजरंग लाल ओला, भगवत सिंह राठौड़, पंकज शर्मा एवं धीरज सिंह

11. राई–सरसों फसल में पोषक तत्वों का प्रबंधन — 32
मुकेश कुमार मीना एवं प्रभू दयाल मीना

12. सरसों : एक गुणकारी पौधा — 35
वैशाली, अनुभूति शर्मा, नरेश प्रताप सिंह

13. लेपीडियम सरसों कुल की महत्वपूर्ण औषधीय प्रजाति — 37
स्वर्णिम कुलश्रेष्ठ, अरूण कुमार, हरि सिंह मीना एवं सतेन्द्र सिंह

14. भूमि की लवणता एवं क्षारीयता दूर करने के उपाय — 40
मुकेश कुमार मीना एवं धीरज सिंह

15. सरसों: एक लाभकारी खाद्य तेल — 43
अनुभूति शर्मा, अरूण कुमार, हरि सिंह मीना, मुकेश कुमार मीना, रूपेन्द्र कौर एवं धीरज सिंह

16. सरसों उत्पादन में वैज्ञानिक विधियों का अनुकरण एवं किसानों का रवैया — 47
आर. एस. जाट, हरवीर सिंह एवं धीरज सिंह

इस पत्रिका के लेखो तथा कविताओं इत्यादि में दिये गये विचार लेखकों व रचनाकारों के है। संपादक मंडल उनके विचारों के लिए किसी भी प्रकार का उत्तरदायी नही है।

भाकृअनुप
ICAR

वार्षिक राजभाषा पत्रिका

सिद्धार्थ :
सरसों संदेश

॥ अनुक्रमणिका ॥

17. धान की परती भूमि में सरसों का भविष्य 50
आर. एस. जाट, हरवीर सिंह एवं धीरज सिंह

18. राई–सरसों में संरक्षण कृषि की संभावनाएं 53
हरवीर सिंह, आर. एस. जाट एवं धीरज सिंह

19. जलवायु परिवर्तन का सरसों उत्पादन पर प्रभाव 56
हरवीर सिंह, आर. एस. जाट एवं धीरज सिंह

20. खाद्य तेलों में विभिन्न अम्ल व उनकी गुणवता 58
निशा कुमारी एवं रामअवतार

21. ट्राइकोडरमा : उत्पादन, जीवन अवधि एवं प्रयोग 60
सुनील कुमार, बजरंग लाल ओला, अरबिन्द कुमार वर्मा,
भगवत सिंह राठौड़, पंकज शर्मा एवं धीरज सिंह

22. फसल उत्पादकता एवं मृदा स्वास्थ्य में सूक्ष्मजीवों की भूमिका 64
रामसिंह, सुबरन सिंह, आकांक्षा शर्मा एवं पंकज शर्मा

23. नैनो जैव प्रौद्योगिकी : कृषि अनुसंधान विकास की नई आशा 67
हरि सिंह मीना, अरूण कुमार, स्वर्णिम कुलश्रेष्ठ एवं अनुभूति शर्मा

24. जलवायु अनुकूल कृषि में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका 70
सुप्रिया, सुबरन सिंह, पी.के. राय, वी.वी. सिंह एवं धीरज सिंह

25. फाइटोरिमिडियेशन प्रौद्योगिकी : एक अवलोकन 74
यदुनन्दन सेन, दीपिका शर्मा, लाल सिंह, कुँवर हरेन्द्र सिंह,
अजय कुमार ठाकुर एवं महेश कुमार ठाकुर

26. परंपरागत कृषि विधियां अपनाकर करें फसल सुरक्षा 77
स्वर्णिम कुलश्रेष्ठ, हरि सिंह मीना, अरूण कुमार एवं सतेन्द्र सिंह

27. कृषि एवं कृषक कल्याण योजनाएँ 79
नीरज गुर्जर एवं पी.के. राय

28. भारत में जलवायु अनुरूप कृषि अनुसंधान की चुनौतियाँ एवं संम्भावनाऐं 82
यदुनन्दन सेन, दीपिका शर्मा, लाल सिंह, कुँवर हरेन्द्र सिंह, अजय ठाकुर,
जोगी नन्जुन्दन एवं महेश कुमार

29. सरसों में आधुनिक विधियाँ द्वारा खरपतवार प्रबंधन 88
बजरंग लाल ओला, अरबिन्द कुमार वर्मा, बी. एस. राठौड़,
पंकज शर्मा एवं धीरज सिंह

30. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजनाः किसानों की नई उम्मीद 91
अशोक कुमार शर्मा, विनोद कुमार एवं रूपेन्द्र कौर

31. पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम : पादप प्रजनक की दृष्टि में 95
प्रियमेधा

32. क्यों जरूरी है नीम कोटेड यूरिया 98
संदीप कुमार रस्तोगी

33. तिलहनी एवं दलहनी फसलों में जिप्सम का महत्व 99
आर. सी. सचान

संपादकीय

सरसों अनुसंधान निदेशालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका सिद्धार्थ सरसों संदेश का उद्देश्य है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहायकों को हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के लिए प्रेरित कर कार्यालयीन काम हिन्दी में करने के लिए त्वरित गति प्रदान करना है। किसी भी पत्रिका का संपादन मेरुदण्ड होता है इसलिए इस पत्रिका प्रकाशन के लिए हर वर्ष कुछ नये सदस्यों को सम्पादन मण्डल में जोड़ा जाता है ताकि स्टाफ की सम्पादकीय प्रतिभा का योगदान इस पत्रिका के प्रकाशन में लिया जा सके। इस पत्रिका में कृषि संबधी विशेषकर राई–सरसों सम्बधित सामान्य वैज्ञानिक लेखों को प्रकाशित किया जाता है। यह पत्रिका किसानों के साथ–साथ प्रसार कार्यकरताओं के लिए लाभप्रद है। सिद्धार्थ सरसों संदेश का यह सातवां अंक सरसों एवं सामान्य खेती से संबधित वैज्ञानिक एवं सामान्य लेखों से सुसज्जित है। इस पत्रिका के माध्यम से हमारा प्रयास होता है कि कृषि विशेषकर सरसों अनुंसधान एवं उत्पादक से जुड़े सभी लोग भाषा की शुद्धता की चिंता किए बिना, आम आदमी की समझ में आने वाली सरल हिन्दी में तकनीकी एवं सामान्य लेखन के लिए प्रेरित होंगें।

राजभाषा नीति कार्यान्वयन व हिन्दी के प्रोत्साहन हेतु श्रीमती सुजाता जेठी, निदेशक (राजभाषा) भा. कृ. अनु. प., नई दिल्ली एवं निदेशक, डॉ धीरज सिंह का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनके प्रेरणात्मक मार्गदर्शन से पत्रिका के सातवें अंक का प्रकाशन सम्पन्न हो सका। हम निदेशालय के समस्त अधिकारियों व कर्मचारियों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। अन्त में उन सभी लेख प्रदान कर्ताओं के भी धन्यवादी हैं जिनके लेखों की वजह से इस पत्रिका का प्रकाशन सम्भव हो पाया है। यह हर्ष का विषय है कि विषय विशेषज्ञों दारा लिखित वैज्ञानिक लेखों से कृषकों एवं जनसाधारण में इस पुस्तिका की लोकप्रियता बढ़ी है। फिर भी इस पत्रिका में उत्तरोत्तर सुधार के लिए आपके सुझाव और लेख सर्वदा आमंत्रित किये जाते हैं।

विनोद कुमार
अनुभूति शर्मा
रामस्वरुप जाट
प्रिया मेधा

सरसों की गुणवत्ता के नये आयाम : कनोला गोभी सरसों एवं कनोला राया

वीरेन्द्र सरदाना एवं पुष्प शर्मा
पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)

लगभग दो दशकों से भारत में खाद्य तेलों का उत्पादन एवं उपलब्धता इनकी आवश्यकता से काफी कम है। खाद्य तेलों का वर्तमान उत्पादन कुल आवश्यकता का मात्र 40 प्रतिशत ही है। देश की लगातार बढ़ रही जनसंख्या, क्रय शक्ति, आर्थिक प्रगति, तीव्र गति से बदल रहे खान–पान के ढंग तथा 'फास्ट फूड' के बढ़ते प्रचलन के फलस्वरूप खाद्य तेलों की लगातार बढ़ रही मांग (3–4%) प्रति वर्ष) इनके उत्पाद में वृद्धि (2%) से अधिक होने के परिणामस्वरूप देश में खाद्य तेलों की आवश्यकता व उत्पादन का अन्तर लगातर बढ़ रहा है जिसकी पूर्ति के लिए प्रति वर्ष पहले की तुलना में अधिक खाद्य तेलों का उत्पादन करना पड़ता है। गत वर्ष देश में खाद्य तेलों की पूर्ति के लिये विदेशों से लगभग 68,000 करोड़ रूपये का खाद्य तेल आयात किया गया। इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि क्षेत्रफल से हिसाब से तेल बीज फसलों में विश्व में पहले स्थान पर होने के बादजूद भारत विश्व में खाद्य तेल का सबसे बड़ा आयातक देश है। खाद्य तेलों की खपत में हो रही लगातार वृद्धि के साथ–साथ पिछले कुछ वर्षों में इनकी गुणवत्ता के प्रति भी लोगों की जागरूकता बढ़ी है।

ऐसा अनुमान है कि आने वाले वर्षों में खाद्य तेलों के आयात में कई बाधाएं आ सकती हैं जिससे इतनी बड़ी मात्रा में आयात करना न केवल मुश्किल अपितु पहले से अधिक महंगा हो सकता है। विश्वभर में खाद्य तेलों के जैविक ऊर्जा के लिये प्रयोग से इनकी उपलब्धता एवं कीमत दोनों पर आयात की दृष्टि से विपरीत असर पड़ने की संभावना है। ऐसे में समय की मांग यही है कि देश में ही इनका उत्पादन बढ़ाया जाये जिससे इनके आयात पर निर्भरता को कम किया जा सके तथा बहुमूल्य विदेशी मुद्रा को बचाया जा सके।

राया (ब्रासिका जनसिया), गोभी सरसों (ब्रासिका नैपस), अफरीकन सरसों (ब्रासिका कैरीनाटा), तोरिया (ब्रासिका रापा) व तारामीरा (ईरूका स्टाइवा) सरसों जाति की 'रबी' में उगाई जाने वाली मुख्य तेल बीज फसलें हैं जिनके तेल का प्रयोग मुख्य रूप से खाद्य तेल के रूप में किया जाता है। सामान्यत: सैचुरेटिड फैटी एसिड (पामिटिक एवं स्टीरिक एसिड) की कम मात्रा (10% से कम), आवश्यक फैटी एसिड जेसे कि लिनोलिक (ओमेगा 3) एवं लिनोलेनिक ऐसिड (ओमेगा 6) तथा औलिक ऐसिड (ओमेगा 9) एवं एंटी ऑक्सीडैंट से युक्त सरसों के तेल को खाना बनाने के लिए अन्य फसलों से उपलब्ध तेल की तुलना में अधिक गुणकारी माना जाता है। इसीलिए सरसों के तेल का उपयोग खाद्य तेल के रूप में बड़े पैमाने पर किया जाता है। तेल निकालने के पश्चात् इसके बीजों की 'खल' (तेल निकालने के बाद बचे बीज के अवशेष) का उपयोग प्रोटीन युक्त (35–40%) आहार के रूप में पशुओं एवं पक्षियों के लिए किया जाता है।

शोधकर्ताओं ने इस तथ्य को उगाजर किया है कि सरसों की परम्परागत किस्मों के तेल में 'ईरूसिक ऐसिड' की मात्रा अधिक (40–50%) होती है। जिस कारण ऐसे तेल के लगातार सेवन से इनके शरीर की धमनियों में जम जाने के कारण रक्त प्रवाह के प्रभावित होने से दिल के रोगों के आसार बढ़ जाते है। इसी प्रकार सरसों की इन परम्परागत किस्मों की 'खल' में गंधक युक्त ग्लूकोसिनोलेट्स की मात्रा लगभग 100–150 माइक्रोमोल्ज प्रति ग्राम या इससे अधिक होती है। अधिक 'ग्लूकोसिनोलेट्स' की खल के सेवन से पशुओं को भूख कम लगती है तथा इनमें आयोडीन के सेवन की क्षमता घटने से थाइरोइड तथा बांझपन से सम्बन्धित बीमारियां होने का खतरा बढ़ जाता है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये 'ईरूसिक ऐसिड' व 'ग्लूकोसिनोलेट्स' रहित सरसों की प्रजातियों/किस्मों को विकसित किया है जिन्हें विश्वभर में कनोला किस्मों के नाम से जाना जाता है। अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर 'कनोला किस्म' सरसों की उस किस्म को कहा जाता है जिसके तेल में ईरूसिक ऐसिड की मात्रा 2% से कम तथा खल में ग्लूकोसिनोलेट्स

की मात्रा 30 माइक्रोमोल्ज प्रति ग्राम से भी कम हो। इन किस्मों को 'डबल जीरो' (00) के नाम से भी जाना जाता है। इन कनोला किस्मों में 'ईरूसिक ऐसिड' की मात्रा घटने के साथ–साथ औलिक ऐसिड (मुफा) की मात्रा (60–70%) गैर–कनोला किस्मों (10–20%) की तुलना में काफी ज्यादा होती है जिससे इन्हें न केवल उच्च तापमान पर गर्म किया जा सकता है अपितु लम्बे समय तक इनके भण्डारण से भी इनकी गुणवता पर कोई विपरीत प्रभाव नही पड़ता। इस प्रकार कनोला सरसों का तेल मनुष्य के लिये तथा खल पशुओं के लिए अत्यन्त गुणकारी है। खाद्य तेलों की गुणवत्ता के प्रति उपभोगताओं की बढ़ती जागरूकता के परिणामस्वरूप देश में कनोला तेल की मांग लगातार बढ़ रही है। गत वर्ष उपभोक्ताओं की मांग को पूरा करने के लिए लगभग 3,56,000 टन कनोला तेल का आयात किया गया। जिससे आम सरसों के तेल की तुलना में बहुत अधिक (अढ़ाई से तीन गुणा) कीमत पर बेचा गया।

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना ने कनोला गोभी सरसों की किस्में – जी एस सी 7 तथा जी एस सी 6 एवं कनोला राया की किस्म आर एल सी 3 विकसित की हैं। इन किस्मों का विवरण तालिका नं. 1 में दिया गया है।

देश में कनोला सरसों के उत्पादन एवं उपयोग की अपार सम्भावनायें है तथा इनकी काश्त के ढंग परम्परागत सरसों के उत्पादन की तरह ही है। अतः समय की मांग है कि इनकी काश्त के लिए अनुमोदित उन्नत तकनीक अपनाकर देश में इस अति गुणकारी तेल व खल का उत्पादन बढ़ाया जाए।

सस्य क्रियाएं:

जमीन एवं खेत की तैयारी: रेतीली बलुई (मैरा) एवं बलुई–दोमह मृदा कनोला सरसों की खेती के लिये सर्वथा उपयुक्त है। ऊसर/कल्लर या अधिक पी.एच. (8 से अधिक) मान वाली जमीनों में सरसों की खेती न करें। खेत समतल हो तथा इसमें से अतिरिक्त पानी के निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिये।

क्योंकि सरसों का बीज आकार में बहुत छोटा होता है, इसके आशातीत, सुगम व एकसार अकुंरण के लिये खेत को अच्छी तरह से महीन व भुरभुरा तैयार करें। खेती की मिट्टी के प्रकार (हल्की/बलुई/मैरा/दोमह), पिछली फसल के अवशेषों एवं पिछली फसल में खरपतवार की संख्या को ध्यान में रखते हुये 2–4 जुताइयां करके सरसों की फसल के अनुरूप खेत तैयार किया जा सकता है। खेत की तैयारी का काम कल्टीवेटर या तवे वाले हल (डिस्क हैरो) की सहायता से बखूबी किया जा सकता है। खेत की बढ़िया तैयारी के लिये प्रत्येक जुताई के बाद पाटा (सुहागा) लगायें।

बुआई का उचित समय:

कनोला गोभी सरसों (जी एस सी 7, जी एस सी 6) की बुआई अक्तूबर के दूसरे सप्ताह से प्रारम्भ की जा सकती है जब औसत तापमान 21–25 सैंटीग्रेड हो। अच्छी पैदावार के लिये कनोला गोभी सरसों की बुआई अक्तूबर माह में ही पूरी कर लेनी चाहिए। कनोला राया (आर एल सी 3) की बुआई का उचित समय 15 अक्तूबर से 15 नवम्बर तक है। समय से बोई गई फसल न केवल दिसम्बर–जनवरी में पड़ने वाले पाले से बची रहती है, अपितु इस पर बीमारियो (झुलस रोग, सफेद कुंगी) एवं कीटों (विशेषकर चेपा) के हमले की संभावना भी कम ही रहती है। यदि औसत तापमान 27 डिग्री सैंटीग्रेड से अधिक हो तो उचित तापमान होने पर ही बुआई करनी चाहिए। इसी प्रकार सिफारिश किये गये समय से पहले ही यदि उचित तापमान हो तो बुआई पहले भी की जा सकती है।

तालिका 1: पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित सरसों की कनोला किस्मों का विवरण

किस्म का नाम	औसत पैदावार क्विंटल प्रति एकड़	तेल की मात्रा (%)	समय (दिन)	विशेष गुण
कनोला गोभी सरसों जी एस सी 7	8.9	40.5	154	– मोटे एवं काले रंग के दाने – सफेद रतुआ बीमारी के प्रति सहनशील
कनोला गोभी सरसों जी एस सी 6	6.1	39.0	145	– मध्यम ऊँचाई – कम समय में तैयार – रतुआ बीमारी के प्रति सहनशील
कनोला राया आर एल सी 3	7.3	41.5	145	– कनोला राया की देश की पहली किस्म – सफेद स्तुआ बीमारी के प्रति सहनशील – दानों का रंग पीला

बीज की मात्रा:

3.5–4.0 किलो प्रति हैक्टेयर (10,000 वर्ग मीटर)।

बुआई का ढंग:

कनोला गोभी सरसों के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सैंटीमीटर तथा कनोला राया के लिए 30 सैंटीमीटर रखें। इन फसलों की बुआई मशीन (सीड ड्रील) या पौरा विधि द्वारा हल से की जा सकती है। बुआई के समय खेत में पर्याप्त नमी सुनिश्चित करें। बीज की गहराई 4–5 सैंटीमीटर से अधिक नहीं होनी चाहियें। बुआई के लगभग तीन सप्ताह पश्चात् (बीज अकुंरण के लगभग दो–अढ़ाई सप्ताह बाद) पौधे से पौधे की दूरी 10–12 सैंटीमीटर रखते हुये फालतू पौधे खेत से निकाल दें ताकि प्रत्येक पंक्ति में पौधे एक दूसरे से समान दूरी पर हों। प्रायः यह देखने में आया है कि किसान इस क्रिया को अधिक महत्व नहीं देते या सिफारिश की गई बीज की मात्रा से काफी कम मात्रा में बीज का प्रयोग करते है जिससे खेत में पौधों की संख्या कम रहने से खाली स्थान में खरपतवार पनपते हैं तथा पैदावार पर विपरीत असर पड़ता है। यदि पौधों के बीच की दूरी असमान हो तो कम दूरी वाले पौधे खाद, पानी, प्रकाश एवं जमीन के लिये आपसी प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत कम वृद्धि के कारण शीघ्र पक जाते है जबकि आवश्यकता से अधिक दूरी वाले पौधे अधिक फैलाव के कारण देर से पकते हैं। परिणामस्वरूप सारी फसल एक समान नही पक पाती जिसका सीधा असर पैदावार पर पड़ता है।

यदि कनोला गोभी सरसों की बुआई समय पर न की जा सके तो नवम्बर में बुआई करते समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सैंटीमीटर से घटा कर 30 सैंटीमीटर कर दें ताकि पौधों की संख्या बढ़ने से देरी से बीजाई से होने वाले नुकसान की भरपाई की जा सके।

इसके अतिरिक्त बीजाई में बिलम्ब (नवम्बर–दिसम्बर) होने की स्थिति में कनोला गोभी सरसों की फसल की पहले से तैयार पौध लगाकर अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए 30–35 दिन की पौध की रोपाई सीधी बीजाई के लिये बताये गये ढंग से करें अर्थात् पंक्तियों की बीच की दूरी 45 सैंटीमीटर तथा प्रत्येक पंक्ति में पौधे से पौधे की दूरी 10 सैंटीमीटर रखें। इस विधि द्वारा अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये पौधों की रोपाई यथासम्भव शीर्घ अति शीघ्र करें। नवम्बर में रोपाई करके दिसम्बर में की गई रोपाई से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

पौधों की रोपाई गेहूं की बिजाई के लिये प्रयोग किये जाने वाले बैड प्लांटर की सहायता से बनाये गये 'बैड' के ऊपर भी की जा सकती है। इसके लिये प्रत्येक 'बैड' के ऊपर कनोला गोभी सरसों की दो पंक्तियां लगायें तथा पौधें से पोधे के बीच 10 सैंटीमीटर की दूरी रखें। 'बैड' के ऊपर रोपाई करने से समतल भूमि पर रोपाई द्वारा विकसित फसल की तुलना के 10–15 अधिक पैदावार के साथ–साथ लगभग 20–25 सिंचाई के पानी की भी बचत होती है।

पौध तैयार करने की विधि:

लगभग एक कनाल (500 वर्ग मीटर) में एक किलोग्राम बीज से एक हैक्टेयर में रोपाई के लिये पर्याप्त कनोला गोभी सरसों की पौध तैयार की जा सकती है। खेत खाली होने तथा रोपाई के समय/तिथि को ध्यान में रखते हुये 30–35 दिन पहले पौध की बिजाई करें। पौध की बिजाई के लिये मध्यम उपजाऊ शक्ति वाले खरपतवातर रहित, समतल तथा पर्याप्त नमी वाले खेत का चुनाव करें। खेत की तैयारी के समय खेत में 11.25 किलोग्राम यूरिया तथा 10 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट (500 वर्ग मीटर) अच्छी तरह मिला दें। यदि खेत में किसी कारणवश नमीं कम हो तो बिजाई के बाद हल्की सिंचाई करें। बीज अंकुरण के लगभग 10 दिन बाद हल्की सिंचाई करे। तत्पश्चात आवश्यकतानुसार एक या दो बार सिंचाई करें।

उर्वरक प्रबन्ध:

जहाँ तक सम्भव हो, बिजाई से पहले खेत की मिट्टी की जांच करवायें तथा रिपोर्ट के आधार पर ही उर्वरकों का प्रयोग करें। औसत/मध्यम उपजाऊ शक्ति वाली जमीन में कनोला गोभी सरसों तथा कनोला राया की फसलों के उत्पादन के लिये प्रति हैक्टेयर 225 किलोग्राम यूरिया (100 किलोग्राम नाइट्रोजन) तथा 187 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट (30 किलोग्राम फास्फोरस) का प्रयोग करें। कम उपजाऊ शक्ति वाली रेतीली जमीन में इन फसलों के लिये विशेषकर कनोला गोभी सरसों के लिये 325 किलोग्राम यूरिया (150 किलोग्राम नाइट्रोजन) तथा 187 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करें। उपरोक्त अनुमोदित यूरिया (नाइट्रोजन) की आधी मात्रा तथा सिंगल सुपर फास्फेट (फास्फोरस) की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय, अन्तिम जुताई से पहले खेत में डाल दें। यूरिया की बाकी आधी मात्रा प्रथम सिंचाई के बाद (बिजाई के लगभग 4 सप्ताह बाद) डालें। यदि मिट्टी में पोटाशियम तत्व कम हो तो इसकी पूर्ति के लिये 25 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश खाद प्रति हैक्टेयर की दर से बिजाई से पहले खेत की तैयारी के समय डालें। इसी प्रकार जिंक तत्व की कमी वाले खेत में इन

फसलों के लिये खेत की तैयारी के समय 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट हैप्टाहाइड्रेट (21 जिंक) या 16 किलोग्राम जिंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट (33 जिंक) प्रति हैक्टेयर डालें।

फास्फोरस की पूर्ति के लिये सिंगल सुपर फास्फेट उर्वरक का प्रयोग उत्तम है क्योंकि इसमें फास्फोरस (16) के साथ–साथ लगभग 10 गंधक (सल्फर) भी होता है जो तेल बीज फसलों के अत्यन्त आवश्यक तत्व है। यदि सिंगल सुपर फास्फेट बाजार में उलब्ध न हो तो फास्फोरस की पूर्ति के लिये 65 किलोग्राम डी.ए.पी. उर्वरक प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करें तथा सल्फर की पूर्ति के लिये 125 किलोग्राम जिप्सम प्रति हैक्टेयर का प्रयोग करें। डी.ए.पी. के प्रयोग से फास्फोरस के अतिरिक्त लगभग 25 किलोग्राम यूरिया के बराबर नाइट्रोजन तत्व की आपूर्ति भी हो जाती है जिसको ध्यान में रखते हुये बिजाई के समय डाली जाने वाली नाइट्रोजन की मात्रा में कटौती करें तथा 113 किलोग्राम की बजाये 88 किलोग्राम यूरिया प्रति हैक्टेयर डालें। इसी प्रकार यदि जिप्सम भी उपलब्ध न हो तो गंधक की कमी वाले खेतों में इसकी पूर्ति के लिये 92 किलोग्राम सल्फेटिड़ फास्फेट जिसमें 15 नाइट्रोजन, 33 फास्फोरस एवं 21 गंधक तत्व होते हैं, का प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करें। सल्फेटिड फास्फेट के प्रयोग की स्थिति में भी बिजाई के समय यूरिया की मात्रा 113 किलोग्राम से घटाकर 80 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर कर दें। तत्पश्चात् प्रथम सिंचाई के बाद पहले से बताई गई बाकी बची आधी यूरिया (112 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर) का प्रयोग करें। पौध तैयार करके खेत में रोपाई वाली फसल (समतल अथवा बैडो के ऊपर) में भी उपरोक्त बताई गई खादों की मात्रा का प्रयोग करें।

खरपतवार नियन्त्रण:

कनोला गोभी सरसों तथा कनोला राया के खेत में यदि खरपतवार की समस्या हो तो बिजाई के लगभग 3 सप्ताह बाद एक गुड़ाई करें तथा यदि आवश्यकता पड़े तो पहली गुड़ाई के लगभग 3 सप्ताह बाद दूसरी गुड़ाई करें। इसके अतिरिक्त खरपतवार नाशक का प्रयोग करके भी इन पर समय रहते, कम खर्च में तथा अधिक प्रभावी ढंग से नियन्त्रण पाया जा सकता है। कनोला गोभी सरसों में खरपतवार नियन्त्रण के लिये 1 लीटर 560 मिली लीटर ट्रैफलान 48 ई.सी. (ट्राइफ्लूरालिन) बिजाई से पहले या 1 लीट 625 मिली लीटर बासालीन 45 ई. सी. (फ्लूकलोरालीन) बिजाई से पहले या 750 ग्राम आइसोप्रोटुरान 75 डबल्यू.पी. प्रति हैक्टेयर खरपतवार उगने के बाद परन्तु प्रथम सिंचाई से पहले प्रयोग करें। पौध तैयार करके रोपाई द्वारा लगाई गई कनोला गोभी सरसों में खरपतवार नियन्त्रण के लिए पौध की रोपाई के तुरन्त बाद परन्तु प्रथम सिंचाई से पहले, 750 ग्राम आइसोप्रोटुरान 75 डबल्यू.पी. प्रति हैक्टेयर का छिड़काव करें।

कनोला राया में खरपतवार नियन्त्रण के लिये 1 लीटर 560 मिली लीटर ट्रैफलान 48 ई.सी. (ट्राइफ्लुरालिन) का छिड़काव प्रति हैक्टेयर की दर से बिजाई से पहले करें अथवा बिजाई के 1–2 दिनों के अन्दर या बिजाई के 25–30 दिन बाद एक किलोग्राम आइसोप्रोटुरान 75 डबल्यू.पी. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करके भी खरपतवारों पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। छिड़काव (स्प्रे) के लिये लगभग 500 लीटर पानी प्रति हैक्टेयर का प्रयोग करें तथा केवल कट (फ्लैट फैन या फ्लड जैट) नोजल का ही प्रयोग करें।

सिंचाई:

इन फसलों (किस्मों) में पहली सिंचाई विरलीकरण एवं एक गुड़ाई (बिजाई के लगभग 3–4 सप्ताह बाद) के बाद करें। फूल बनने की अवस्था पर दूसरी सिंचाई करें। कोहरा या पाला पड़ने की स्थिति में आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करें। इन फसलों में तीसरी तथा सामान्यत: अन्तिम सिंचाई फलियां बनने तथा दाने भरने की अवस्था पर करें।

कटाई एवं गहाई:

जब फलियों का रंग पीला पड़ने लगे, शाखाओं का रंग बदलने लगे तथा दाने गहरे भूरे या काले रंग के हो जाये तभी फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। कनोला राया के दानों का रंग पीला है। कनोला गोभी सरसों की फलियों को खुलने एवं दानों को बिखरने से बचाने के लिये इसकी कटाई का काम प्रात: या शाम के समय करें जब वातावरण में नमी हो। कटी हुई फसल (कनोला गोभी सरसों एवं कनोला राया दोनों) को लगभग एक सप्ताह तक खेत में सूखने दें। तत्पश्चात् गहाई का काम आम गहाई मशीन (थ्रेशर) से कम लागत में तथा काफी कम समय में किया जा सकता है। इसके लिये 'थ्रेशर' की प्रत्येक पंक्ति में सिर्फ दो किल्लिया (सरिये) रहने दें तथा किल्लियों से कन्केव की दूरी बढ़ा कर लगभग 2–5 सैंटीमीटर कर दें। किल्लियों के बीच 6 मिलीमीटर चौड़ाई वाली कन्केव का प्रयोग करें तथा थ्रेशर के सिलैंडर की गति कम कर दें (गेहूं की गहाई के मुकाबले तीन–चौथाई)। दानों की सफाई के लिये ऊपरी सतह पर तीन मिलीमीटर मोटी जाली का प्रयोग करें तथा नीचे वाली जाली के स्थान पर चादर का प्रयोग करें। गहाई के बाद पुन: दानों को भली भांति सुखाने के बाद इनका भण्डारण करें।

राई-सरसों (क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता) ऑनलाइन डाटाबेस

विनोद कुमार, प्रशान्त यादव एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

यह ऑनलाइन डेटाबेस राई–सरसों फसलों के लिए क्षेत्र, उत्पादन, उत्पादकता, विकास के रुझान, प्रतिशत हिस्सेदारी जैसे विविध पहलुओं को शामिल करके सरसों उत्पादक देशों, भारत के राज्यों, जिलों और समय अवधियों के सांख्यिकी आंकड़ों का उपयोग करके राई–सरसों क्षेत्र की एक व्यापक तस्वीर प्रस्तुत करता है। इस डाटाबेस में दुनियाभर के राई–सरसों उगाने वाले 72 देशों के पिछले 54 वर्षों के आँकड़े दर्ज हैं। भारत के राई–सरसों उगाने वाले 26 राज्यों के पिछले 48 वर्षों के आँकड़े तथा इन राज्यों के पिछले 17 वर्षों के राई–सरसों से संबन्धित जिलेवार आँकड़े दर्ज हैं। वर्ष 2014–15 के आँकडों की उपलब्धता के साथ इस डाटाबेस को यथासंभव आधुनिक बनाया गया है।

विश्व की जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान दर को देखते हुए यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2050 तक विश्व की कुल जनसंख्या 9 अरब से भी अधिक हो जाएगी। वर्तमान में भोजन व पोषण की वैश्विक समस्या को देखते हुए भविष्य में इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए भोजन उपलब्ध कराना एक बहुत बड़ी चुनौती है। भोजन के साथ ही कुपोषण की समस्या से निपटने के लिए हमें भोजन में विविधता तथा अधिक पोषण प्रदान करने वाली फसलों का उत्पादन बढ़ाना होगा।

भारत की खाद्य सुरक्षा में तिलहनी फसलों का अहम योगदान है। खाद्य तेलों की बढ़ती माँग तथा उत्पादन में स्थिरता के कारण भारत को प्रतिवर्ष लगभग 56 हजार करोड़ रू. मूल्य का खाद्य तेल आयात करना पड़ता है। भारत खाद्य तेलों का आयात मुख्यतः मलेशिया, इण्डोनेशिया तथा थाइलैण्ड से करता है। भारत में खाद्य तेलों में राई–सरसों परिवार की फसलें प्रमुख है। इनमें लगभग 90 प्रतिशत योगदान भारतीय सरसों (ब्रैसिका जंसिया) का है। किसी देश की अर्थव्यवस्था में कृषि एवं विभिन्न फसलों के योगदान का आँकलन उस फसल के उगाए गए क्षेत्रफल, कुल उत्पादन तथा उत्पादकता आदि के आँकड़ों पर निर्भर करता है। राई–सरसों परिवार की फसलों का क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता संबंधी आँकड़ों का इस फसल द्वारा देश की अर्थव्यवस्था में योगदान तथा वैज्ञानिक अनुसंधान की दिशा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन आँकड़ों की माँग एवं आपूर्ति तथा बाजार मूल्य निर्धारण आदि में भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

राई–सरसों से संबंधित ये आँकड़े प्रायः विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त किए जाते हैं जहाँ ये विभिन्न रूपों में दर्ज होते हैं। अतः राई–सरसों की फसल से संबंधित वि वसनीय आँकड़ों के एकसमान रूप में एक स्थान पर उपलब्ध होने से विभिन्न योजनाओं के निर्माण तथा इस फसल के विकास के लिए चल रहे कार्यक्रमों के प्रभाव की समीक्षा करने में सहायता होती है। इसके साथ ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में राई–सरसों के उत्पादन से जुड़ी समस्याओं की पहचान एवं उनके निदान के प्रयास में भी सुविधा रहती है। इससे राई–सरसों की पैदावार बढ़ाने के लिए नए क्षेत्रों की पहचान करने में भी मदद मिलेगी।

राई–सरसों के विश्व में तथा मुख्य रूप से भारत में क्षेत्रफल, उत्पादन, एवं उत्दकता के विश्वसनीय आँकड़ों की एक स्थान पर उपलब्धता की आवश्यकता को देखते हुए भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय द्वारा एक ऑनलाइन डाटाबेस का निर्माण किया गया है जिसमें ये सभी सूचनाएँ एक स्थान पर उपलब्ध कराई गयी है। राई–सरसों के विश्वस्तरीय क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता सम्बन्धी डाटाबेस ''रेपसीड–मस्टर्ड ए पी वाई इन्फार्मेशन सिस्टम'' का उद्घाटन डा. जे.एस. संधू (उपमहानिदेशक, फसल विज्ञान) द्वारा दिनांक 19–02–2016 को भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय में किया गया।

अभी इस डाटाबेस में दुनियाभर के राई–सरसों उगाने वाले 72 देशों के पिछले 54 वर्षों के आँकड़े दर्ज हैं। भारत के राई–सरसों उगाने वाले 26 राज्यों के पिछले 48 वर्षों के आँकड़े तथा इन राज्यों के पिछले

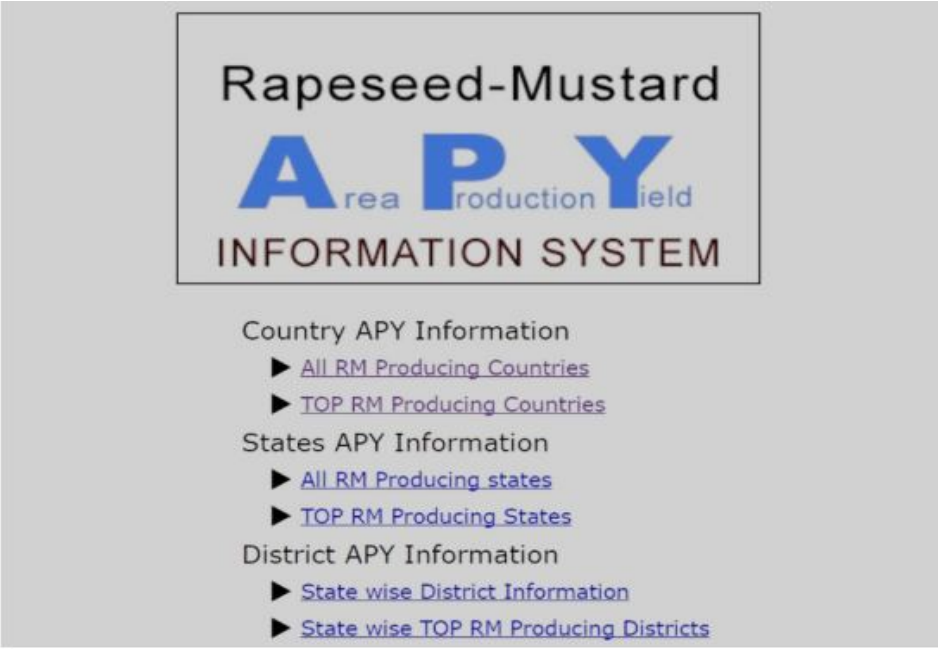

चित्र 1: रेपसीड–मस्टर्ड एरिया, प्रोडक्शन, यील्ड इन्फार्मेशन सिस्टम के मुख्य पृष्ठ का स्क्रिन शॉट

17 वर्षों के राई–सरसों से संबन्धित जिलेवार आँकड़े दर्ज हैं। वर्ष 2014–15 के आँकडों की उपलब्धता के साथ इस डाटाबेस को यथासंभव आधुनिक बनाया गया है।

इस डाटाबेस का उपयोग उपयोगकर्ता के लिए अत्यन्त ही सहज एवं सरल है तथा इसमें आँकड़ों को विभिन्न रूपों में प्रदर्शित किया गया है जिससे उपयोगकर्ता विश्व तथा देश में राई–सरसों की स्थिति को आसानी से समझ सके। यह डाटाबेस भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय की वेबसाइट (www.drmr.res.in/rmdata/rmAPYinfo.php) पर उपलब्ध है। इस डाटाबेस का प्रयोग कोई भी व्यक्ति बिना किसी शुल्क के कर सकता है। इस डाटाबेस के निमार्ण के लिए सर्वप्रथम विश्व के लगभग 72 देशों के पिछले 54 वर्षों के आँकड़ों को विभिन्न स्त्रोतों से एकत्रित कर उन्हें क्रमशः क्षेत्रफल (हैक्टेयर), उत्पादन (टन) तथा उत्पादकता (टन/है.) के एकसमान अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप परिवर्तित किया गया। इसके बाद इन आँकड़ों को व्यवस्थित कर इन्हें विभिन्न प्रारूपों में ढ़ाला गया तथा आसानी से समझने योग्य अवस्था में रूपान्तरित किया गया। इसके ग्राफिक यूजर इण्टरफेस के निर्माण के लिए एच.टी.एम.एल. व सी.एस.एस. का प्रयोग किया गया है। इस डेटाबेस में पी.एच.पी.मिडिलवेयर का कार्य करता है तथा माईसीक्वल वैकएण्ड के लिए प्रयोग किया गया है। इस इनफॉर्मेशन सिस्टम में सरसों के अलग–अलग मापदण्ड (क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता) के आधार पर अलग–अलग सर्वाधिक उत्पादन करने वाले देशों की सूची प्राप्त की जा सकती है। चूँकि यह एक ऑनलाइन निःशुल्क डाटाबेस है, इसलिए इंटरनेट की सहायता से कोई भी व्यक्ति कहीं भी बैठकर इसमें उपलब्ध आँकड़ों की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

इस डाटाबेस में सूचनाएँ विभिन्न रूपों में प्रदर्शित की गई है जिससे प्रयोगकर्ता को आँकड़ों को समझने में आसानी होती है। उदाहरण के लिए राई–सरसों उगाने वाले दुनियाभर के 72 देशों में से क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता के आधार पर श्रेष्ठ देशों को जानने के लिए विकल्प उपलब्ध कराया गया है (चित्र 2), जिससे प्रयोगकर्ता आसानी से सूचना प्राप्त कर सके। इसमें क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता के अनुसार श्रेष्ठ देशों की संख्या (1–10) चुनने का विकल्प भी दिया गया है।

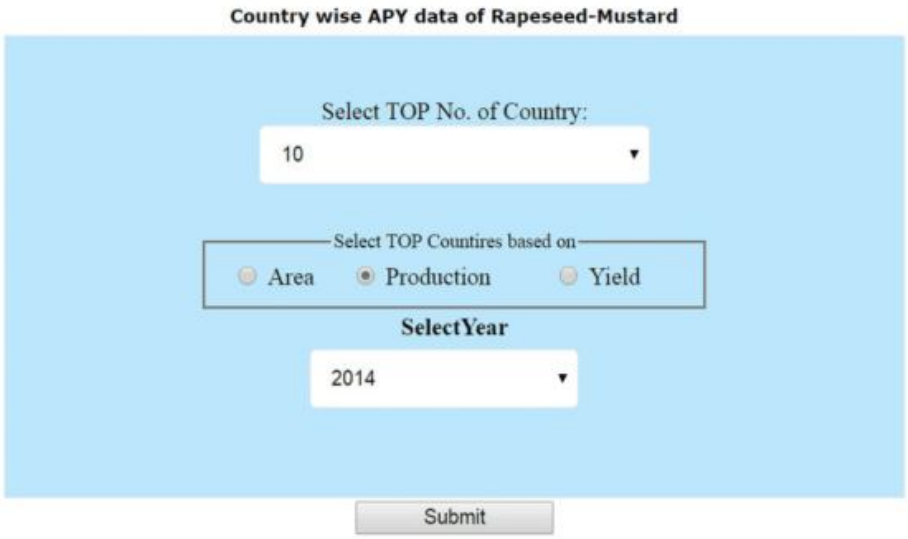

चित्र 2: रेपसीड मस्टर्ड एपीवाई इन्फार्मेशन सिस्टम में विश्व के राई–सरसों उगाने वाले प्रमुख देशों की जानकारी हेतु डायलॉग बॉक्स। इस बाक्स में राई–सरसों के क्षेत्रफल (एरिया) कुल उत्पादन (प्रोडक्शन) तथा उत्पादकता (यील्ड) के चयन के आधार पर सर्वश्रेष्ठ 10 देशों की अलग–अलग सूची देख सकते हैं।

ऑनलाइन डाटाबेस से लाभ :

(1) **आसान पहुँच** : ऑनलाइन होने से तात्पर्य है कि डाटाबेस वर्ल्ड वाइड वेब (www) यानी इण्टरनेट पर उपलब्ध है। इसके कारण कहीं से भी इण्टरनेट की सहायता से कम्प्यूटर, टैबलेट व स्मार्टफोन द्वारा डाटाबेस में दर्ज आँकड़ों को प्राप्त किया जा सकता है।

(2) **कम रख–रखाव** : चूँकि ऑनलाइन डाटाबेस के लिए अलग से कोई पुस्तकालय या प्रिंटिंग तंत्र आदि बनाने की आवश्यकता नहीं होती है, इससे इसके रख–रखाव में आसानी रहती है। क्योंकि इसमें सारी सूचनाएँ सॉफ्ट कॉपी के रूप में एक सर्वर में दर्ज रहती हैं इसलिए सूचनाओं का प्रबन्धन बहुत आसानी से हो जाता है। इसे केवल एक इंटरनेट युक्त सामान्य कम्प्यूटर एवं सर्वर की सहायता से संचालित किया जाता है तथा इसका रख–रखाव कम खर्चीला एवं सरल है।

(3) **प्रयोग में सरल** : राई–सरसों संबंधित यह डाटाबेस प्रयोग में बेहद सरल है। यह सरल अंग्रेजी भाषा में बनाया गया है तथा प्रथम पृष्ठ पर ही देश, राज्य तथा जिलेवार जानकारी हेतु सूची उपलब्ध है। प्रत्येक सूची पर माउस द्वारा क्लिक करते ही संबंधित सूची प्रस्तुत होती है। इसमें वांछित जानकारी के लिए देश, राज्य, जिला एवं वर्ष आदि चयन करके वांछित जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार केवल तीन क्लिक द्वारा ही राई–सरसों से संबंधित दुनियाभर की जानकारी इस डाटाबेस द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

(4) **सूचनाओं को साझा करना सुगम** : ऑनलाइन डाटाबेस में उपलब्ध सूचनाओं को साझा करना अत्यन्त सरल होता है। इसमें दर्ज आँकड़ों को अपने कम्प्यूटर

Rapeseed-Mustard APY Data
of
TOP **10** PRODUCING COUNTRIES
during **2014**

ID	Country	Area (Hectares)	Production (Tonnes)	Yield (Kg./Hect.)
WL	World	35785227	70954407	1983
CA	Canada	8074600	15555100	1926
CN	China	6550015	11600015	1771
IN	India	7200000	7877000	1094
GF	Germany	1394200	6247400	4481
FR	France	1503000	5522980	3675
AU	Australia	2721000	3832000	1408
PL	Poland	951108	3275806	3444
UK	United Kingdom	675000	2460000	3644
UE	Ukraine	865300	2198020	2540

Data source:

- FAO and USDA data bases for several years
- Statistics at a glance of several years published by DAC
- Authentic source on Internet such as www.eands.dacnet.nic.in, etc

चित्र 3: राई–सरसों के वर्ष 2014–15 के कुल उत्पादन के आधार पर विश्व एवं सर्वाधिक उत्पादन करने वाले दस देशों की सूची।

Rapeseed-Mustard APY Data
of
TOP **10** PRODUCING STATES
during **2013-14**

ID	State	Area (Hectares)	Production (Tonnes)	Yield (Kg./Hect.)
RJ	Rajasthan	3080.0	3830.0	1244
MP	Madhya Pradesh	810.0	900.0	1111
HR	Haryana	540.0	880.0	1630
UP	Uttar Pradesh	660.0	770.0	1167
WB	West Bengal	459.5	489.9	1066
GJ	Gujarat	279.6	349.8	1251
AS	Assam	260.0	150.0	577
JH	Jharkhand	216.6	136.3	629
BR	Bihar	89.9	100.4	1117
JK	Jammu and Kashmir	60.3	56.4	935

Data source:

- Statistics at a glance of several years published by DAC
- Documents published by state govts. time to time
- Authentic source on Internet such as www.eands.dacnet.nic.in, etc

चित्र 4: भारत के राई–सरसों उगाने वाले विभिन्न राज्यों को वर्ष 2013–14 के कुल उत्पादन आँकड़ों के अनुसार अवरोही क्रम में प्रस्तुत किया गया है।

Rapeseed-Mustard APY Data
of
TOP 10 PRODUCING Districts in **India**
during **2014-15**

States	ID	Districts	Area (Hectares)	Production (Tonnes)	Yield (Kg./Hect.)
Uttar Pradesh	UP01	Agra	45613	59793	1311
Uttar Pradesh	UP53	Mathura	39052	45650	1169
Uttar Pradesh	UP18	Budaun	23984	29554	1232
Uttar Pradesh	UP46	Kheri	29860	20674	692
Uttar Pradesh	UP02	Aligarh	19731	19680	997
Uttar Pradesh	UP71	Sitapur	25374	15874	626
Uttar Pradesh	UP23	Etah	10016	14802	1478
Uttar Pradesh	UP44	Kasganj (Kanshiram Nagar)	9210	13465	1462
Uttar Pradesh	UP42	Kanpur Dehat (Ramabai Nagar)	20675	13191	638
Uttar Pradesh	UP12	Balrampur	18087	12788	707

Data source:

- Statistics at a glance of several years published by DAC
- Documents published by state govts. time to time
- Authentic source on Internet such as www.eands.dacnet.nic.in, etc

चित्र 5: भारत के राई–सरसों उगाने वाले विभिन्न जिलों को वर्ष 2014–15 के कुल उत्पादन आँकड़ों के अनुसार अवरोही क्रम में प्रस्तुत किया गया है।

पर सुरक्षित भी कर सकते हैं। इण्टरनेट पर उपलब्ध विभिन्न साधनों जैसे ई–मेल, गूगल–ड्राईव तथा क्लाउड कम्प्यूटिंग के माध्यम से सूचनाएँ त्वरित एवं आसानी से साझा कर सकते है।

(5) **समय की बचत :** ऑनलाइन डाटाबेस के प्रयोग से बहुमूल्य समय की बचत होती है। इसे कहीं से भी इंटरनेट द्वारा उपयोग किया जा सकता है तथा राई–सरसों से संबंधित दुनियाभर के विश्वसनीय आँकड़े केवल तीन क्लिक द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं। इस डाटाबेस में विश्व के विभिन्न देशों से लेकर भारत के जिलों तक की जानकारी अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप एक ही स्थान पर उपलब्ध है।

चित्र 3 में वर्ष 2014 में कुल उत्पादन के अनुसार सर्वश्रेष्ठ 10 देशों को दर्शाया गया है। इस सूचना के अनुसार राई–सरसो के कुल 7.8 मि. टन उत्पादन के साथ भारत तीसरे स्थान पर रहा। यदि क्षेत्रफल के अनुसार देखा जाए तो 7.2 मि. हैक्टेयर क्षेत्रफल के साथ गतवर्ष भारत विश्व में दूसरे स्थान पर रहा।

रेपसीड–मस्टर्ड एपीवाई ऑनलाइन डाटाबेस के द्वारा राई–सरसों के उत्पादन संबंधी आँकड़ों की सुगम उपलब्धता के कारण राई–सरसों से जुडे. किसानों, वैज्ञानिको, व्यापारियों एवं नीति निर्धारकों को देश में तिलहनी फसलों के उत्पादन को बढ़ाने संबंधी कार्य करने में सुविधा होगी तथा खाद्य तेलों के मामले में देश को आत्मनिर्भर बनाने में आसानी होगी। इस डाटाबेस के प्रयोग से सरसों की खेती में क्षैतिज वृद्धि के लिए नए क्षेत्रों (जैसे–पूर्वोत्तर एवं दक्षिण भारतीय राज्यों) के निर्धारण में भी आसानी होगी।

भारत में राई-सरसों जननद्रव्य की स्थिति, महत्व, रखरखाव एवं उपयोग

जोगी नन्जुन्दन[1], अजय कुमार ठाकुर[2], कुँवर हरेन्द्र सिंह[2], लाल सिंह[2], यदुनन्दन सेन[2] एवं दीपिका शर्मा[2]

[1]भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, वैलिंगटन, तमिलनाडू

[2]भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

पादप आनुवांशिक संसाधन किसी भी फसल सुधार कार्यक्रम के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा भविष्य की खाद्य व पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने का समाधान हैं। तेल उत्पादन करने वाली ब्रासिका भारतीय उपमहाद्वीप में विस्तृत रूप से वितरित है। उपलब्ध जीन पूल का सटीक मूल्यांकन तथा निष्कर्षों का प्रचार–प्रसार उनके उपयोग के लिए आवश्यक है। जैविक स्थिति के आधार पर राष्ट्रीय जीन बैंक कुल ब्रासिका जनन द्रव्य के 88 प्रतिशत लैंड रेसेज रखती है तथा बाद में कुछ संभावित बहुमूल्य लक्षणों (6 प्रतिशत), विमुक्त तथा अधिसूचित प्रजातियों के द्वारा किस्मों में सुधार लाया जाता है। 15 वंशों तथा 46 जातियों से सम्बंधित वन्य जाति जननद्रव्य का एक बड़ा संग्रह राष्ट्रीय पादप जैव–प्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र (एनआरसीपीबी), भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आईएआरआई), नई दिल्ली में अनुरक्षित है। सरसों अनुसंधान निदेशालय (डीआरएमआर), भरतपुर, राई–सरसों फसल के लिए मौजूद राष्ट्रीय सक्रिय जननद्रव्य स्थल फसल सुधार हेतु बहुमूल्य जननद्रव्य के रखरखाव, उत्थान तथा वितरण के लिए जिम्मेदार है। सरसों अनुसंधान निदेशालय माँग के आधार पर प्रजनकों को बीज प्रदान करने के लिए सक्रिय संग्रह के रूप में लघुकालिक (3 वर्षों तक) बीज संरक्षण करने हेतु भी जिम्मेदार है। निदेशालय भारत के विभिन्न कृषि जलवायवीय क्षेत्रों से एकत्रित ब्रासिका जननद्रव्य की प्रचुर विविधता रखता है।

राई–सरसों भारत में तिलहनी फसलों का महत्वपूर्ण समूह है। ये फसलें मानव आहार में खाद्य तेल के स्त्रोत के रूप में आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। इस समूह में 8 कृषि फसलें सम्मिलित हैं। इनमें विभिन्न फसलें उदाहरणार्थ–भारतीय सरसों, तोरिया, पीली सरसों, भूरी सरसों, गोभी सरसों, करन राय, बनारसी राई तथा तारामीरा सम्मिलित हैं। पादप आनुवांशिक संसाधन किसी भी फसल सुधार कार्यक्रम के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा भविष्य की खाद्य व पोषण सुरक्षा को सुनिश्चित करने का समाधान हैं। पादप जीन प्रारूप में एक बड़ा बदलाव केवल व्यवस्थित प्रजनन प्रयासों के माध्यम से विस्तृत आनुवांशिक परिवर्तन के द्वारा ही संभव है। जिसके लिये विविध फसलों की आनुवांशिक सामग्रियों के निरंतर संग्रहण, मूल्यांकन, परिनियोजन एवं संरक्षण की आवश्यकता होती है। यह राष्ट्रीय स्तर पर फसल आनुवांशिक संसाधनों के साथ–साथ, वैश्विक फसल आनुवांशिक संसाधनों के प्रबंधन में भी व्यवस्थित प्रयासों की रचना करता है। पादप प्रजनन जटिल व निरंतर रूप से होने वाली प्रक्रिया है तथा विभिन्न आनुवांशिक संसाधन इसके महत्वपूर्ण निवेश हैं।

भारत में तिलहन ब्रासिका की प्रचुर विविधता उपलब्ध है। तेल उत्पादन करने वाली ब्रासिका भारतीय उपमहाद्वीप में विस्तृत रूप से वितरित है। ब्रेसिका रापा प्रजाति तोरिया, भूरी सरसों, पीली सरसों तथा भारतीय सरसों की उत्पत्ति भारत में मानी जाती हैं (अरोरा, 1988) तथा देश के आठ कृषि–पारिस्थितिकी क्षेत्रों में वितरित हैं। अधिकतर विविधता गंगा के मैदानों एवं उप–पर्वतीय हिमालय में केन्द्रित है। उत्तर–पूर्वी तथा उत्तर पश्चिमी क्षेत्र तिलहन ब्रासिका के उपयोगी लक्षणों को रखने वाले जननद्रव्य के लिए विशिष्टीकृत हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल के मैदान ब्रासिका रापा (प्रजाति तोरिया एवं पीली सरसों) के अगेती व बौना प्रकार की विभिन्नता से सम्पन्न हैं, जबकि जम्मू–कश्मीर व हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियाँ स्थानीय प्रकार की भूरी सरसों से सम्पन्न हैं।

छोटे बीज एवं देर से परिपक्वता वाली पत्तेदार प्रकार की भारतीय सरसों मुख्यतः उत्तर–पूर्वी भागों विशेष रूप से अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, त्रिपुरा एवं सिक्किम में पाई जाती हैं। बनारसी राई का स्थानीय प्रकार का एक मसाला सभी ब्रासिका उत्पादक क्षेत्रों में छोटे रूप में उपलब्ध है। ब्रासिका टोर्नीफोर्टी के वन्य रूप राजस्थान, पंजाब, हरियाणा के सूखे इलाकों में उपलब्ध हैं। क्रूसीफर के कुछ वन्य रूपों में सम्मिलित केप्सेला, क्रेम्बे, लेपिड़ियम

तथा सिसिम्ब्रियम की जातियाँ उत्तराखण्ड़ की पहाड़ियों एवं उत्तर पूर्वी हिमालय में वितरित हैं (राधामणि एवं अन्य, 2013)।

तिलहन ब्रासिका की देशज विभिन्नता को संग्रहित करने हेतु पूर्व में पादप पुरः स्थापना विभाग, नई दिल्ली द्वारा 1960 के दौरान उत्तर–पूर्वी मैदानों तथा उत्तर–पश्चिमी मैदानों एवं केन्द्रीय पठार से राई–सरसों तथा सम्बद्ध वंशों के लगभग 2000 जननद्रव्यों के समूह एकत्रित किये गये (राणा एवं सिंह, 1992)। राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (एनबीपीजीआर) इसके क्षेत्रीय केन्द्रों, फसल आधारित संस्थानों तथा राई–सरसों पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (एआईसीआरपी) की स्थापना के साथ कार्यक्रम ने गति प्राप्त की। पश्चिमी गुजरात, म.प्र. में चम्बल घाटी, छत्तीसगढ़, झालावाड़ एवं राजस्थान के समबद्ध भागों, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, प. बंगाल, आंध्र प्रदेश (मुख्यतः बी. नाइग्रा के लिए) तथा अरूणाचल प्रदेश (भारतीय सरसों के लिये) से भारतीय सरसों, बी. नाइग्रा, बी. टॉर्नीफोर्टी तथा तारामीरा (एरूका सेटाइवा) के संग्रहण हेतु अनेक अन्वेषण आरम्भ हुए।

कोई एक देश यहाँ तक कि कोई क्षेत्र पादप आनुवांशिक संसाधन की आवश्यकता में आत्म सम्पन्न नहीं हो सकता। इसे ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (एनबीपीजीआर) इसके एकल खिड़की प्रणाली के माध्यम से राष्ट्रीय फसल सुधार कार्यक्रम को समर्थन करने हेतु विश्व के प्रचुर विविधता क्षेत्रों से संभावित महत्वपूर्ण लक्षण विशिष्ट जननद्रव्यों को निरंतर समावेश करता है। गत 30 वर्षों के दौरान एनबीपीजीआर ने 25 देशों से वांछनीय गुणवत्ता लक्षण उदाहरणार्थ–कम एरूसिक एसिड तथा कम ग्लूकोसिनोलेट्स के साथ–साथ विशिष्ट लक्षणों जैसे उच्च पैदावार, उच्च तेल मात्रा, जैविक तनाव (सफेद रतुआ तथा तना गलन), अजैविक तनाव (सूखा, लवणता तथा पाला) के प्रति प्रतिरोध वाले राई–सरसों के लगभग 4,000 जननद्रव्य आयात किये हैं। यूरोप तथा कनाडा से आयातित जननद्रव्य अधिकतर ब्रासिका नेपस तथा ब्रासिका रापा हैं। यूरोपियन प्रकार शीत प्रकार के हैं। सामान्यतः ये भारतीय परिस्थितियों में देर से परिपक्व तथा कम उपज देने वाले हैं। यद्यपि इनमें से कुछ उच्च तेल गुणवत्ता वाले जननद्रव्य, कम एरूसिक अम्ल तथा कम ग्लूकोसिनोलेट युक्त हैं तथा भारत में अनेक फसल सुधार कार्यक्रमों में उपयोग किये जा रहे हैं। प्रजनन व्यवहार के आधार पर, स्वअनिषेच्य जातियाँ सिब–मेटिंग द्वारा कायम हैं। वंश ब्रासिका में प्रजनन व्यवहार कुल परपरागण से लेकर मुख्य रूप से स्वपरागित जातियों में भिन्न होता है। उभयद्विगुणित जातियाँ उदाहराणार्थ– बी. रापा (प्रजाति पीली सरसों), बी. केरीनेटा एवं बी. नेपस सामान्यतः स्वपरागित है, जबकि बी. ऑलिरेशिया, बी. नाइग्रा, बी. रापा (प्रजाति तोरिया तथा भूरी सरसों में लोटनी प्रकार) परपरागित हैं।

उपलब्ध जीन पूल का सटीक मूल्यांकन तथा निष्कर्षों का प्रचार–प्रसार उनके उपयोग के लिए आवश्यक है। गत दो दशकों के दौरान विभिन्न कृषि रूपात्मक लक्षणों तथा जैविक तनाव के लिए एनबीपीजीआर, नई दिल्ली, सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर तथा विभिन्न एआईसीआरपी केन्द्रों पर राई–सरसों जननद्रव्य के 9,550 से ज्यादा जननद्रव्यों का मूल्यांकन तथा वर्णन किया गया है (राधामणि एवं अन्य, 2013)। राई–सरसों के जननद्रव्य पर संग्रहित सूचना बहुमूल्य आनुवांशिक संग्रह को प्रदर्शित करती है जो विद्यमान किस्मों के सुधार के लिए उपयोग की जा चुकी है। एआईसीआरपी के तहत पीड़क, रोग, लवणता, पाला व सूखे के प्रति प्रतिरोध के स्त्रोत पहचाने गये हैं तथा प्रतिरोध –प्रजनन कार्यक्रमों में उपयोग किये जा रहे हैं। अंतःजातीय संकरण के साथ–साथ अतंरजातीय संकरण से विकसित क्रॉस लाभप्रद लक्षणों के स्थानान्तरण के लिए उपयोग किये गये। भारतीय किस्मों के सुधार हेतु भारतीय प्रजनन कार्यक्रमों में विदेशी जननद्रव्य से अनेक महत्वपूर्ण स्त्रोत राई समूह में भी उपयोग किये गये हैं, उदाहरणार्थ–भूरी सरसों में यूकिना, गोभी सरसों में वेस्टर, साईक्लोन, ट्राइटन (चौहान एवं अन्य, 2011)।

मानक संरक्षण रणनीतियों के लिए, बीज संग्रहण अभी तक ब्रासिका आनुवांशिक संसाधनों हेतु चुनाव का सामान्य तरीका है। राष्ट्रीय जीन बैंक वर्तमान उपयोग, समृद्धि हेतु बेस संग्रह के रूप में बीजों के दीर्घकालिक संरक्षण के लिए जिम्मेदार है। यह देश के विभिन्न कृषि–पारिस्थितिकी क्षेत्रों में 10 स्थानीय क्षेत्रों के तंत्र तथा 59 फसल आधारित राष्ट्रीय सक्रिय जननद्रव्य स्थल (एनएजीएस) द्वारा समर्थित है। एनएजीएस फसल सुधार हेतु महत्वपूर्ण जननद्रव्यों के रखरखाव, उत्थान, वितरण के लिए जिम्मेदार जीन बैंक नेटवर्क का आवश्यक भाग है। राष्ट्रीय जीन बैंक भारत के विभिन्न कृषि जलवायवीय क्षेत्रों से एकत्रित ब्रासिका जननद्रव्यों की प्रचुर विभिन्नता को रखती है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्त्रोतों से (10,059 देशज तथा 242 विदेशी) 147 विमुक्त किस्मों तथा 49 पंजीकृत जननद्रव्यों को मिलाकर ब्रासिका जननद्रव्यों के कुल 10,301 संग्रह एकत्रित किये गये हैं। कुल जननद्रव्य में 98 प्रतिशत कृषित तथा 2 प्रतिशत वन्य जातियाँ सम्मिलित हैं।

कुल संग्रहण मुख्यतः भारतीय सरसों,

बी. रापा, बी. केरिनेटा, बी. नेपस तथा बी. ऑलिरेशिया को सम्मिलित करता है (राधामणि एवं अन्य, 2013)। जैविक स्थिति के आधार पर राष्ट्रीय जीन बैंक कुल ब्रासिका जनन द्रव्य के 88 प्रतिशत लैंड रेसेज रखती है तथा बाद में कुछ संभावित बहुमूल्य लक्षणों (6 प्रतिशत), विमुक्त तथा अधिसूचित प्रजातियों के द्वारा किस्मों में सुधार लाया जाता है। 15 वंशों तथा 46 जातियों से सम्बंधित वन्य जाति जननद्रव्य का एक बड़ा संग्रह राष्ट्रीय पादप जैव–प्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र (एनआरसीपीबी), भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आईएआरआई), नई दिल्ली में अनुरक्षित है जो ब्रासिका (10), कोइनस्या (2), केमेलिना (1), डिप्लोटेक्सिस (1), ऐरूकेस्ट्रम (5), एनार्थोकार्पस (1), एरूकेरिया (3), एरूका (1), हुटेरा (1), हर्शफील्डिया (1), मोरीकेन्डिया (1), रेफेनस (1), रिंकोसिनेपिस (2) एवं ट्रेकीस्ट्रोमा (1) को सम्मिलित करता है। अनेक वन्य सम्बंधी हैं जो ब्रासिका फसल पादपों में संकर बीज उत्पादन के विकास के लिए कोशिकाद्रव्यी नर बंध्यता (सीएमएस) के स्त्रोत की तरह कार्य करते हैं तथा विभिन्न रोगों एवं पीड़कों के प्रति प्रतिरोध के लिए केन्द्रकीय जीन्स प्रदान करते हैं। वन्य तथा फसल जातियों के मध्य कायिक संकर निर्मित किये जा चुके हैं। वन्य जननद्रव्य में अनेक वांछनीय लक्षण उपलब्ध हैं (कुमार तथा मिश्रा, 2007)।

यद्यपि विश्व भर में, जीनबैंकों में जननद्रव्यों की संख्या में वृद्धि हुई है, परन्तु फसल सुधार वैज्ञानिकों द्वारा इनके उपयोग में इसके अनुरूप वृद्धि नहीं हुई है, जो संकेत करता है कि संग्रहों को उनकी पूरी क्षमता के साथ उपयोग नहीं किया गया। फसल सुधार में कम तथा नजदीकी जनकों का विस्तृत उपयोग बड़ी संख्या में जननद्रव्यों के संग्रहण उद्देश्य के विपरीत है तथा राष्ट्रीय जीन बैंक, राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो (एनबीपीजीआर), नई दिल्ली में अब बड़ी संख्या में प्रविष्टियाँ सुरक्षित हैं जो लगभग चार लाख जननद्रव्य युक्त बहुफसल बीज जीन बैंक युक्त है। असाध्य नुकसान के विरूद्ध सुरक्षा हेतु एकत्रित इस सामग्री के बहुतायत ने इस समस्या को बढ़ा दिया है कि किस प्रकार इसे सर्वश्रेष्ठ रूप से संरक्षित किया जाए तथा किस प्रकार इसे पादप प्रजनन में उपयोग किया जाए।

प्रथमतः सम्पूर्ण संग्रह को प्रबंधनीय आकार में न्यूनीकृत करना बुनियादी आवश्यकता है जो अच्छे आँकड़े उत्पन्न करने तथा उपयोग को बढ़ाने हेतु सरलता से मूल्यांकित किया जा सके। फ्रेंकल (1984) ने सुझाव दिया कि एक विशाल जननद्रव्य संग्रह के प्रबंधन को बढ़ाने हेतु मूल संग्रह दृष्टिकोण संरक्षित जननद्रव्य के उपयोग तथा अध्ययन की सुविधा प्रदान करता है। यह संकेत करता है कि संग्रह को प्रबंधनीय आकार में छाँटना होगा, जिसे मूल संग्रह कहा जाता है। यह नमूने में न्यूनतम अतिरेकता के साथ फसल के प्रचुर आनुवांशिक विविधता को दर्शाता है। मूल संग्रह आगे एक कार्यकारी संग्रह के रूप में कार्य कर सकता है तथा सम्पूर्ण संग्रह के सक्षम उपयोग के लिए मार्गदर्शक के रूप में भी कार्य कर सकता है (टॉम एवं अन्य, 1995, ब्राउन 1989)। इस मूल संग्रह का विस्तृत रूप से मूल्यांकन किया जा सकता है तथा जननद्रव्य जो मूल संग्रह में सम्मिलित नहीं हैं, को आरक्षित संग्रह के रूप में नामांकित किया जाएगा (फ्रेंकल 1984)। फ्रेंकल व ब्राउन (1984) तथा ब्राउन (1989) ने सुझाव दिया कि जननद्रव्यों के आकारिकी एवं शस्यात्मक लक्षणों तथा उत्पत्ति राष्ट्र की जानकारी का उपयोग करके मूल संग्रह को स्थापित किया जा सकता है। जब से मूल संग्रह की अवधारणा विकसित हुई है, कई फसल जातियों हेतु मूल संग्रह स्थापित किये जा चुके हैं :– मूँग (बिश्ट एवं अन्य, 1998), मूँगफली (उपाध्याय एवं अन्य, 2003), अरहर (रेड्डी एवं अन्य), रागी (उपाध्याय एवं अन्य, 2006), बाजरा (भट्टाचार्य एवं अन्य, 2007), चना (उपाध्याय एवं अन्य, 2001) तथा सोयाबीन (अन्नादुरई तथा सुब्बुलक्ष्मी, 2009)।

सरसों अनुसंधान निदेशालय (डीआरएमआर), भरतपुर, राई–सरसों फसल के लिए मौजूद राष्ट्रीय सक्रिय जननद्रव्य स्थल फसल सुधार हेतु बहुमूल्य जननद्रव्य के रखरखाव, उत्थान तथा वितरण के लिए जिम्मेदार है। सरसों अनुसंधान निदेशालय माँग के आधार पर प्रजनकों को बीज प्रदान करने के लिए सक्रिय संग्रह के रूप में लघुकालिक (3 वर्षों तक) बीज संरक्षण करने हेतु भी जिम्मेदार है। निदेशालय भारत के विभिन्न कृषि जलवायवीय क्षेत्रों से एकत्रित ब्रासिका जननद्रव्य की प्रचुर विविधता रखता है। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्त्रोतों (766 देशज तथा 303 विदेशी) से 867 उन्नत प्रजनन लाइनें, 213 विमुक्त किस्मों, 30 पंजीकृत जननद्रव्यों तथा 455 अन्य प्रकार की सामग्रियों को मिलाकर ब्रासिका जनन द्रव्य के कुल 2452 संग्रह एकत्रित किये गये हैं। ये संग्रह व्यवस्थित रूप से वर्णित व गुण निर्धारित हैं तथा 1643 जननद्रव्यों के सूचना, विवरण तथा गुण निर्धारण आंकड़े फसल सूची के रूप में प्रमाणीकृत हुए हैं (नन्जुंदन एवं अन्य, 2014)।

गुण निर्धारण तथा उपयोग के लिए अधिक सुलभ विशाल जीन पूल बनाने हेतु मूल संग्रह उत्पन्न किया जा सकता है। फ्रेंकल ने मूल संग्रह की अवधारणा को प्रारंभ किया जो फसल जाति तथा इसके सम्बंधियों की अनुवांशिक विविधता को न्यूनतम पुनरावृति के साथ दर्शाती है। तब से

अवधारणा की अधिकतम चर्चा की गई तथा उन्हें उत्पन्न करने के तरीके विकसित किये गये (ब्राउन, 1994)। सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर में कृषि आकारिकी लक्षणों पर भारतीय सरसों का मूल्यांकन आँकड़े आधारित मूल संग्रह बनाया गया है। विभिन्न शस्यात्मक लक्षणों के लिए भारतीय सरसों में उपस्थित विविधता के प्रतिरूप को समझने हेतु वांछनीय लक्षणों के लिए लक्षण प्रारूपीकरण तथा आण्विक चिन्हकों से जीन प्रारूपीकरण के द्वारा मूल संग्रह आगे की जाँच के अधीन हैं। इसके अलावा सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर में उपज घटक लक्षणों हेतु भारतीय सरसों में लक्षण विशिष्ट संदर्भ समुच्चय भी विकसित किये गये हैं जो क्रॉसिंग कार्यक्रम में प्रभावी उपयोग के लिए आगे की जाँच के अधीन हैं (नन्जुन्दन एवं अन्य, 2014)। फसल सुधार कार्यक्रमों में उपयोग हेतु नोबल जीन प्रारूप अथवा जनन द्रव्य के विकास/पहचान से सम्बद्ध पादप प्रजनकों को मान्यता प्रदान करने की दृष्टि से एनबीपीजीआर/आईसीएआर द्वारा 1997 में जननद्रव्य का पंजीकरण प्रारंभ किया गया। इस प्रयास में 2014 तक 50 संभावित महत्वपूर्ण जननद्रव्य लाइनें पंजीकृत की जा चुकी हैं।

मार्कर-सहायक चयन : सरसों में गुणवत्ता एवं रोग प्रतिरोध में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण विधि

सुबरन सिंह, सुप्रिया, वी वी सिंह, पंकज शर्मा एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

डीएनए मार्कर पारम्परिक पादप प्रजनन को बहुत ही स्पष्टता व सुनिश्चितता के साथ सुधारने की अपार क्षमता रखते हैं। आण्विक मार्कर तकनीक के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की शुरूआत दक्षिणी–आधारित मार्कर जैसे आरएफएलपी से लेकर पीसीआर आधारित मार्कर जैसे माइक्रोसेटेलाइट के रूप में हुई है। इस तकनीक को विकसित करने के लिए एक ऐसी विधि की आवश्यकता है जो उच्च मार्कर विश्लेषण के द्वारा पौधों में विशेष गुणों का अतंर्गमन व त्वरित प्रतीप संकरण का विश्लेषण कर सके। पादप प्रजनन अधिक प्रतिस्पर्धी हो गया है एवं आण्विक मार्करों की सहायता से वैज्ञानिक तेजी से उपज, तनाव (जैविक एवं अजैविक), सहिष्णुता एवं उच्च गुणवत्ता वाले अद्वितीय जीनोटाइप विकसित कर सकते हैं। आण्विक मार्कर वह विधि है जिसके द्वारा वर्तमान समय में सरसों प्रजनन योजनाओं को बढ़ाया जा सकता है। सरसों में जटिल गुणों जैसे उपज, संकर ताकत, तनाव सहिष्णुता और अनुरूपण को मार्करों की सहायता से चयनित नहीं किया जा सकता परन्तु पादप प्रजनक इन जटिल मात्रात्मक लक्षणों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए मार्करों के उपयोग से सरल एवं नए गुणों को आसानी से उन्नत कर सकते हैं। आज बड़े पैमाने पर मार्करों का उपयोग सरसों रोग प्रतिरोधकता एवं गुणवत्ता के चयन के लिए किया जा रहा है।

मार्कर–सहायक चयन (एमएएस) एक अप्रत्यक्ष चयन प्रक्रिया है, जहाँ ऐच्छिक लक्षणों (उदाहरण के लिए उत्पादकता, रोगप्रतिरोध, तनाव, सहिष्णुता एवं गुणवत्ता) का चयन एक मार्कर (रूपात्मक, जैव रसायनिक या डीएनए/आरएनए भिन्नता) के आधार पर किया जाता है। इस प्रक्रिया का उपयोग पौधों एवं पशु प्रजनन दोनों में ही किया जाता है। एमएएस ऐसे लक्षणों के चयन में सहायक है जो चयन में कठिन, मापने में मंहगे एवं कम आनुवांशिकता प्रदर्शित करने वाले तथा देरी से विकसित होते हैं। इस प्रकार अच्छे गुणों वाले पौधों को विकसित करने में एमएएस बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

मार्करों के प्रकार

रूपात्मक: ये मार्कर अक्सर आंखों से पहचाने जा सकते हैं एवं सरल दृश्य निरीक्षण वाले होते हैं। उदाहरणस्वरूप अन्न की बाली, पत्ती म्यान रंगाई, पादप ऊंचाई, बीज का रंग, चावल की सुगन्ध आदि की उपस्थिति या अनुपस्थिति का आंकलन शामिल हैं। विभिन्न फसलों जैसे मक्का, टमाटर, मटर, जौ एवं गेंहूँ में सैकड़ों जीन जो रूपात्मक लक्षणों के लिए उत्तरदायी हैं, उचित गुणसूत्र बिदुंपथों पर मापी गयी हैं।

जैवरसायनिकी : एक प्रोटीन जो निष्कर्षित और निरक्षित की जा सके। उदाहरण के लिए समउत्प्रेरक एवं भण्डारित प्रोटीन।

कोशिकीय : विभिन्न स्टेनों द्वारा उत्पादित गुणसूत्र बैडिंग, जैसे जी एवं आर बैडिंग।

डीएनए के आधार पर या आण्विक : मार्कर एक अद्वितीय जीन (डीएनए अनुक्रम) है जो ऐच्छिक बिदुओं के निकट होता है तथा इन्हें आण्विक तकनीकों जैसे आरएफएलपी, आरएपीडी, आरएफएलपी, एससीएआर, माइक्रोसेटेलाइट या एसएनपी के माध्यम से पहचाना जा सकता है।

एमएएस के लिए एक आदर्श मार्कर के गुण

विभिन्न एलीलों से सभी सम्भावित प्रारूपों (सम या विषमयुग्मजी) की आसानी से पहचान करना।

मार्कर परीक्षण किसी एलील या एलील के बिन्दु के लिए असामान्य परिणाम नहीं देता।

विशेष ऐच्छिक जीनों के विभिन्न एलीलों को जीवों के विकास की प्रक्रिया के दौरान शुरूआत में ही विभिन्नता के आधार पर अलग करना।

पृथक होती हुई आबादी में एक ही समय में कम या शून्य आपसी

तालमेल की वजह से कई मार्करों का उपयोग होता है।

प्रचुर मात्रा में उपलब्धता।

बहुरूपी।

एमएएस के लिए उचित क्रियाविधि

सबसे पहले ऐच्छिक जीन या मात्रात्मक विशेष बिन्दु (क्यूटीएल) को जीनोम नक्शों पर स्थापित करना।

मार्कर ऐच्छिक जीन (5 से कम पुनर्संयोजन इकाई या सेंटीमोर्गन) के समीप होने चाहिए।

आमतौर पर पुनर्संयोजन के कारण त्रुटि की सम्भावना को कम करने के लिए एक के बजाय दो मार्करों का उपयोग करना चाहिए।

प्रतीप संकरण प्रजनन के लिए एमएएस की रणनीतियाँ

एक ऐच्छिक जीन को दाता से प्राप्तकर्त्ता में स्थानान्तिरत करने के लिए न्यूनतम 5 या 6 पीढ़ियों की आवश्यकता होती है। प्राप्तकर्त्ता जीनोटाइप के गुणों को आण्विक मार्कर की सहायता से तेजी से पुनः संग्रहित किया जा सकता है। अगर एफ1 (संकर) मार्कर बिन्दु के लिए विषमयुग्मजी है तो प्रतीप संकरण पीढ़ियों में मार्कर प्राप्तकर्त्ता माता–पिता एलील को एक गुणसूत्रीय बिन्दु पर चिन्हित् करता है।

मार्कर–सहायक जीन पिरामिडिंग की रणनीतियाँ

जीन पिरामिड़ एक समय में दो या दो से अधिक जीनों का चयन करके बीमारी और कीड़ों के विरूद्ध प्रतिरोधकता बढ़ाता है। उदाहरण के तौर पर चावल में इस तरह के पिरामिड जीवाण्वीय झुलसा तथा कवक विस्फोटन के खिलाफ विकसित किये गये हैं। इस संदर्भ में मार्कर के उपयोग का लाभ प्ररूपी प्रभाव से जुड़े क्यूटीएल के चयन के लिए किया जाता है।

सरसों में एमएएस का आवेदन

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में सरसों के तेल की उच्च मांग को बढ़ाये रखने के लिए सरसों को गुणवत्ता एवं रोगप्रतिरोधक दोनों ही क्षेत्रों में सुधारने की आवश्यकता है। सास्काटून अनुसंधान केन्द्र (कनाडा) ने सरसों प्रजनन कार्यक्रम के प्रयास में मार्कर की सहायता से प्रजनन लागू करने की दिशा में काफी निवेश किया है। उच्च प्रवाह क्षमता वाली डीएनए फिंगर प्रिटिंग प्रयोगशालाओं की स्थापना आरएफएलपी, आरएपीडी, एएफएलपी एवं माइक्रोसेटेलाइट्स मार्करों के उपयोग से आनुवांशिक नक्शे बनाने के लिए हुई है। यह प्रौद्योगिकी एक से अधिक (बहुरूपी) लक्षणों के लिए अलग से जटिल जीनोटाइप बनाने के लिए लाभकारी सिद्ध होगी। कुछ विशिष्ट परियोजनायें बीज का रंग, कम लिनोलेनिक अम्ल, उच्च तेल की मात्रा और ब्लैकलेग एवं सफेद रतुआ के लिए मार्कर की सहायता से प्रजनन के विकास में कार्यशील हैं। गुणवत्ता के तत्वों का नियंत्रण बहुजीनी होता है। उदाहरण स्वरूप बीज का पीला रंग तथा लिनोलेनिक अम्ल क्रमशः तीन एवं दो बिन्दुओं द्वारा नियंत्रित किया जाता हैं। इसके अलावा ब्लैकलेग एवं सफेद रतुआ के प्रतिरोध के लिए कई स्त्रोत हैं। इन महत्वपूर्ण लक्षणों को मार्कर–सहायक अंतर्गमन से बी–रापा, बी–जुन्सिया और एस–अल्बा की प्रजातियों में स्थापित किया जा रहा है। प्रत्येक जीन/क्यूटीएल के लिए पीसीआर आधारित एलील विशिष्ट एम्प्लीकॉन्स को उच्च प्रवाह क्षमता वाले मार्कर–सहायक प्रजनन उपकरणों के रूप में विकसित किया जा रहा है। मार्कर –सहायक प्रजनन के उपयोग द्वारा विकसित गुणों के कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

1. गुणवत्ता लक्षणों के लिए मार्कर का उपयोग

सरसों में कम लिनोलेनिक अम्ल : इस दिशा में निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के अथक प्रयासों से प्रजनन कार्यक्रम के माध्यम से नई वसीय अम्लों के प्रारूप वाली सरसों जिसमें उच्च ओलिक अम्ल, कम लिनोलेनिक अम्ल मौजूद हो लक्षणों को विकसित किया जा रहा है। एक प्रारूपिक सरसों के तेल में 65% सी18:1 (ओलिक अम्ल), 20% सी18:2 (लिनोलिक अम्ल) तथा 10% सी 18:3 (लिनोलेनिक अम्ल) होता है। सरसों में कम सी18:2 तथा सी18:3 के विकास के द्वारा परोक्ष रूप से सी18:1 बढ़ जाता है जिससे अधिक तापमान पर स्थिरता के साथ–साथ सरसों के तेल की तीक्ष्ण गंध को कम करने वाली सरसों विकसित की जा सकती है। बी नेपस में इस नये वसीय अम्ल का प्रारूप 80% से अधिक सी18:1, 10% से कम सी18:2, 2% से कम सी18:3 है। कम सी18:3 के लिये प्रजनन बहुत ही चुनौतीपूर्ण है व यह नये प्रारूपिक उत्परिवर्तन का परिणाम है क्योंकि इसमें जीन अप्रत्यक्ष रूप से वंशानुगत होती है।

सरसों में कम ग्लूकोसिनोलेट एवं इरूसिक अम्ल : सरसों के बीज में लम्बी श्रृंखला वाले वसीय अम्ल विशेषकर इरूसिक अम्ल (सी22:1) की उच्च मात्रा पोषण के लिए उचित नहीं है। अतः सरसों में 2% से कम इरूसिक अम्ल वाली किस्मों के विकास पर जोर दिया जा रहा है। सरसों भारत में दूसरी सबसे बड़ी तिलहनी फसल है तथा इस समय उच्च इरूसिक अम्ल की मात्रा वाली किस्में उगाई जा रही हैं। जैम1 या उसकी किस्म हीरा (डोनर के रूप में) में से रिसेसिव

एलील को भारतीय किस्म (रिकंरट के रूप में) में प्रतीप संकरण द्वारा स्थानान्तिरत करके कम इरूसिक अम्ल वाली सरसों विकसित की गई है। कम इरूसिक अम्ल की मात्रा दो जीन तथा कम ग्लूकोसिनोलेट की मात्रा एक से अधिक जीनों/क्यूटीएल द्वारा नियंत्रित की जाती है। अनुसंधान के माध्यम से स्थानीय अनूकूलित ऐच्छिक किस्मों में तेल की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए कम इरूसिक अम्ल (2% से कम) तथा कम ग्लूकोसिनोलेट (30 पीपीएम से कम) वाली किस्में विकसित की जा रही हैं। पूसा सरसों 24, पूसा सरसों 30, आरएलसी 1 एवं आरएलसी 2 कम इरूसिक अम्ल (0) वाली किस्मों तथा हीरा, आरएलसी 3, पीडीजेड 1 एवं ईसी 597325 कम इरूसिक अम्ल एवं कम ग्लूकोसिनोलेट (00) वाली किस्मों के उदाहरण हैं।

सरसों में पीले रंग का बीज : सरसों में द्विअगुणित जनसंख्या से निकाली गयीं किस्में बीज के रंग के लिए महत्वपूर्ण है। द्विअगुणित लाइनों का दो साल तक परीक्षण किया गया व बीज रंग का आवर्ती वितरण वाईमॉडल पाया गया। बीएसए के द्वारा बीज रंग जीन टैगिग पर दो प्रयास किये गये। पहली रणनीति के तहत दस सर्वोत्तम काली व दस पीली बीज वाली लाइनों के डीएनए संगठित किये गये। दूसरी रणनीति में दस सर्वश्रेष्ठ पीले बीज व दस सबसे खराब पीले बीजों वाली लाइनों का प्रयोग किया गया। पहली रणनीति में कई आरएपीडी मार्कर के प्रयोग से एक गुणात्मक मैडेलियन जीन को पहचाना गया जो कि पौधे के काले व पीले बीजों का निर्धारण करती है।

सरसों में तेल की मात्रा : विश्व में भारत तेल उत्पादक देशों में प्रमुख स्थान रखता है। सरसों भारत में एक प्रमुख खाद्य तिलहनी फसल है जो सब्जियों, मसालों और खाद्य तेल के रूप में उपयोग में लायी जाती है। देश में उत्पादित कुल तिलहन का 30% भाग मुख्य रूप से खाद्य प्रयोजनों के लिए उपयोग में लाया जाता है। सरसों में गुणवत्ता सुधार के लिए उच्च तेल वाली किस्मों के चयन के लिए प्रयोगशालाओं में अनुसंधान उच्च स्तर पर किया जा रहा है। इस संदर्भ में द्विअगुणित पंक्तियां विकसित की जा रही हैं जिनमें 35 से 48% तेल की मात्रा होती है। इनका उपयोग फिनोटाइप तथा बीएसए विश्लेषण द्वारा तेल की मात्रा निर्धारित करने वाले मार्करों की पहचान के लिए किया जा रहा है। इस प्रकार मार्कर–सहायक चयन द्वारा तेल की मात्रा निर्धारित करने वाले क्यूटीएल को पहचान कर पादप प्रजनकों द्वारा तेंल की गुणवत्ता बढ़ाने वाली किस्मों का विकास करना सरल एवं सम्भव होगा।

सरसों में नर प्रजनक की बहाली : सरसों में प्रजनन सामग्री में से मार्कर की सहायता से नर प्रजनन क्षमता बहाल करने वाले एलील का चयन किया गया है। प्रत्येक पादप को आरएपीडी मार्कर की सहायता से पहचाना जा सकता है जिसके लिये अपेक्षित रूप से 18000 आरएपीडी मार्कर की आवश्यकता होगी। एक सहप्रमुख जीनोटाइप को पहचानने के लिए एक मार्कर को कपलिंग चरण व तीन मार्करों को प्रतिकर्षण चरण में प्रयुक्त किया गया। चार मार्करों के सयुंक्त आँकडों को एक सरल सेट के अनुसार समयुग्मजी आरोग्य पौधों की पहचान करने के लिए उपयोग में लाया गया तथा यह तकनीक बहुत प्रभावी सिद्ध हुई है। इस प्रकार, कई प्रमुख आरएपीडी मार्कर का संयुक्त उपयोग प्रजाति वरण में किया जाता है।

2. रोग प्रतिरोधकता में मार्कर का उपयोग

ब्लैकलैग प्रतिरोध : एक रिपोर्ट में दावा किया गया है कि सरसों के बी नेपस जीनोम में लेप्टोस्फेरिया मेकुलान्स (एक पश्चिमी केनेडियन कवक वियोजन) के विरूद्ध प्रतिरोध प्रदान करने के लिए एक छोटे से अंतराल में दो जीनें उपस्थित हो सकती हैं। यह माना गया है कि वयस्क पादप प्रतिरोध एवं अंकुर चरण प्रतिरोध के लिए अलग–अलग जीन होती हैं। इसके फलस्वरूप इस दिशा में द्विअगुणित जनसंख्या विकसित कर मार्कर–सहायक प्रजनन द्वारा ब्लैकलैग रोग प्रतिरोध के लिए अनुसंधान किया जा रहा है।

सफेद रतुआ प्रतिरोध : एसी2ए1 नामक जीन सफेद रतुआ प्रतिरोध के लिए श्रेष्ठ है व इसको आण्विक मार्करों द्वारा चिन्हित कर लिया गया है। इस प्रतिरोध के स्त्रोत का मार्करों की सहायता से रूसी लाईन डोन्सकाजा में से पता लगाया गया है। एटी5जी41560 और एटी2जी36360 ऐसे दो मार्कर हैं जो सफेद रतुआ प्रतिरोध के लिए क्रमशः एसीबी1–ए4.1 (हीरा) और एसीबी1–ए5.1 (डोन्सकाजा) में से खोजे गये हैं।

राई-सरसों में आई.पी.आर. की अहम भूमिका

कृष्णकांत सिंह, विनोद कुमार एवं कुँवर हरेन्द्र सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

बौद्धिक सम्पदा अधिकार का तात्पर्य मूल रूप से बौद्धिक सम्पदा से आर्थिक लाभ प्राप्त करने से है। यह बौद्धिक सम्पदा अधिकार एकस्व, पादप प्रजनक अधिकार कृषक अधिकार 2001, विदेशी संगठनों एवं संघों आदि की मूलभूत कड़ी है। अतः यह सभी अधिकार बौद्धिक सम्पदा अधिकार के अन्तर्गत आते है। आई.पी.आर. के एकस्व अधिकार में कोई भी आविष्कारक अपने किसी आविष्कार को एक निश्चित समय अवधि तथा किसी अन्य व्यक्ति को उसकी नकल करने अथवा प्रयोग करने व बेचने से रोक सकता है। पादप प्रजनक अधिकार हमारे देश की सरकार द्वारा किसी प्रजनक अथवा संगठन को किसी किस्म का विकास करने के लिए दिया जाता है। जिससे किसी अन्य राज्य को इसका उत्पादन करने अथवा किसी किस्म की प्रर्वद्धन सामग्री व वाणिज्यीकरण करने से रोका जा सके। उसके लिए सरकार द्वारा (15–20 वर्ष) एक निश्चित अवधि निर्धारित की गई है। कृषक अधिकार से तात्पर्य, किसी भी कृषक द्वारा आनुवांशिकी संसाधनों के आधार पर फसलोत्पान व किसी भी कृषक किस्म का निर्माण करना इस अधिकार के अन्तर्गत आता है। भारत सरकार ने वर्ष 2001 में पादप किस्म एवं कृषक संरक्षण अधिकार अधिनियम (पी.पी.वी.एण्ड एफ.आर. 2001) पारित किया था। जिसके अन्तर्गत कोई भी कृषक अपने आत्मविश्वास और दृष्टिकोणों के आधार पर किसी भी किस्म का निर्माण कर सकता है तथा पी.पी.वी. एण्ड एफ.आर. में उस किस्म को पंजीकृत हेतु आवेदन कर सकता है।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार का उपयोग पूर्ण रूप से किसी भी आविष्कारक द्वारा किए गए किसी आविष्कार को एकस्व करने के रूप में है, जो कोई विचार, रूपांकन, आविष्कार अथवा पाण्डुलिपि बौद्धिक सम्पदा की श्रेणी में आते हैं जो किसी उपयोगी उत्पाद को जन्म देते हैं, ऐसी सम्पदा के विकास के लिए कौशल और कुछ नया करने की चाह के साथ–साथ धन एवं दूसरे संसाधनों की भी आवश्कयता होती है। अतः किसी एसी सम्पदा का आविष्कारक अपने आविष्कार के लिए उचित प्रतिफल की अपेक्षा करता है। बौद्धिक सम्पदाओं के सम्बन्ध में मुख्य समस्या उनकी नकल करके अन्य उत्पाद बना लिया जाने की है, जिससे असली आविष्कारक का लाभ घट जाता है। किसी आविष्कारक का अपने आविष्कार (बौद्धिक सम्पदा) से आर्थिक लाभ प्राप्त करने का अधिकार, बौद्धिक सम्पदा अधिकार (आई.पी.आर.) कहलाता है।

आदर्श स्थितियों में यह प्रतिफल उस आविष्कार से समाज को होने वाले लाभ के बराबर होना चाहिए। बौद्धिक सम्पदा को विभिन्न सरकारें तभी मान्यता देती हैं जब तक कि वे समाज के लिए हानिकारक न हों। फसलों की उन्नत किस्मों का विकास पादप प्रजनकों के वर्षों के योजनाबद्ध अथक परिश्रम के बाद होता है। अतः इन्हें विकसित करने वाले पादप प्रजनकों की बौद्धिक सम्पदा माना जाना चाहिए। अनेक देशों में पादप किस्मों को बौद्धिक सम्पदा के रूप में मान्यता प्राप्त है और इनकी सुरक्षा एकस्व प्रदान करके (अमेरिका) उचित पादप प्रजनक अधिकार देकर की गई है। बौद्धिक अधिकारों की सुरक्षा के मुख्य रूप व्यापारिक रहस्य (Trade Secret), एकस्व, पादप प्रजनक अधिकार तथा प्रकाशन अधिकार है।

एकस्व : एकस्व किसी आविष्कार, (उत्पाद) प्रक्रिया अथवा किसी आविष्कार में सुधार के लिए प्रदान किया जाता है। एकस्व आविष्कारक तथा समाज के मध्य एक संविदा के रूप में होता है। अतः एकस्व किसी आविष्कारक को सरकार द्वारा प्रदान किया गया वह अधिकार जिसके द्वारा एक निश्चित समय तक किसी अन्य व्यक्ति को इसके आविष्कार की नकल करने, निर्माण करने, प्रयोग करने अथवा बेचने से रोका जाता है।

एकस्व एक निश्चित अवधि (15–20 वर्ष) के लिए प्रदान किया जाता है और प्रदान करने वाले देश में ही लागू होता है। कोई भी व्यक्ति एकस्व के विरूद्ध एक निश्चित समय सीमा के भीतर दावा कर सकता है। पौधों के लिए एकस्व प्रदान करने के लिए अधिनियम, सर्वप्रथम जर्मनी में वर्ष 1866 में बना।

पादप प्रजनक अधिकार : प्रजनक अधिकार सुरक्षा में किस्म की सुरक्षा की जाती है। प्रयुक्त प्रजनक विधि की नहीं तथा प्रजनकों को कुछ छूट तथा कृषकों को विशेष अधिकार प्रदान किये जाते हैं कोई प्रजनक अधिकार युक्त व्यक्ति किसी अन्य इच्छुक व्यक्ति अथवा संगठन को भी पादप सामग्री के उत्पादन तथा विक्रय के लिए कुछ शर्तों के साथ अधिकृत कर सकता है। अतः सरकार द्वारा किसी किस्म का विकास करने वाले प्रजनक अथवा संगठन को यह अधिकार दिया जाना चाहिए जिससे किसी अन्य को एक निश्चित समय के लिए (15–20 वर्ष) उसका उत्पादन करने अथवा किस्म की प्रवर्दन सामग्री का वाणिज्यकरण करने से रोका जाता है, पादप प्रजनक अधिकार कहलाता है।

प्रजनक अधिकार सुरक्षा के लाभ : प्रजनक अधिकारों की सुरक्षा से सम्बन्धित कुछ लाभ हैं, जो इस प्रकार हैं –

1. **पादप प्रजनकों को प्रोत्साहन देने हेतु –** पादप प्रजनकों को उनके द्वारा विकसित की जाने वाली किस्मों के लिए लाभ प्राप्त होने से पादप प्रजनन अनुसंधान को बढावा मिलता है।
2. **स्पर्द्धा –** पादप प्रजनन कार्यक्रमों में लगे विभिन्न संगठनों में प्रतियोगिता होने से कृषक समाज तथा राष्ट्र को लाभ होता है जिससे राष्ट्र में रहने वाले कृषक आगे आकर स्पर्द्धा में हिस्सा लेते हैं।
3. **निजी कंपनियों के द्वारा विनियोग –** निजी कंपनियों प्रजनन कार्य में धन लगाने के लिए आगे आती है।

प्रजनक अधिकार सुरक्षा में होने वाली हानियां : प्रजनक अधिकारों की सुरक्षा की निम्नलिखित हानियां हो सकती हैं –

1. **बीज उद्योग पर सम्पन्न देशों व कम्पनीयों का अधिकार –** इससे बीज उद्योग पर सम्पन्न देशों व कम्पनियों का एकाधिकार हो जाएगा जिससे बीज महंगे होगें। किसानों को बार–बार इन्हीं कम्पनीयों से बीज खरीदने के लिए विवश होना पडेगा।
2. **कृषि उत्पादन में कमी–** महँगे बीज खरीद कर भी किसान अगली फसल के लिए बीज नहीं बचा सकेगा। अतः वह नई किस्मों के प्रयोग से विमुख होकर पुरानी किस्मों को ही उगाना पसंद करेगा। जिससे उत्पादन में कमी आएगी और नई किस्मों को आगे आने का मौका नहीं मिल पाएगा।

प्रजनक अधिकारों की सुरक्षा की प्रगति : प्रजनक अधिकारों की सुरक्षा के लिए पौधों के लिए एकस्व अधिनियम सर्वप्रथम जर्मनी में 1866 में बना। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में अमेरिका सहित अन्य देशों में पादप किस्मों के लिए एकस्व अधिनियम बने। वर्ष 1938 में विभिन्न देशों की सरकारों के प्रजनक अधिकारों की सुरक्षा के लिए संगठन बना। अनेक देशों ने अपनी अलग–अलग प्रजनक सुरक्षा अधिकार प्रणालियां विकसित की।

प्रजनक अधिकार : विश्व खाद्य संगठन द्वारा भूत, वर्तमान एवं भविष्य में इस सम्बन्ध में किये गये योगदान के लिए कृषक अधिकारों को मान्यता दी है और इन्हें बाह्यकारी बनाया गया है। लेकिन इस सम्बन्ध में यह प्रश्न अनसुलझा रह गया है कि ये लाभ किसे कितना और किस रूप में दिया जाए। यह सुलझाया गया है इसलिए आनुवांशिक संसाधन, प्राचीनकाल से फसलोत्पादन करते रहने के कारण कृषक समुदाय द्वारा सुरक्षित रखे गये हैं जिनका उपयोग नई किस्मों के लिए किया जा रहा है। इन उन्नत किस्मों के बीज की बिक्री से बीज निगम भारी लाभ प्राप्त कर रहे हैं। अतः यह तर्क विशेष रूप से पेश किया जा रहा है कि कृषक समुदाय में उपस्थित सभी कृषकों को इस लाभ में समुचित हिस्सा मिलना चाहिए।

भारत में बौद्धिक सम्पदा अधिकार : वर्ष 1978 में यूपोव (यू.वी.ओ.वी.) में शामिल होने की इच्छा प्रकट की थी, लेकिन वह निर्धारित समय सीमा में अपने नियमों में वांछित परिवर्तन नहीं कर सका। भारत विश्व व्यापार संगठन का हस्ताक्षरी है एवं उसने बौद्धिक सम्पदा अधिकार व्यापार सम्बन्धी समझौता प्रमाणित किया है। वह पादप किस्म सुरक्षा संघ का सदस्य नहीं बन पाया था। इसके अतिरिक्त यूरोप के नियम हमारी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते क्योंकि वे औद्योगिक अर्थतंत्र के द्वारा विकसित किये गये हैं न कि कृषि अर्थशास्त्रियों के द्वारा। भारत ने ट्रिप्स समझौते को लागू करने के लिए अपनी सुई जैनेरिस प्रणाली विकसित की है।

पादप किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम–2001

पादप किस्मों एवं कृषकों व प्रजनकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक प्रभावी प्रणाली स्थापित करने तथा नई पादप किस्मों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए पादप किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम (2001) बनाया गया है। जिसकी मुख्य विशेषतांऐ इस प्रकार हैं –

1. प्राधिकरण का तात्पर्य धारा–3 (1) के अधीन स्थापित पादप किस्म एवं कृषक अधिकार सुरक्षा प्राधिकरण से है।
2. प्रजनक का तात्पर्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह या किसी कृषक या कृषकों के समूह या किसी संस्था से हैं जिसने किसी किस्म का प्रजनन, उत्पत्ति अथवा विकास किया है।

3. लाभांश का तात्पर्य किस्म के सम्बन्ध में इस लाभ के अंश से है, जो उस किस्म के प्रजनक को होगा।

4. नामकरण का तात्पर्य किसी किस्म या उसकी प्रवर्धन सामग्री के सम्बन्ध में किसी भाषा में प्रयुक्त अक्षर समूह या अंक से है।

5. सम्मेलन राष्ट्र से तात्पर्य उस देश से है, जिसने पादप किस्म सुरक्षा पर सम्मेलन किया है, जिसमें भारत की भागीदारी रही है। वह देश जहाँ पादप सुरक्षा पर कानून लागू है और भारत ने उसके साथ समझौता किया है। जिसके आधार पर दोनों देशों के नागारिकों के पादप प्रजनक अधिकारों की सुरक्षा की जा सके।

6. सारभुत व्युत्पन्न किस्म का तात्पर्य एसी किस्म से है जिसमें उस किस्म के मुख्य लक्षण विद्यमान हों जिससे उसे विकसित किया गया है, लेकिन उसे उस किस्म से अलग पहचाना जा सके।

7. वर्तमान किस्म का तात्पर्य भारत में उपलब्ध ऐसी किस्म से है जिसे बीज अधिनियम की धारा–5 के अधीन सूचित किया गया है या कृषक किस्म है।

8. कृषक किस्म का तात्पर्य उस किस्म से है जिसे कृषक परम्परागत रूप में अपने खेतों मे उगाते आ रहे हैं या उन्होंने इसे विकसित किया है या जंगली सम्बन्धी है जिसके विषय में उन्हें जानकारी है।

कृषक अधिकार : कोई भी कृषक स्वत: ही कृषक सही अधिनियम (2001) के तहत भारत सरकार ने कृषकों को कुछ कृषक अधिकार दिये हैं जो इस प्रकार हैं –

1. कृषक द्वारा विकसित की गई सरसों कृषक किस्म का पंजीकरण – एक कृषक जिसने किसी सरसों की कृषक किस्म का प्रजनन अथवा विकास किया हो, इस अधिनियम के अधीन प्रजनन की भाँति पंजीकरण एवं अन्य सुरक्षा का अधिकारी होगा।

2. कृषक अधिकार – सरसों की कृषक संरक्षित किस्म के बीज से उत्पादित सरसों फसल व बीज बचा सकेगें जैसा कि वे अधिनियम लागू होने से पूर्व कर रहे थे। लेकिन वे ऐसे बीज को किसी ब्रांड के नाम से नहीं बेच सकेंगे।

3. खराब बीज के लिए क्षतिपूर्ति – यदि संरक्षित किस्म वर्जित लक्षणों के अनुसार प्रदर्शन नहीं करती तो कोई कृषक या कृषकों का समूह या कृषकों का सगंठन प्राधिकरण के समक्ष विहित रीति से क्षतिपूर्ति का दावा कर सकेगा। प्राधिकरण किस्म के प्रजनक को नोटिस देगा और उसे अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद ऐसी क्षतिपूर्ति करने के लिए निर्देश देगा।

4. अनिवार्य अनुज्ञप्ति – सरसों की संरक्षित किस्मों का बीज पंजीकृत विक्रेताओं के द्वारा बेचा जा सकेगा। प्राधिकरण अपने विवेकानुसार शर्तों के साथ किन्हीं व्यक्तियों या संस्थाओं को बीज के उत्पादन तथा बिक्री के लिए अनुज्ञप्ति प्रदान कर सकेगा।

PPV&FR संयत्र किस्मों के संरक्षण और कृषक अधिकारी (भारतीय सरसों 30 अप्रैल, 2010) अधिसूचना पर बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के लिए एक फसल पात्र भारतीय कानून के तहत कृषि और सहकारिता (डी.ए.सी.) विभाग द्वारा जारी किया गया था, के रूप में कृषि मंत्रालय द्वारा अधिसूचित किया था। अधिनियम (2001) इसका मतलव हैं कि राष्ट्रीय पी. पी.वी. और एफ.आर. प्राधिकरण कामकाज के गत मंत्रालय ने भारतीय सरसों की दोनों सरसों ब्रैसिका जुन्सिया और करण राई की किस्मों के बौद्धिक संपदा (आई.पी.) पंजीकरण के लिए आवेदन प्रपत्र प्राप्त करने के लिए तैयार किया था।

उल्लंघन दण्ड एंव समाधान : इस अधिनियम के अधीन पंजीकृत किस्म को किस्म के प्रजनक या उसके प्रतिनिधि या अनुज्ञप्ति धारक के अलावा कोई यदि अन्य प्रजनक की अनुमति के बिना किस्म का अथवा मिलते–जुलते नाम से किसी अन्य किस्म का विक्रय, आयात, निर्यात अथवा उत्पादन करेगा तो क्षति की गम्भीरता व दोहराने के आधार पर 3 माह से 3 वर्ष तक के कारावास या 50 हजार से 20 लाख तक अर्थदण्ड या दोनों का भागी होगा।

निष्कपट उल्लंघन में बचाव : यदि कोई व्यक्ति जिस पर दोषारोहण हुआ हैं यह सिद्ध कर देता हैं कि उसे उल्लंघन करते वक्त एसे किसी अधिकार के विषय में जानकरी नहीं थी तो उसे अपराध मुक्त किया जा सकेगा।

पी.पी.वी. पंजीकरण का प्रभाव : जब इस तरह के आई.पी.वी. पंजीकरण के लिए आवेदन को स्वीकार कर लिया हैं तो रजिस्ट्रार निर्धारित प्रपत्र में पंजीकरण का प्रमाणपत्र जारी करता हो यह फसलों के मामले में 6 साल तक वैद्य है और यह निर्धारित किया गया कि वैद्यता की कुल अवधि 15 साल से अधिक नहीं होगी।

पादप किस्म एवं कृषक अधिकार सुरक्षा नियम 2003 :

पादप किस्म एवं कृषक अधिकार सुरक्षा अधिनियम 2001 की धारा–96 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए केन्द्र सरकार ने कुछ नियम बनाए हैं –

1. **प्राधिकरण की स्थापना :** पादप किस्म एवं कृषक अधिकार सुरक्षा प्राधिकरण तथा स्थायी समिति के सभापति तथा सदस्यों के चयन एवं नियुक्ति की रीति, उनकी कार्यविधि एवं देय भत्तों का निर्धारण।

तालिका 1 : सरसो अनुसंधान निदेशालय द्वारा विकसित भारतीय राई/सरसों की किस्मों का पंजीकरण

क्र.सं.	किस्मों	किस्म का वर्ग	संस्था का नाम	वर्ष	पंजीकरण संख्या
1.	एनआरसीएचबी 101	विद्यमान	डीआरएमआर	2012	रजि./190/2012
2.	एनआरसीडीआर 02	विद्यमान	डीआरएमआर	2012	रजि./410/2012
3.	एनआरसीएचबी 506	विद्यमान	डीआरएमआर	2014	रजि./412/2012
4.	एनआरसीवाई 05–02	विद्यमान	डीआरएमआर	2014	रजि./658/2014
5.	एनआरसीडीआर 601	विद्यमान	डीआरएमआर	2014	रजि./1258/2014
6.	गिरिराज (डीआरएमआरआईजे–31)	विद्यमान	डीआरएमआर	2014	रजि./2135/2014

तलिका 2 : निजी बीज कंपनियों द्वारा भारतीय सरसों की किस्मों का पंजीकरण

किस्म	वर्ग	संस्था	पंजीकरण के लिये जारी वर्ष	प्रमाण पत्र जारी वर्ष
कोरल 432 (पीएसी 432)	विद्यमान	एवेन्डा इण्डिया लिमिटेड	2012	20 मई, 2014
पलक	विद्यमान	निर्मल सीड प्राईवेट लिमिटेड	2011	2 दिसम्बर, 2014
पारास मनी–1	विद्यमान	मैं. शक्तिवर्धक हायब्रिड सीड प्राईवेट लिमिटेड	2012	3 दिसम्बर, 2014
पारस मनी–8	विद्यमान	मैं. शक्तिवर्धक हायब्रिड सीड प्राईवेट लिमिटेड	2012	17 दिसम्बर, 2014
पारस मनी–2	विद्यमान	मैं. शक्तिवर्धक हायब्रिड सीड प्राईवेट लिमिटेड	2012	27 जनवरी, 2014
4501	विद्यमान	पाईनियर ओवर सीड निगम	2010	25 मार्च, 2015
निरमल बोल्ड (एनएचएल–64)	विद्यमान	निर्मल सीड प्राईवेट लिमिटेड	2013	27 अप्रैल, 2015
अलबेली	विद्यमान	मैं. शक्तिवर्धक हायब्रिड सीड प्राईवेट लिमिटेड	2012	15 दिसम्बर, 2015
ब्लैक गोल्ड (एनएचएल–100)	विद्यमान	निर्मल सीड प्राईवेट लिमिटेड	2011	11 दिसम्बर, 2014
लाडी	विद्यमान	मैं. शक्तिवर्धक हायब्रिड सीड प्राईवेट लिमिटेड	2012	6 दिसम्बर, 2014

2. **प्राधिकरण के अधिकारियों तथा अन्य कर्मियों की नियुक्ति की विधि:** प्राधिकरण वित्त सलाहकार, विधि सलाहकार, ज्येष्ठ लेखाधिकारी, लेखाधिकारी, तकनीकी सहायक, कम्प्यूटर सहायक के पदों पर नियुक्ति कर सकेगा। उनके वेतनमान तथा अर्हताएं भी निर्धारित की गई हैं।

3. **आवेदनों अथवा निरूपण में दी जाने वाली सूचनाओं का ब्यौरा :** प्राधिकरण द्वारा आवेदनों के प्रारूप निर्धारित किये गये हैं। जैसे–पंजीकरण हेतु आवेदन, विरोध के लिए नोटिस, पंजीकरण का नवीनीकरण, लाभांशों के लिए आवेदन, पंजीकरण प्रमाणपत्र सौंपने या रद्द करने के लिए आवेदन (पी.वी.1–पी.वी. 33)।

4. **रजिस्ट्रार एवं केन्द्र सरकार द्वारा प्रयुक्त प्रपत्र :** प्रयुक्त प्रपत्रों के प्रारूप निर्दिष्ट किए गए हैं (तृतीय अनुसूची), जैसे–विज्ञापन का प्रपत्र, पंजीकरण प्रमाणपत्र, प्रजनक/प्रतिनिधि अनुज्ञप्ति धारक को नोटिस (प्रपत्र 1–12)।

5. **देय शुल्क :** विभिन्न कार्यों के लिए शुल्क की राशि, जैसे–पंजीकरण नवीनीकरण, विरोध का नोटिस, लाभांश आदि (द्वितीय अनुसूची।

6. **कार्यविधि :**

(अ) पादप किस्मों की राष्ट्रीय पंजिका में शामिल किये जाने वाले ब्यौरे।

(ब) परीक्षणों (डी.यू.एस. परीक्षण, विशेष परीक्षण आदि) की विधि।

राई-सरसों डॉक्टर : रोगों की पहचान और प्रबंधन की एक वेब आधारित प्रणाली

विनोद कुमार, अशोक शर्मा कुमार एवं प्रभू दयाल मीना
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

राई–सरसों की अधिकतम पैदावार लेने में किसानों को कई समस्याओं का सामना करना पड रहा हैं। फसल सुरक्षा में नये अनुसंधानों के वावजूद कई कारणों की बजह से किसान अभी भी फसल की अधिकतम उपज नहीं ले पा रहे हैं। इनमें से एक मुख्य कारण है कि फसल सुरक्षा सबंधी नवीनतम तकनीकें एवं वैज्ञानिक जानकारियाँ समय एवं सटीक ढंग से किसानों तक नहीं पहुँच पा रही हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नवीनतम विकास और आम आदमी के लिए इसकी पहुंच का उपयोग करके इस कमी को दूर किया जा सकता है। सरसों अनुसंधान निदेशालय ने फसल की सुरक्षा और उत्पादकता में सुधार के लिए कृषक समुदाय के बीच फसल सुरक्षा ज्ञान का प्रसार करने के लिए एक वेब आधारित राई–सरसों फसल सुरक्षा प्रणाली विकसित की है। यह ऑनलाइन सॉफ्टवेयर सरसों डाक्टर के रूप में नामित किया गया है।

राई सरसों फसलों से कुल तिलहन उत्पादन का 26 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त हो रहा है। राई–सरसों देश की प्रमुख तिलहनी फसलों में दुसरी सबसे बडी पैदा की जाने वाली फसल हैं। यह देश के लगभग 24 राज्यों में व्यापारिक एवं घरेलु उपयोग के लिए उगाई जाती है। देश में तिलहनी फसलों के कुल उत्पादन का लगभग 23 प्रतिशत तथा फसलों के कुल क्षेत्रफल का 25 प्रतिशत राई–सरसों के अन्तर्गत आता हैं। राजस्थान देश का सबसे बडा राई–सरसों उत्पादन करनें वाला राज्य हैं। राई–सरसों के कुल क्षेत्रफल का 45 प्रतिशत एवं उत्पादन का 46 प्रतिशत राजस्थान के अन्तर्गत हैं।

भारतवर्ष में बदलती कृषि क्रियायें जैसे अधिक सिंचाई, एकल फसल, अनियन्त्रित रासायनिक खादों का प्रयोग, संरक्षण क्रियायें (जल संग्रहण) और बीमारियों का प्रकोप बढने से राई सरसों फसल के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में उतार चढाव रहता है। राई–सरसों की अधिकतम पैदावार लेने में किसानों को कई समस्याओं का सामना करना पड रहा हैं। फसल सुरक्षा में नये अनुसंधानों के वावजूद कई कारणों की बजह से किसान अभी भी फसल की अधिकतम उपज नहीं ले पा रहे हैं। इनमें से एक मुख्य कारण है कि फसल सुरक्षा सबंधी नवीनतम तकनीकें एवं वैज्ञानिक जानकारियाँ समय एवं सटीक ढंग से किसानों तक नहीं पहुच पा रही है। सरसों के उत्पादन में अस्थिरता एवं कमी का एक मुख्य कारण फसल पर बीमारियों का प्रकोप भी है। काला धब्बा, सफेद रोली, मृदुरोमिल आसिता तथा चूर्णिता आसिता मुख्य रोग हैं जो कि फसल को 37 प्रतिशत तक हानि पहुँचाते हैं। देश के कई भागों में पिछले कुछ वर्षो से नई बीमारियों जैसे तना गलन, जीवाणु जनित तना व जड गलन और फिलोडी आदि का महत्व बढ़ रहा है। शोधकर्ताओं ने मूल्यवान कृषि ज्ञान और तकनीकों का विकास किया है लेकिन अनुसंधानों एवं इनके व्यवहारिक उपयोग में विस्तृत अंतराल है। भारतीय किसानों के लिए उन्हें और अधिक उत्पादक और प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए समय पर सटीक विशेषज्ञ सलाह की जरूरत है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नवीनतम विकास और आम आदमी के लिए इसकी पहुंच का उपयोग करके इस अंतराल को कम किया जा सकता है। इसी क्रम में सरसों अनुसंधान निदेशालय ने फसल की सुरक्षा और उत्पादकता में सुधार के लिए कृषक समुदाय के बीच विशेषज्ञ फसल सुरक्षा ज्ञान का प्रसार करने के लिए एक वेब आधारित राई–सरसों फसल सुरक्षा प्रणाली विकसित की है। यह ऑनलाइन सॉफ्टवेयर सरसों डाक्टर के रूप में नामित किया गया है।

यह ऑनलाइन सॉफ्टवेयर सरसों में होने वाली विभिन्न बीमारीयों की पहचान करने में सहायता करता हैं एवं उनके नियंत्रण के लिए आवश्यक उपाय सुझाता हैं। सर्व विदित हैं कि राई–सरसों में होने वाली बीमारीयां फसल को बुरी तरह से प्राभावित करती हैं सही समय पर इनकी रोकथाम न होने से राई–सरसों उत्पादन एवं उत्पादकता में कुल मिलाकर 20 प्रतिशत

तक की कमी आ जाती हैं। गम्भीर अवस्था में कुछ बीमारीयां तो ऐसी हैं जिनके प्रकुप से फसल में 37–70 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है।

किसानो को फसल में होने वाली बीमारीयों एवं उनके रोकथाम की जानकारी के लिए कृषि विभाग एवं कृषि विज्ञान केन्द्रो पर निर्भर रहना पड़ता हैं। जिनकी समय पर किसानों को उपलब्धता एक चुनौती पूर्ण कार्य हैं। इस स्थिति में यह सॉफ्टवेयर बहुत उपयोगी साबित हो सकता है। यह सॉफ्टवेयर वेव आधारित हैं इसलिए ग्रामीण क्षेत्रो में इसकी पहुंच हो सकती है। इंटरनेट के जरिये इसका उपयोग किया जा सकता है। यह सॉफ्टवेयर अभी अंग्रेजी मे है लेकिन इसकी उपयोगिता बढाने के लिए इसे द्विभाषी यानी हिंदी में और अंग्रेजी विकसित किया जा रहा हैं। इस सॉफ्टवेयर को चलाना बहुत आसान हैं यह पौधे के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न बीमारीयों के लक्षणों के आधार पर कार्य करता है। उपयोगकर्ता को सबसे पहले पौधे के प्रभावित हिस्से को चुनना पड़ता हैं। इसके बाद सॉफ्टवेयर स्वतः ही उस हिस्से पर विभिन्न बीमारीयों के सम्भावित लक्षण प्रदर्शित करता हैं। यहां पर उचित लक्षण चुनने के बाद सॉफ्टवेयर संम्भावित बीमारी की विस्तृत जानकारी एवं उसकी रोकथाम के उपाय बता देता हैं। यह सॉफ्टवेयर राई सरसों में शोधकर्ता वैज्ञानिकों, प्रसार कार्यकर्तायों एवं छात्रों के लिए बहुत उपयोगी हैं। इसका उपयोग बीमारी पहचान ने के लिए ही नहीं बल्कि राई–सरसों के उत्पादन बढाने एवं फसल सुरक्षा के लिए किया जा सकता है। निदेशालय में कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं, कृषि विज्ञान केन्द्रों के कर्मचारियों एवं किसानो के लिए चल रहे प्रशिक्षण कार्यक्रमों में जब इस सॉफ्टवेयर को चलाने का प्रशिक्षण दिया गया तो उन्होंने इसकी काफी सराहना की एवं समय की जरूरत बताया। प्रशिक्षणार्थियों ने कहा कि इस तरह के सॉफ्टवेयर अन्य फसलों के लिए भी बनने चाहिए।

इस सॉफ्टवेर की सहायता से सरसों के पौधे के किसी भी रोग ग्रस्त हिस्से पर दिखने वाले लक्षण को कंप्यूटर पर सरसों डॉक्टर पर मिलान कर के यह सुनिश्चित किया जा सकता है की कूनसा रोग फसल पर लगा है। साथ ही उसकी रोकथाम सम्बंधित जानकारी भी उपलब्ध हो सकेगी। सरसों डॉक्टर का मुख्य उद्देश्य रोगों की पहचान एवं उनकी रोकथाम सम्बंधित जानकारी घर बैठे उपलब्ध कराना है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी आजकल ई–मित्र एवं मोबाइल पर इन्टरनेट की सुविधा उपलब्ध है। इसलिए किसान एवं कृषि कर्मचारी सरसों डॉक्टर का फायदा लेकर सरसों के उत्पादन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ साथ अपनी आर्थिक हालात को भी मजबूत बना सकते हैं।

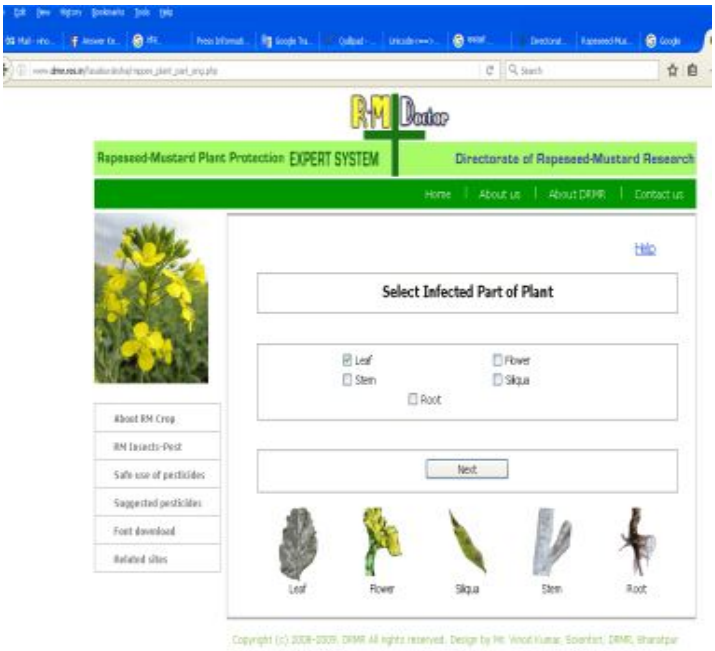

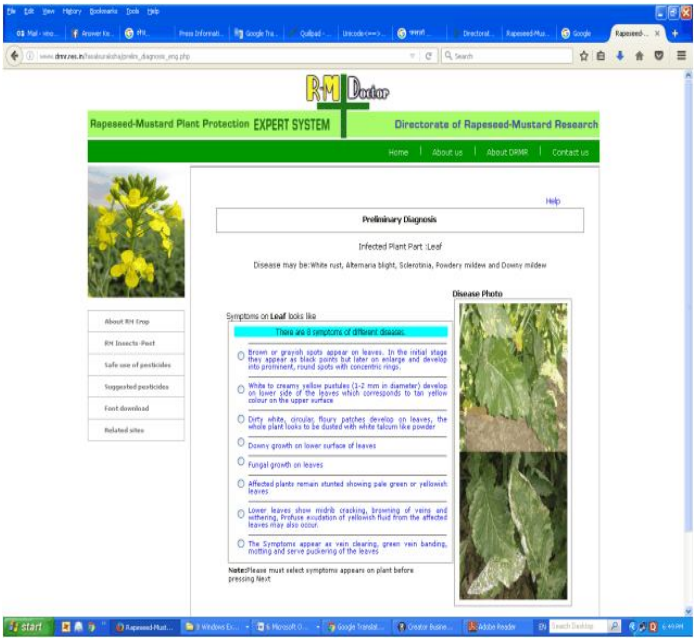

राई की उन्नतिशील प्रजातियों से अधिक उत्पादन की विधियाँ

महक सिंह

चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

राई/सरसों का रबी तिलहनी फसलों में प्रमुख स्थान है। उत्तर प्रदेश में अनेक प्रयासों के बाद भी राई के क्षेत्रफल में विशेष वृद्धि नहीं हो पा रही है। इसका प्रमुख कारण है कि सिंचित क्षमता में वृद्धि के कारण अन्य महत्वपूर्ण फसलों के क्षेत्रफल का बढ़ना। इसकी खेती सीमित सिंचाई की दशा में अधिक लाभदायक होती है। उन्नतिशील प्रजातियों के अपनाने से उत्पादन एवं उत्पादकता में अधिक वृद्धि होती है।

राई/सरसों की उन्नतशील प्रजातियों के अधिक उत्पादन हेतु निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना चाहिऐ :

उन्नतिशील प्रजातियाँ

प्रजातियाँ	विमोचन की तिथि	नोटीफिकेशन की तिथि	पकने की अवधि (दिनों में)	उत्पादन क्षमता कु./हे0	विशेष विवरण
सिंचित क्षेत्रों के लिए					
नरेन्द्र अगेती राई–4	1999	15.11.01	95–100	15–20	शीघ्र बुवाई हेतु
कान्ती	2002	11.03.03	100–105	18–20	शीघ्र बुवाई हेतु
वरूणा (टी–59)	1975	02.02.76	125–130	20–25	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
रोहिणी	1985	26.11.86	130–135	22–28	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
माया	2002	11.03.03	130–130	25–28	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
उर्वशी	1999	02.02.01	125–135	22–25	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
नरेन्द्र स्वर्णा राई–8	2004	23.08.05	130–135	22–25	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
बसन्ती (पीली राई)	2000	15.11.01	130–135	25–28	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
असिंचित क्षेत्रों के लिए					
वैभव	1985	18.11.85	120–125	15–20	शीघ्र बुवाई हेतु
वरूणा (टा–59)	1975	02.02.76	120–125	15–20	शीघ्र बुवाई हेतु
विलम्ब से बुवाई के लिए					
आशीर्वाद	2005	26.08.05	120–125	20–22	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
वरदान	1985	18.11.85	120–125	18–20	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
क्षारीय/लवणीय भूमि के लिए					
नरेन्द्र राई–8501	1990	17.08.90	125–130	18–20	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
सी.एस.–52	1987	15.05.98	135–145	16–20	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु
सी.एस.–54	2003	12.02.05	135–145	18–22	सम्पूर्ण उ.प्र. हेतु

खेत की तैयारी :

खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद पाटा लगाकर खेत को भुरभुरा बना लेना चाहिए। यदि खेत में नमी कम हो तो पलेवा करके तैयार करना चाहिए। ट्रैक्टर चालित रोटावेटर द्वारा एक ही बार में अच्छी तैयारी हो जाता है।

बीज दर :

सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों में 4–5 किग्रा./हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए।

बीज शोधन :

बीज जनित रोगों से सुरक्षा हेतु 2.5 ग्राम थीरम या मैटालेक्सिल 1.5 ग्राम प्रति किलो की दर से बीज को उपचारित करके बोयें अथवा भूमि जनित एवं बीज जनित रोगों के नियंत्रण हेतु बायोपेस्टीसाइड (जैव कवक नाशी) ट्राइकोडमा बिरडी 4–5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से शोधित करके बुवाई करें। बीज शोधन करने से सफेद गेरूई एवं तुलासिता रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रोकथाम हो जाती है।

बुवाई का समय एवं विधि :

राई बोने का उपयुक्त समय बुन्देलखण्ड एवं आगरा मण्डल में सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में तथा शेष क्षेत्रों में अक्टूबर का द्वितीय पखवाडा है। बुवाई देशी हल के पीछे (4–5 से.मी. गहरे) कूँड़ों में 45 से. मी. की दूरी पर करना चाहिए। बुवाई के बाद बीज ढ़कने के लिए हल्का पाटा लगा देना चाहिए। असिंचित दशा में बुवाई का उपयुक्त समय सितम्बर का द्वितीय पखवाडा है। विलम्ब से बुवाई करने पर माहूँ का प्रकोप एवं अन्य कीटों एवं बीमारियों की सम्भावना अधिक रहती है।

उर्वरक की मात्रा :

उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिऐ। सिंचित क्षेत्रों में नत्रजन 120 किग्रा., फास्फेट 60 किग्रा. एवं पोटाश 60 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। फास्फोरस का प्रयोग सुपर फास्फेट के रूप में अधिक लाभदायक होता है क्योंकि इससे सल्फर की उपलब्धता भी हो जाती है। यदि सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग न किया जाये तो गंधक की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए 40 किग्रा./हे. की दर से गंधक का प्रयोग करना चाहिए तथा असिंचित क्षेत्रों में उपयुक्त उर्वरकों की आधी मात्रा बेसल ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग की जाये। यदि डी.ए.पी. का प्रयोग किया जाता है तो इसके साथ बुवाई के समय 200 किग्रा. जिप्सम/हे. की दर से प्रयोग करना फसल के लिए लाभदायक होता है तथा अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 60 किंवटल/हे. की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में नत्रजन की आधी मात्रा व फास्फेट एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूँड़ों में बीज के 2–3 सेमी. नीचे नाई (मशीन) द्वारा दिया जाय। नत्रजन की शेष मात्रा पहली सिंचाई (बुवाई के 25–30 दिन बाद) के बाद टापड्रेसिंग में डाली जाय।

निराई–गुड़ाई एवं विरलीकरण :

बुवाई के 15–20 दिन के अन्दर घने पौधों को निकालकर उनकी आपसी दूरी 10–15 सेमी. का देना आवश्यक है। खरपतवार नष्ट करने के लिए एक निराई–गुड़ाई, सिंचाई के पहले और दूसरी पहली सिंचाई के बाद करनी चाहिए रसायन द्वारा खरपतवार नियंत्रण करने पर बुवाई से पूर्व फ्लूक्लोरोलिन 45 ई.सी. की 2.2 लीटर या पैण्डीमेथलीन 30 ई.सी. लीटर/हे. की दर से बुवाई के दो दिन के अन्दर 800–1000 लीटर पानी में घोलकर समान रूप से छिड़काव करें।

सिंचाई :

राई नमी की कमी प्रति, फूल आने के समय तथा दाना भरने की अवस्थाओं में विशेष संवेदनशील होती हैं। अतः अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 2 सिंचाई क्रमशः पहली बुवाई के 30–35 दिन बाद तथा दूसरी वर्षा न होने पर 55–65 दिन बाद करें।

फसल सुरक्षा :

प्रमुख कीट–

1. **आरा मक्खी–** इस कीट की सूड़ियाँ काले स्लेटी रंग की होती हैं जो पत्तियों को किनारों से अथवा पत्तियों में छेद कर तेजी से खाती हैं, तीव्र प्रकोप की दशा में पूरा पौधा पत्ता विहीन हो जाता है।
2. **चित्रित बग–** इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ चमकीले काले, नारंगी एवं लाल रंग के चकत्ते युक्त होते हैं। शिशु एवं प्रौढ़ पत्तियों, शाखाओं, तनों, फूलों एवं फलियों का रस चूसते हैं जिससे प्रभावित पत्तियाँ किनारों से सूख कर गिर जाती हैं प्रभावित फलियों में दाने कम बनते हैं।
3. **बालदार सूडी–** सूंडी काले एवं नारंगी रंग की होती हैं तथा पूरा शरीर बालों से ढका रहता है। सूड़ियाँ प्रारम्भ में झुण्ड में रहकर पत्तियों को खाती हैं तथा बाद में पूरे खेत में फैल कर पत्तियाँ खाती हैं। तीव्र प्रकोप की दशा में पूरा पौधा पत्ता विहीन हो जाता है।
4. **माहूँ–** इस कीट की शिशु एवं प्रौढ़ पीलापन लिए हुए रंग के होते हैं जो पौधों के कोमल तनों, पत्तियों, फूलों एवं नये फलियों के रस चूसकर कमजोर कर देते हैं। माहूँ मधुस्राव करते हैं जिस पर काली फफूँद उग जाती है जिससे प्रकाश संश्लेशण में बाधा उत्पन्न होती है।
5. **पत्ती सुरंगक कीट–** इस कीट की सूड़ी पत्तियों में सुरंग बनाकर हरे भाग को खाती हैं जिसके फलस्वरूप पत्तियों में अनियमित आकार की सफेद रंग की रेखायें बन जाती हैं।

नियंत्रण के उपाय :

1. आरा मक्खी एवं बालदार सूड़ी के नियंत्रण के लिए मैलाथियान 5% डब्लू.पी. की 20–25 किग्रा/हे. बुरकाव अथवा मैलाथियान 50% ई. सी. की 1.50 लीटर अथवा डाईक्लोरोवास 76% ई.सी. की 500 मिली. मात्रा अथवा क्यूनालफास 25% ई.सी. की 1.25 लीटर/हे. की दर से लगभग 600–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
2. माहूँ चित्रित बग एवं पत्ती सुरंगक कीट के नियंत्रण हेतु डाईमेथोएट 30% ई.सी. अथवा मिथाइल–ओ–डेमेटान 25% ई.सी. अथवा क्लोरोपाईरीफास 20% ई.सी. 1.0 लीटर अथवा मोनोक्रोटोफास 36% एस.एल. की 500 मिली/हे. की दर से लगभग 600–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए अथवा एजाडिरेक्टिन (नीम आयल) 0.15% ई.सी. 2.5 लीटर/हे. की दर से भी प्रयोग करना चाहिए।

प्रमुख रोग :

1. **अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा :** इस रोग में पत्तियों तथा फलियों पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे बनते है जो गोल छल्ले के रूप में पत्तियों पर स्पष्ट दिखाई देते है। तीव्र प्रकोप की दशा में धब्बे आपस में मिल जाते हैं जिससे पूरी पत्ती झुलस जाती है।
2. **सफेद गेरूई :** इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर सफेद फफोले बनते हैं जिससे पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती हैं। फूल आने की अवस्था में पुष्पक्रम विक्रत हो जाता है जिससे कोई भी फली नहीं बनती है।
3. **तुलासिता :** इस रोग में पुरानी पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटे–छोटे धब्बे तथा पत्तियाँ की निचली सतह पर इन धब्बों के नीचे सफेद रोयेदार फफूँदी उग जाती है जिससे धीरे–धीरे पूरी पत्ती पीली होकर सूख जाती है।

नियंत्रण के उपाय

सफेद गेरूई, तुलासिता एवं अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग नियंत्रण हेतु मैकोजेब 75 डब्लू.पी. की 2.0 किग्रा अथवा जिनेब 75% डब्लू.पी. की 2.0 किग्रा अथवा जिरम 80% डब्लू.पी. की 2.0 किग्रा अथवा कापर ऑक्सीक्लोराइड 50% डब्लू.पी. की 3.0 किग्रा मात्रा प्रति हेक्टेयर लगभग 600–800 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

कटाई–मड़ाई :

जब 75% फलियाँ सुनहरे रंग की हो जायें, फसल को काट कर सुखाकर व मड़ाई करके बीज अलग करना चाहिए। देर करने से बीजों के झड़ने की आशंका रहती है। बीज को खूब सुखाकर ही भण्डारण करना चाहिए।

प्रभावी बिन्दु :

1. गर्मी में गहरी जुताई करें।
2. समय से बुवाई करें।
3. सन्तुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।
4. बुवाई के 10–15 दिन बाद विरलीकरण करना परम आवश्यक है।
5. अधिक उत्पादन लेने हेतु सल्फर (गंधक) का प्रयोग अवश्य करें।
6. आई.पी.एम. का प्रयोग किया जाये।

सरसों में लगने वाले जड गलन रोग की पहचान एवं प्रबंधन

प्रभू दयाल मीना, अनुभति शर्मा, हरि सिंह मीना, रितिका गुप्ता एवं पंकज शर्मा
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

पिछले कुछ वर्षों से जड़ गलन नामक रोग राजस्थान में सरसों की फसल में पैदावार के नुकसान का एक बडा कारण बन गया है। जड़ गलन रोग स्कलेरोसिया रोल्फसाई नामक फफूंद से फैलता है। यह एक मृतजीवी (एक सड़ी हुई वनस्पति पर जीनेवाला) कवक है। जो कि पौधों के ऊतकों को अग्रिम मारता है। पेक्टोलाईटिक एंजाइम और सेलुलेज उत्पन्न करते हैं जिससे ऊतकों का पानी चूसकर मार देता है। प्रारंभिक लक्षण अन्य बेसल स्टेम गलन की वजह से आने वाले लक्षणों के समान हैं। निचली पत्तियों का रंग पीला पडने के कारण पौधे कमजोर पड़कर गलन से पतन होकर मर जाते हैं। यदि फसल में रोग दिखाई देने लगता है तो इसकी रोकथाम के लिए समय रहते उचित प्रबंधन करना चाहिए।

सरसों की फसल में लगने वाले अनेक रोगों की वजह से उत्पाद्कता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। मौसम परिवर्तन के बदलते दौर में नये–नये फफूंद फसल को प्रभावित कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से जड़ गलन नामक रोग राजस्थान में सरसों की फसल में पैदावार के नुकसान का एक बडा कारण बन गया है। जड़ गलन सरसों की एक फफूंद से लगने वाली गंभीर बीमारी है। इसके जनक के रूप में मृदा जनित फफूंद के अलावा बैक्टिरिया का भी प्रकोप देखने में आया है। कभी–कभी दोनों का प्रकोप साथ–साथ होता है। पिछले कुछ सालों से सरसों की फसल में यह रोग ज्यादा देखने को मिल रहा है। किसान इस रोग को अपने खेत में देखकर हतोत्साहित है।

जड गलन रोग फसल में बुवाई के 35 से 50 दिन बाद प्रथम सिंचाई के दौरान देखने को मिलता है। पौधों में फूल खिलने के दौरान फसल में पानी लगाने से नमी होने के कारण फफूंद के बीजाणु उत्पन्न होकर फैलना शुरु कर देते हैं और शीघ्र ही विकराल रुप धारण कर के सारे खेत में फैल जाता है जिससे पौधे सूखकर मर जाते हैं। कई बार किसान का पूरा खेत खाली हो जाता है।

रोग जनक

जड गलन रोग स्कलेरोसिया रोल्फसाई नामक फफूंद से फैलता है। रोग जनक स्कलेरोसिया रोल्फसाई, व्यापक रुप से उत्तरी भारत के साथ ही दुनिया के गर्म भागों में वितरित एक मृदाजनित कवक है। देश के उत्तरी क्षेत्रों में इसे 'गलन' बीमारी नाम से भी जाना जाता है। स्कलेरोसिया रोल्फसाई एक किस्म की कवक है जो हर साल द्विबीजपत्री पौधों के एक हजार से अधिक फसलों की प्रजातियों में इस रोग को जन्म देने के कारण एक बहुत व्यापक हानि होने का अनुमान है। कवक 0.5–2.0 मिलीमीटर से भी छोटे भूरे रंग के गोल स्कलेरोसिया

के रूप में मिट्टी में जीवित रहते हैं। स्कलेरोसिया आकार और रंग में सरसों के बीज के समान है और यह कवक कभी–कभी 'यह सरसों के बीज कवक' के रूप में जाना जाता है। यह एक मृतजीवी (एक सड़ी हुई वनस्पति पर जीने वाला) कवक है। जो कि पौधों के ऊतकों को अग्रिम मारता है, पेक्टोलाईटिक एंजाइम और सेलुलेज उत्पन्न करते हैं तथा ऊतकों का पानी चूसकर मार देता है। कवक द्वारा ऑक्जेलिक एसिड का भी उच्च मात्रा में उत्पादन होता है। कवकजाल का विकास और स्क्लेरोसिया का अंकुरण निरंतर प्रकाश में तेजी से होता है।

रोग के कारण

रोग का प्रकोप शुष्क गर्म मौसम की स्थिति में अत्यधिक होता है उच्च तापमान 28–30 डिग्री सेल्सियस पसंद करते हैं एवं निम्न आर्द्रता 60% से कम आर्द्रता आदि रोग फैलाव हेतु महत्वपूर्ण कारक है। इसके अलावा अवांछित मात्रा में रासायनिक उर्रवकों का प्रयोग भी इस रोग को फैलाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

लक्षण

आमतौर पर यह बीमारी खेत में अलग–थलग क्षेत्र के रूप में प्रकट होती है, मुख्य रूप से जहाँ पौधों के पत्ते, मिट्टी की सतह को कवर करने के लिए पर्याप्त घने हो गए हैं। प्रारंभिक लक्षण अन्य बेसल स्टेम गलन की वजह से आने वाले लक्षणों के समान हैं। निचली पत्तियों का रंग पीला पडने के कारण पौधे कमजोर पड़कर गलन से पतन होकर मर जाते हैं। सबसे पहले पौधों की पत्तियाँ मुरझाकर नीचे की ओर लटक जाती हैं, फिर धीरे–धीरे तना भी झुककर लटक जाता है। जबकि फफूंद से ग्रसित पौधों की जड़ें गल जाती हैं परन्तु बदबू नहीं फैलती है। तनों में दबा हुआ, पानी से रिक्त, धँसा हुआ घाव आमतौर पर मिट्टी की सतह के नीचे पाया जाता है और वे जल्द ही घाव से एक सफेद कवकजाल के साथ ढ़क जाते हैं। कवक पौधे पर मिट्टी की सतह या नीचे की ओर हमला करते हैं। कवक संक्रमित भागों के आसपास और धरती के ऊपर या अन्दर में प्रचुर मात्रा में सफेद कवकजाल पैदा करता है। स्क्लेरोसिया पौधे के संक्रमित भागों पर बने कवकजाल द्वारा मिट्टी में बनते हैं उनकी उपस्थिति रोग का मुख्य नैदानिक सुविधा है।

रोकथाम

सरसों की फसल में कहर बरपा देने वाला रोग सिंचाई शुरू होने के साथ ही दिखाई देने लगता है। इसके लिये हमेशा सजग रहकर खेत में खड़ी फसल की लगातार निगरानी रखने की आवश्यकता है। यदि फसल में रोग दिखाई देने लगता है तो इसकी रोकथाम के लिए समय रहते उचित प्रबंधन करना चाहिए।

ग्रसित पौधों को जड़ सहित उखाडकर खेत के बाहर ले जाकर नष्ट करें।

टेट्रासाइक्लिन 200 पी.पी.एम. तथा कार्बेन्डाजिम 0.1% की दर से घोल बनाकर फसल के निचले भाग पर छिडकाव करें।

गहरी जुताई करने से स्क्लेरोसिया, गहराई से मिट्टी में दफन हो जाने पर जीवित नहीं रहते हैं।

गैर–मेजबान फसलों के साथ फसल चक्र अपनाने से सरसों के लिए एक प्रभावी नियंत्रण हो सकता है।

मिट्टी संशोधन का प्रयोग करें। विरोधी सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए मिट्टी में मिलाया जा सकता है।

सरसों के तेल में आर्जीमोन की मिलावट, प्रभाव, पहचान एवं रोकथाम के उचित मापदंड

रूपेन्द्र कौर, अशोक कुमार शर्मा, भगवत सिंह राठौड, अनुभूति शर्मा एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

सरसों तेल में मुख्यतः असंतृप्त वसीय अम्ल अधिक मात्रा में जाये जाते हैं, जो शारीरिक वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक है। साथ ही यह विटामिन 'ई', विटामिन 'ए', पोटेशियम, सोडियम एवं आहारिय रेशों का भी उतम स्त्रोत है। उपभोक्ता की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए विक्रेता द्वारा मिलावट का सहारा लिया जाता है, जो न केवल तेल की गुणवता को कम करता है, ब्लकि इसको विशाक्त बनाकर स्वास्थय सबंधी समस्याएं पैदा करता है। सरसों के तेल में मुख्यतः आर्जीमोन के बीज मिलाये जाते हैं। जिसको गृहण करने से अनेकों प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिसमें से प्रमुख रूप से ड्रॉप्सी नामक रोग है, इस रोग में मांसपेशियों में तीव्र गति से ऐंठन होने लगती है और व्यक्ति मांसपेशिय अपंगता का शिकार हो जाता है।भारत सरकार ने सन् 1954में खाद्य पदार्थों में मिलावट की रोकथाम हेतु कानून बनाये, जैसे खाद्य पदार्थ निषेध अधिनियम 1954, कृषि उत्पादों के ग्रेडिंग तथा मार्केटिंग अधिनियम 1937,एगमार्क। इसके अतिरिक्त भोज्य पदार्थों के परीक्षण हेतु विभिन्न प्रयोगशालाएँ भी है।

खाद्य तेलों में सरसों का तेल महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्तरी–पूर्वी, उत्तरी एवं पूर्वी क्षेत्र में इसका अधिक उपयोग किया जाता है। यह तेल कई पौष्टिक तत्वों से भरपूर है। इसमें मुख्यतः असंतृप्त वसीय अम्ल अधिक मात्रा में जाये जाते हैं, जो शारीरिक वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक है। इन वसीय अम्लों का निर्माण शरीर द्वारा नही किया जाता, ऊपरी भोज्य पदार्थों से ही इनकी पूर्ति संभव है। साथ ही यह विटामिन 'ई', विटामिन 'ए', पोटेशियम, सोडियम एवं आहारिय रेशों का भी उतम स्त्रोत है। इसकी पौष्टिकता एवं परिरक्षक गुणवत्ता के कारण इसका उपयोग अधिकतर घरों में किया जाता है। लेकिन आधुनिक युग में खान–पान की आदतों में परिवर्तन के कारण, खाद्य तेल मांग के अनुसार उत्पादन न होने के कारण इनकी उचित पूर्ति नही हो पाती है तथा उपभोक्ता की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए विक्रेता द्वारा मिलावट का सहारा लिया जाता है, जो न केवल तेल की गुणवता को कम करता है, बल्कि इसको विषाक्त बनाकर स्वास्थय सबंधी समस्याएं पैदा करता है। जो मानव शरीर के लिए घातक हो सकती है। अतः खाद्य तेल में मिलावट एक गंभीर समस्या है। अक्सर, खाद्य तेलों में न खाने योग्य, निम्न कोटि का पदार्थ मिलाकर विक्रेता द्वारा अधिक मुनाफा कमाया जाता है परन्तु इसका खामियाजाा उपभोक्ता को भुगतना पड़ता है।

सरसों के तेल में मिलावट

सरसों के तेल में मुख्यतः आर्जीमोन के बीज मिलाये जाते हैं। आर्जीमोन एक प्रकार का खरपतवार है। जो रंग, रूप एवं आकार में सरसों के बीज से मिलता–जुलता है इसकी पहचान करना मुशकिल है। अतः तेल बनाने वाले सरसों के बीजों में इन बीजों का मिलाया जाता है। क्योंकि ये एक दूसरे में भलीभांती मिश्रित हो जाते हैं। इनसे बने मिश्रित तेल को पहचानना भी संभव नहीं है। उपभोक्ता द्वारा आसानी से यह तेल उपयोग में लिया जात है। जिसको गृहण करने से अनेकों प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिसमें से प्रमुख रूप से ड्रॉप्सी नामक रोग है, इस रोग में मांसपेशियों में तीव्र गति से ऐंठन होने लगती है और व्यक्ति मांसपेशिय अपंगता का शिकार हो जाता है। साथ ही पाचन संबधी बीमारियों का भी प्रकोप हो जाता है।

भोज्य/खाद्य तेल में मिलावट के उद्देश्य

उपभोगता की मांग के अनुरूप पूर्ति न होने पर उस कमी की पूर्ति हेतु मिलावट की जाती है। खाद्यों में मिालावट मुख्यतः दो प्रकार से होती है – एक अज्ञानतावश एवं दूसरी जानभूझकर की गई मिलावट।

विक्रेता द्वारा अधिक से अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से निम्न स्तर के खाद्य तेलों की मिलावट सरसों के तेल में की जाती है।

मिलावट की पहचान कैसे करें

वर्तमान समय में मिलावट का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। शुद्ध खाद्य पदार्थ का मिलना मुशकिल हो गया है। जिसका दुष्प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहा है, जिसके कारण पाचन संस्थान, नाडी संस्थान, संवेदी तंत्र प्रभावित हो जाते हैं। लगातार मिलावटी तेल के प्रभाव से व्यक्ति सामान्य जीवन निर्वाह नहीं कर सकता क्योंकि इनका हानिकारक प्रभाव मानव–शरीर पर पड़ता है।

इसलिए इस मिलावट की पहचान करना अनिवार्य हो गया है ताकि इसके दुष्प्रभावों से बचा जा सके तथा स्वस्थ जीवन निर्वाह किया जा सके। यह पहचान घर पर भी आसानी से की जा सकती है–

विधि :

5 मिली लीटर सरसों के तेल में 5 मिली लीटर नाइट्रिक अम्ल मिलाकर 4 मिनट तक गर्म करें। यदि इसका रंग परिवर्तित होकर लाल हो जाये तो इस तेल में आर्जीमोन का तेल मिला हुआ है। आप यह पहचान आसानी से घर पर कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त भोज्य पदार्थो के परीक्षण हेतु विभिन्न प्रयोगशालाएँ है–

1. सरकारी संस्थाओं, उद्योगों द्वारा संचालित प्रयोगशाला
2. निर्यात निरीक्षक काउन्सिल द्वारा स्थापित प्रयोगशाला
3. कार्पोरेशन एवं म्यूनिसिपल प्रयोगशाला
4. राज्य सरकार द्वारा स्थापित फुड एवं प्रशासन प्रयोगशाला
5. भारत सरकार द्वारा स्थापित केन्द्रीय भोज्य पदार्थ परीक्षण प्रयोगशाला।

मिलावटी भोज्य पदार्थो के नमूने को आहार निरीक्षण के कार्यालय या इन प्रयोगशालाओं में ले जाकर जमा करवाये जाने चाहिए। आहार निरीक्षक इसकी जाँच करके परखता है तथा दोषी व्यक्ति को नियमानुसार आर्थिक दण्ड एवं उचित सजा दी जा सके।

खाद्य पदार्थो की गुणवत्ता हेतु मानक

भारत सरकार ने सन् 1954में खाद्य पदार्थो में मिलावट की रोकथाम हेतु कानून बनाये जैसे खाद्य पदार्थ निषेध अधिनियम 1954, कृषि उत्पादों के ग्रेडिंग तथा मार्केटिंग अधिनियम 1937, एगमार्क। इसके अतिरिक्त भोज्य पदार्थो के परीक्षण हेतु विभिन्न प्रयोगशालाएँ है।

खाद्य पदार्थ निषेध अधिनियम 1954 के नाम से जाना जाता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस नियम के अंतर्गत सबसे पहले कलकता में भोजन प्रयोगशाला की स्थापना की गई। तत्पश्चात मैसूर में केन्द्रीय भोजन तकनीकी शोध संस्थान की स्थापना हुई जो खाद्य पदार्थो में उपस्थित मिलावट की जाँच परख करती है। इस नियम के अंतर्गत खाद्यों में मिलावट पाये जाने पर दोषी व्यक्ति को एक हजार रूपया जुर्माना एवं छः माह से छः साल कारावास की सजा का प्रावधान है।

खाद्य निषेद अधिनियम 1 जून 1955 से लागू हुआ तथा 1968 एवं 1973 में इसमें संशोधन किये गये। इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ता के स्वास्थय को बेहतर बनाना, भोजन की गुणवत्ता में सुधार कर सुरक्षित खाद्यों के व्यापार को बढ़ावा देना है।

एगमार्क भारत सरकार के मार्केटिंग तथा निरीक्षण निदेशालय ने विभिन्न भोज्य पदार्थो की न्यूनतम गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए यह मानक तैयार किया है। यह चिन्ह मुख्यतः भोज्य पदार्थो की भौतिक एवं रासायनिक विशेषताओं, पोषक तत्वों की मात्रा के आधार पर विभिन्न कृषि उत्पादों जैसे खाद्य तेल, घी, मक्खन, अंडा, मसाले आदि पर दिया जाता है।

कृषि उत्पादों के ग्रेडिंग तथा मार्केटिंग अधिनियम 1937

सभी भोज्य पदार्थो की गुणवत्ता एवं पौष्टिकता के लिए इस मानक का प्रयोग किया जाता है जो यह दर्शाता है कि उचित उत्पाद स्वास्थ्य वर्द्धक व गुणकारी है। इसमें भोज्यों की अति उत्तम, उत्तम एवं साधारण के आधार पर ग्रेडिंग की जाती है।

सरसों के उत्पादन एवं प्रबंधन हेतु नवीन तकनीकें

सुनील कुमार[1], बजरंग लाल ओला[1], भगवत सिंह राठौड़[1], पंकज शर्मा[2] एवं धीरज सिंह[2]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, गूंता-बानसूर, अलवर (राज.)

[2]भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारतीय कृषि प्रधान देश है। तिलहनी फसल, देश की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल समूह है लेकिन इसके मांग व उत्पादन में बहुत बड़ा अन्तर है। देश में मुख्यतः नौ तिलहनी फसलें हैं। इनमें से राई–सरसों एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है। बढ़ती जनसंख्या और लोगों की उच्च स्तरीय रहन–सहन की वजह से 2030 तक खाद्य तेलों की मांग करीब 37 मिलियन टन होगी। इसकी पूर्ति हेतु राई–सरसों का महत्वपूर्ण योगदान रहेगा। अतः इसके अच्छे उत्पादन के लिए, अच्छे बीज, अच्छे भुमि, बुवाई का समय, सिंचाई प्रबंधन, खाद व उर्वरक, बीज दर, बीजोपचार के अलावा खरपतवार व कीट–रोग का सही समय पर उचित प्रबंधन करना आवश्यक है। ऐसा तभी संभव है जब आप वैज्ञानिक तरीके अपनाएगें।

राई–सरसों में लगने वाले कीट–रोग किसी न किसी प्रकार से राई–सरसों को ग्रसित कर नुकसान पहुँचाते हैं जिससे कि उपज में 10–90% तक की कमी हो सकती है। राई – सरसों की फसल में लगभग 50 नाशीजीव कीट एवं 20 रोग नुकसान पहुँचाते हैं। सरसों की वैज्ञानिक खेती के तरीके इस प्रकार हैं –

1. **उन्नत किस्में :**

किस्म	उपज (क्विंटल/हैक्टेयर)	खेती
एन.आर.सी.डी.आर–02	19–26	सिंचित
आर.एच. 749	24–28	सिंचित
एन.आर.सी.एच.बी–506	15–25	सिंचित
एन.आर.सी.एच.बी–101	13–15	वर्षा आधारित
डी.आर एम.आर आई जे 31	22–27	सिंचित
रोहनी	22–28	सिंचित
आर.एच. 119	20–22	सिंचित
आर.एच. 406	22–24	वर्षा आधारित
उर्वशी	20–22	सिंचित

2. **बीज दर :** 2.5–3.5 किलो/हे. की दर से व पंक्ति से पंक्ति 30–45 सें.मी. पौधे से पौधे 10–15 सें.मी. पर बुवाई करनी चाहिए।

3. **बुवाई का समय :** 10–25 अक्टूबर तक करने में कीट–रोग कम लगते हैं और अधिक उत्पादन भी होता है।

4. **बीजोपचार :**

सफेद रोली व मृदुरोमिल आसिता रोग से बचाव हेतु बीज को मैटालैक्जिल (एप्रॉन 35 एस.डी.) 6 ग्रा./ किलो की दरसे उपचारित कर बुवाई करें।

चितकबरा कीट से बचाव हेतु बीज को इमीडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू.एस. 5 ग्रा./किलो बीज या इमीडाक्लोप्रिड 17.5 एस.एल. 5 मि.ली./किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करें।

तना गलन (स्कलेरोटिनिया गलन) रोगः इस रोग से बचाव हेतु बीज को कार्बेन्डाजिम 50% डब्ल्यू.पी. 2 ग्रा./किलो बीज की दर से बीजोपचारित कर बुवाई करें।

5. **खरपतवार नियंत्रण**

खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई पूर्व फ्लुक्लोरोलिन 2.2 ली./हे. की दर से 600–800 लीटर पानी में मिलाकर छिडकें।

अथवा 3.3 लीटर पेन्डिमेथालीन (30 ई.सी.) 600–800 लीटर पानी

में मिलाकर बुवाई के 1–2 दिन बाद छिडकें।

6. सिंचाई प्रबंधन

एक सिंचाई उपलब्ध है, तो बुवाई के 60–70 दिन बाद।

दो सिंचाइयां उपलब्ध हों तो, पहली बुवाई के 30–40 दिन बाद तथा दूसरी 70–80 दिन बाद और

तीन सिंचाईयां उपलब्ध हों तो–

पहली बुवाई के 35–40 दिन बाद,

दूसरी बुवाई के 70–80 दिन बाद अर्थात पुष्पावस्था पर तथा

तीसरी इसके 30–35 दिन बाद अर्थात् फली बनने पर देवें।

7. प्रमुख व्याधि

सफेद रोली : सफेद रतुआ एंव मृदुरोमिल आसिता रोग प्रायः संयुक्त रूप से सभी जगह आता है। नवम्बर माह में 30–40 दिन की फसल पर जब तापमान 10–18 डिग्री सेल्सियस के आसपास रहता है तो पौधे की पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग के एकल फफोले बनते हैं। रोग की उग्रता बढ़ने के साथ–साथ ये आपस में मिलकर अनियमित आकार ग्रहण करते हैं। इन फफोले के ठीक उपर पत्तियों की ऊपरी सतह पर गहरे भूरे कथई रंग के धब्बे दिखने लगते हैं। पूर्ण विकसित हो जाने पर फफोले फट जाते हैं और सफेद भूरे चूर्ण के रूप में बीजाणु धानियाँ फैल जाती है। वातावरण में नमी 75% से अधिक आर्द्रता एवं तापमान 5–12 डिग्री सेन्टीग्रेड के साथ साथ बदलीयुक्त 2–6 घन्टे धूप जलवायु इस रोग के फैलाव हेतु अति उपयुक्त है।

प्रबंधन :

समय (1 से 20 अक्टूबर तक) पर बुवाई को करें।

फसल को खरतपवार रहित रखें एवं फसल अवशेषों को नष्ट कर दें।

बुवाई के 50 एवं 70 दिन के फसल अवधि में लहसुन बल्ब या नीलगिरी पत्ता (0.2% डब्ल्यू/वोल्यूम) घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

नियंत्रण हेतु मैटालैक्जिल एम 8% +मैन्कोजेब 64% डब्ल्यू. पी. 250 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी या

मैटालैक्जिल एम 4% +मैन्कोजेब 64% डब्ल्यू. .पी. 250 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी के घोल बनाकर छिड़कें।

मृदुरोमिल आसिता रोग : इससे करीब बीज उत्पादन में 58 प्रतिशत तक कमी आती है। यह रोग प्रारम्भ में छोटे–छोटे गोलाकार मटमैले भूरे या बैगनी रंग के धब्बे प्रथम दो पत्तियों व अन्य पत्तियों की निचली सतह पर बनते हैं जो कि बाद में आपस में मिलकर अनियमित आकार के हो जाते हैं। यह ठंडे व नम वातावरण में अधिक तीव्रता से प्रकट होता है। इसके संक्रमण से तना काफी लम्बाई तक सूज कर मुड़ जाता है। सूजे व फूले हुए पुष्पागों पर मृदुरोमिल आसिता व सफेद रोली के मिश्रित लक्षण दिखाई देते है।

प्रबंधन

समय पर (20 –25 अक्टूबर) तक बुवाई करें ।

रोग ग्रसित फसल अवशेषों को जला दें।

अधिक नत्रजन खाद का प्रयोग न करें।

इसके नियंत्रण हेतु मैटालैक्जिल एम 4% +मैन्कोजेब 64% डब्ल्यू. पी. 250 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी अथवा

मैन्कोजेब 2 ग्रा. या मैटालैक्सिल 8% + मैन्कोजेब 64% को 250 ग्रा./100 ली. के घोल बनाकर छिडकाव करें।

तना गलन रोग : यह रोग पूरे देश भर में राई–सरसों उगाये जाने वाने सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। इसके संक्रमण से निचले क्षेत्रों में उपज में 35% तक कमी हो सकता है। पत्तों पर इसके संक्रमण एस्कस से होता है। यह पत्तियों पर गोलाकार, अण्डकार या अनियमित आकार के छिद्र बनाते हैं व इसके चारों और पीलापन दिखाई देता है। इस रोग के संक्रमण तने के निचले भाग में मटमैले या भूरे रंग के फफोले के रूप में प्रकट होते है एवं बाद में इसके ऊपर रूई जैसे फफूंद के द्वारा ढ़क जाते हैं। ग्रसित पौधे पर स्केलेरोशिया बनाते हैं। रोग की तीव्रता फूल आने से लेकर पत्तियाँ बनने तक के समय में औसत तापमान 18–25 डिग्री सेन्टीग्रेट एवं आर्दता 90–95% के साथ ही वर्षों से मृदा के बहाव में सहायक होता है।

प्रबंधन

गर्मी में खेतों की गहरी जुताई करना चाहिए जिससे कि भूमि में छिपे स्केलेरोशिया नष्ट हो जाए।

फसल चक्र अपनायें ।

बुवाई 10–25 अक्टूम्बर तक करने से खड़ी फसलों में रोग कम लगते हैं।

2 ग्रा./किलो बीज की दर से बीजोपचारित कर बुवाई करने से खड़ी फसलों में तना गलन की समस्या काफी कम हो जाती है।

इसके नियंत्रण हेतु बुवाई के 50 एवं 70 दिन के फसल अवधि पर कार्बेन्डाजिम 50% डब्ल्यू. पी. 200 ग्रा./100 लीटर पानी के घोल बनाकर छिड़कें।

अल्टर्नेरिया ब्लाईट : यह रोग पूरे भारत वर्ष में उन जगहों पर पाया जाता है जहाँ पर राई–सरसों की खेती की जाती है।

इस रोग के संक्रमण से पीली सरसों में 35–45% भूरी सरसों में 35–45% व भारतीय सरसों में 17–48% तक उत्पादन में कमी आ सकती है।

प्रबंधन

नियंत्रण हेतु मैन्कोजेब 200 ग्रा. या मैटालैक्सिल 8% + मैन्कोजेब 64% को 250 ग्रा. या /100 लीटर पानी अथवा

आइप्रोडियोन 50% डब्ल्यू. पी. 225–300 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी के घोल बनाकर छिड़कें।

8. प्रमुख कीट

चितकबरा कीट (पेन्टेड बग) : व्यस्क व शिशु कीट दोनों ही समूह में रहकर पौधों से रस चूसते हैं। यह फसल को दो बार नकुसान पहुँचाते है। पहली बार फसल उगने के समय सितम्बर से अक्टूबर तक, जब तक कि तापमान 30 डिग्री सेन्टीग्रेड या इससे अधिक हो तथा दूसरी बार फली बनने की अवस्था के समय फरवरी–मार्च में।

प्रबंधन

इससे बचाव हेतु खड़ी फसल में क्यूनालफॉस चूर्ण 1.5% 25 किलो /हे. के हिसाब से भुरकाव करें अथवा

या मेलाथियॉन 50 ई.सी. 1 मि.ली. /ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

माँहू (एफिड) : इसके व्यस्क व शिशु कीट (निम्फ) दोनों ही पत्तियों, फूलों व तना इत्यादि से रस चूसकर पौधों को नुकसान करते हैं।

प्रबंधन

बचाव हेतु खड़ी फसल में ग्रसित पौधों की टहनियों को तोडकर नष्ट कर दें।

जब 10% पौधों पर 25–26 चेंपा पौधा दिखाई दे तब नीम सीड करनल एक्सट्रैक्ट (एन.एस.के.ई.) का 5% धोल का छिड़काव करें अथवा

डाईमिथोएट 30 ई.सी. या मौनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. 1 मि.ली./लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें।

आरामक्खी : इसके शिशु कीट (निम्फ) ही फसल को नुकसान पहुँचाती है। इसकी लटें 3–6 के ग्रुप में सुबह व शाम को पत्तीयों को तेजी से खाती हैं जिससे कि पत्तियों में अनेक छिद्र हो जाते हैं। इसके तीव्र प्रकोप के कारण पत्तियों के स्थान पर शिराओं का डाल ही शेष रह जाता है। सरसों की फसल उगते ही इनका प्रकोप शुरू हो जाता है। अतः फसल की प्रारम्भिक अवस्था में इनके आक्रमण से भारी नुकसान होता है।

प्रबंधन

फसल की सिचाई करें।

सिचाई करने से सुंडी पानी में डूब कर मर जाती हैं।

मैलाथियॉन 50 ई. सी. 1–1.5 मि.ली. /लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें।

बिहार हेयरी केटरपिलर : इस कीट की निम्फ (सुंड़ियाँ)/शिशु कीट ही फसल को नुकसान पहुँचाती है। छोटी सूंड़ी समूह में रहकर फसल को नुकसान पहुँचाती हैं। इस सुण्डी का प्रकोप अक्टूबर से दिसम्बर तक तोरिया की फसल में अधिक होता है तथा कभी–कभी राई व सरसों की फसलों को भी नुकसान पहुँचाती हैं। सुंड़ियाँ आरम्भ में 8–10 दिन तक समूह में पत्तियों को खाकर नुकसान पहुँचाती हैं तथा बाद में अलग–अलग होकर पौधों की मुलायम पत्तीयों, शाखाओं, तनों व फलियों आदि को खाती हैं जिससे कि पैदावार में भारी नुकसान होता है। इसके नियंत्रण हेतु निम्न तथ्यों पर ध्यान देवें –

जिन पत्तियों पर अंडे समूहों में दिखें एवं छोटी सूंड़ीयों पत्तियों पर हों तो उन्हें तोड़कर मिट्टी में दबाकर अथवा केरोसीन या रसायनयुक्त पानी में डुबोकर नष्ट कर देवें।

इस कीट का अधिक प्रकोप हो जाने पर मोनोक्रटोफॉस 36% एस.एल. 1–1.5 मि.ली./ली. पानी में या

क्यूनॉलफॉस 25% ई.सी. 2–3 मि. ली./ली. पानी में या

डाइक्लोरवास 76% ई.सी. 1–1.5 मि. ली./ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

राई-सरसों फसल में पोषक तत्वों का प्रबंधन

मुकेश कुमार मीना एवं प्रभू दयाल मीना
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

पौधों को एक स्वस्थ जीवन पूरा करने के लिए 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है और यदि इसमें से किसी एक पोषक तत्व का भी अभाव हो जाये तो पौधे अपनी पूरी क्षमता से उपज नहीं दे पाते हैं। नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश और गंधक राई–सरसों फसल के प्रमुख पोषक तत्व हैं। इन पोषक तत्वों की पूर्ति मुख्यतया उर्वरकों से की जाती है। उर्वरकों से सरसों के उत्पादन में वृद्धि तभी संभव है जब मिट्टी जाँच के आधार पर इनका समुचित मात्रा में प्रयोग किया जाये।

सरसों की सिंचित फसल के लिए विभिन्न क्षेत्रों में परिस्थिति के अनुसार 80 से 125 किग्रा/हैक्टेयर् तथा अधिकांश क्षेत्रों में 75 से 80 किग्रा/हैक्टेयर् नत्रजन पोषक तत्व की अनुसंशा की जाती है। चूंकि नत्रजन तत्व अधिक घुलनशील होता है इसीलिए इसकी आधी मात्रा बुवाई के समय तथा आधी पहली सिंचाई पर कलिका निकलने की अवस्था में देनी चाहिए।

फास्फोरस तत्व की 30 से 50 किग्रा मात्रा, पोटाश तत्व की 20 से 40 किग्रा और गन्ध ाक तत्व की भी 20 से 40 किग्रा मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के पूर्व खेत में डालने की अनुसंशा की जाती है। गन्धक पो ाक तत्व वाले उर्वरकों का उपयोग कर सरसों में तेल की मात्रा बढाई जा सकती है। इसलिए सदा गन्धक पो ाक तत्व वाले उर्वरकों जैसे– जिप्सम, सिंगल सुपर फॉस्फेट या अमोनियम सल्फेट का इस्तेमाल बुवाई से पूर्व करना चाहिए।

बोरोन तथा जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में 10 किग्रा बोरेक्स (सुहागा) तथा 25 किग्रा जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के पूर्व खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। क्षारीय भूमि में लोहा तत्व की कमी हो जाती है इसलिए 20 किग्रा/हैक्टेयर की दर से फेरस सल्फेट उर्वरक बुवाई से पूर्व खेत में मिला देना चाहिए।

सरसों की बारानी खेती में सिंचित फसल की तुलना में पोषक तत्वों की आधी मात्रा ही अनुसंशा की जाती है अर्थात 40 से 60 किग्रा नत्रजन, 20 से 30 किग्रा फास्फोरस, 20 किग्रा पोटाश व 20–40 किग्रा सल्फर तथा सभी पोषक तत्वों की पूरी मात्रा बुवाई के समय ही डाली जानी चाहिये।

इन पोषक तत्वों के उर्वरकों को बीज से कम से कम 2 इंच नीचे डालें, जिससे जडों को इनकी उपलब्धता अच्छी तरह होती रहे। फसल की उचित समय पर बुवाई तथा सिंचाई, बुवाई के 45–60 दिन पौध बढवार तक खेतों को खरपतवार रहित रखना तथा लवणीय तथा क्षारीय भूमि का समुचित प्रबंधन करना कुछ ऐसी बाते है, जिनका उर्वरकों के प्रभावी उपयोग में बहुत महत्व है।

उर्वरक प्रबंधन में टॉप ड्रैसिंग

चूँकि नत्रजन पोषक तत्व बहुत अधिक घुलनशील होता है इसीलिए इसकी आधी अनुशंसित मात्रा बुवाई के समय तथा आधी पहली सिंचाई के बाद देनी चाहिए। सरसों की फसल के लिए अनुसंशित नेत्रजन की आधी मात्रा को पहली सिंचाई के बाद डालने की किया को टॉप ड्रैसिंग कहते हैं। नत्रजन पोषक तत्व की टॉप ड्रैसिंग के लिए यूरिया खाद डाला जाता है, जिसे पहली सिंचाई के तीन–चार दिन बाद जब खेत में पैर चिपचिपाते ना हों तब बिखेर कर डालना चाहिए। टॉप ड्रैसिंग के लिए यूरिया खाद को खेत में सिंचाई से पहले डालना ठीक नहीं है।

सरसों फसल पर जिंकयुक्त रसायन का छिडकाव

सूक्ष्म पोषक तत्व जिंक की कमी वाले क्षेत्र में यदि बुवाई से पहले जिंक सल्फेट का उपयोग नहीं किया गया है तो जिंकयुक्त रसायन का छिडकाव करें। इसके लिए 500 लीटर पानी में 2.5 किग्रा जिंक सल्फेट तथा 1.0 किग्रा बुझे हुए चूने का घोल बना लें और उसे छान कर पौधे की 30 दिन की अवस्था से 15 दिन के अन्तराल पर 2 बार छिड़काव कर सकते हैं।

राई–सरसों में तेल की मात्रा बढाने में पोषक तत्वों का महत्व

राई–सरसों के बीज में तेल की मात्रा

बढ़ाने के लिए गन्धक पोषक तत्व वाले उर्वरकों का नियमित उपयोग करना चाहिए। इसलिए सदा गन्धक पोषक तत्व वाले उर्वरकों जैसे–जिप्सम, सिंगल सुपर फॉस्फेट या अमोनियम सल्फेट का इस्तेमाल बुवाई से पूर्व करें। यदि इनका उपयोग बुवाई पर नहीं किया जा सके तो सरसों की फसल के फूल की अवस्था में थायोयूरिया नामक उर्वरक के घोल का छिडकाव करें। इसके लिए थायोयूरिया नामक उर्वरक की 500 ग्राम मात्रा को 500 लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार कर लें और सरसों के 45 एवं 60 दिन की फसल पर छिडकाव करें। चूंकि थायोयूरिया में 42 प्रतिशत गन्धक तथा 37 प्रतिशत नत्रजन पोषक तत्व मौजूद हैं इस कारण सरसों की पैदावार तथा बीज में तेल की मात्रा बढायी जा सकती है। अधिक प्रभाव के लिए थायोयूरिया का छिड़काव दोपहर बाद करना उपयुक्त रहता है।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के अंतर्गत रासायनिक उर्वरकों का हरी खाद, गोबर की खाद, केचुआ की खाद, जीवाणु खाद आदि के साथ समन्वित उपयोग किया जाता है। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन से भूमि की संरचना में सुधार होता है, नमी संरक्षित होती है और भूमि की उर्वरा शक्ति में बढोतरी के साथ साथ उत्पादन भी बढता है। फसल में खाद की मात्रा निर्धारित करने से पहले मृदा परीक्षण कराना आवश्यक है।

हरी खाद में ढैंचा या सनई को वर्षा शुरू होते ही बोना चाहिए व 45–50 दिन बाद फूल आने से पहले जमीन में दबा देना चाहिये। इससे औसतन 30–40 कि.ग्रा. /है0 नत्रजन मिल जाती है। इसके अतिरिक्त लोविया, ग्वार, उर्द या मूँग की फसल राई–सरसों से पहले लेने पर सरसों की अच्छी उपज प्राप्त होती है। इन फसलों के बाद नत्रजन की दर में 40 कि.ग्रा. /है0 तक की कमी भी की जा सकती है।

गोबर की खाद से प्रमुख तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी उपलब्ध होते है। सिंचित क्षेत्रों के लिये 8–10 टन प्रति हैक्टेयर तथा असिंचित क्षेत्र में 4–5 टन प्रति हैक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुवाई के करीब एक माह पूर्व खेत में डालकर जुताई से अच्छी तरह मिला दें।

गोबर की खाद 10 टन प्रति है0 के हिसाब से बुवाई से एक महीने पहले मिट्टी में मिलाने से हम 25 प्रतिशत अनुमोदित उर्वरक दर को कम कर सकते है। जैसा की आप जानते हैं की गोबर की खाद का अभाव होने से इसका प्रयोग बहुत कम हो गया है। इस परिस्थिति में हमें केचुआ की खाद पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। केंचुआ की खाद में गोबर की खाद से 5 गुना नत्रजन, 6 गुना फास्फोरस व 11 गुना पोटाश अधिक होती है। इसकी मात्रा गोबर की खाद की मात्रा से आधी डालनी चाहिए। फास्फोरस घोलक जीवाणु खाद एवं एजोटोबेक्टर जीवाणु खादों से बीजोपचार लाभदायक है क्योंकि इनसे क्रमशः फॉस्फोरस एवं नत्रजन की उपलब्धता बढ़ती है और उपज में वृद्धि होती है।

राई–सरसों के लिए उपयोगी जीवाणु खाद

राई–सरसों फसल के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता बढाने में दो जीवाणु खाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं–एजोटोबैक्टर तथा फास्फोरस घोलक जीवाणु। एजोटोबैक्टर जीवाणु खाद वायुमंडलीय नत्रजन को परिवर्तित कर पौधों उपलब्ध कराते हैं। इसके प्रयोग से औसतन 10–15 किग्रा नत्रजन प्रति हैक्टेयर परिवर्तित होकर पौधों को उपलब्ध होती है। यह जीवाणु बीज के अंकुरण तथा पौधे की बढवार में सहायक होने के साथ–साथ भूमि में अनेकों रोगकारी कवकों की वृद्धि को नियंत्रित करता है। इस जीवाणु की मृत कोशिकाएँ भूमि में कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि करते हैं। एजोटोबैक्टर से बीजोपचार के लिए इसके 50 ग्राम मिश्रण को आवश्यकतानुसार पानी में घोलकर एक हैक्टेयर के लिए आवश्यक बीजों में छाया में मिलाऐं। यदि भूमि उपचार करना है तो इसके 1500 ग्राम मिश्रण को 125 किलोग्राम पकी गोबर की खाद में छाया में समान रुप से मिलाकर अंतिम जुताई के पूर्व खेत में बिखेर दें।

फास्फोरस घोलक जीवाणु भूमि में अघुलनशील अवस्था में स्थित फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर पौधों के ग्रहण करने योग्य बनाते हैं जिससे फास्फोरस की उपलब्धता बढती है फलस्वरूप उत्पादन बढता है। फास्फोरस घोलक जीवाणु से बीजोपचार के लिए इसके 50 ग्राम मिश्रण को आवश्यकतानुसार पानी में घोलकर एक हैक्टेयर के लिए आवश्यक बीजों में मिलाऐं। उपचारित बीज को 10 मिनट तक छाया में सुखाकर तुरंत बुवाई के काम में लेवें। यदि भूमि उपचार करना है तो इसके 4 किग्रा मिश्रण को 125 किलोग्राम पकी हुयी गोबर की खाद में अच्छी तरह मिलाकर समान रुप से खेत में मिला दें। इसके बाद तुरंत सिंचाई कर दें। इसके प्रयोग से औसतन 50 प्रतिशत तक फास्फेटिक खाद की बचत की जा सकती है।

सरसों की फसल में मुख्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं प्रबंधन

राई व सरसों के फसल उत्पादन में विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन पोषक तत्वों के बारे में एक कहावत के रूप में कहा जा सकता है कि 'देखन को छोटन लगे पर घाव करें गंभीर'। अर्थात यह वह पोषक तत्व हैं जो कि पौधों को

दस लाख में से एक भाग से भी कम मात्रा में आवश्यकता होती है। इन पोषक तत्वों की कमी का प्रकोप आजकल इसलिए और बढ़ गया है क्योंकि पौधों को 16 आवश्यक तत्वों में से सिर्फ बहुचर्चित नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश खाद ही देते हैं और दूसरे पोषक तत्वों को नहीं के बराबर डालते हैं। इन पोषक तत्वों के वर्ग में आते हैं जिंक, लौह, मैंगनीज, कॉपर, बोरोन, मोलिब्डिनम और क्लोराइड जिन्हें हम सूक्ष्म पोषक तत्व कहते हैं।

इसमें से सबसे प्रमुख हैं जिंक यानी जस्ता जिसके अभाव में पौधों की बढ़वार रूक जाती है। पौधों में जिंक, ओग्ज़िन (Auxin) नामक वृद्धि हारमोन को बनाने के काम में आता है जोकि पौधों की लम्बाई एवं चौड़ाई बढ़ाने में सहायता करता है। राई –सरसों में यह फली की मात्रा बढ़ाने में सहायता करता है। प्रयोगों के आधार पर जिंक की कमी वाली मिट्टियों में जिंक को डालने पर करीब 25–30 प्रतिशत की पैदावार में वृद्धि होती है। इसके लिए मिट्टी में बुवाई से पहले 25 किग्रा जिंक सल्फेट प्रति हैं. अकेले या जैविक खाद के साथ प्रयोग किया जा सकता है। यह 3 से 4 फसलों तक पर्याप्त होता है । इसका उपयोग 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट और 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के साथ 2 या 3 छिड़काव के रूप में 10 से 15 दिन के अन्तराल पर जिंक की कमी की उग्रता के आधार पर किया जा सकता है।

दूसरा सबसे प्रमुख शूक्ष्म पोषक तत्व आइरन या लौह है। यह क्लोरोफिल या पौधों की हरियाली देने में सहायक होता है। इसकी उपस्थिति पौधों की सांस की क्रिया में सहायक होती है। प्रकाश संश्लेषण एवं नाईट्रेट तथा सल्फेट की अपचयन क्रिया को भी बढ़ाता है और प्रोटीन संश्लेषण में भी काफी सहायक होता है। इसकी कमी के लक्षण हैं, पौधें के उपरी भाग का रंग हल्का होना है जो कि पीले लगने लगते है, जबकि बाकी का निचला भाग हरा रहता है। राई व सरसों के पत्तियों की नसों का रंग हरा रहता है और इनके बीच का रंग हल्का हो जाता है। अगर आपने पिछले वर्ष अपने खेतों पर ऐसा देखा है और यह लक्षण सिंचाई करने के बाद कम या खत्म हो जाते तो उस खेत में इस वर्ष 50 कि.ग्रा. फैरस सल्फेट (हरा थोथा) प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में बुवाई से पूर्व प्रयोग करें। इसके साथ गोबर की खाद प्रयोग करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं। अगर ऐसे लक्षण आप के खेत में दिखें तो 4 प्रतिशत फैरस सल्फेट और 0.4 प्रतिशत साईट्रिक ऐसिड (या आधा नीबू का रस प्रति 15 लिटर के घोल) की दर से 7–10 दिनों के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करना उत्तम पाया गया है।

तीसरा सबसे प्रमुख पोषक तत्व बोरोन है जिसे हम सुहागा कहते हैं इसकी आवश्यकता पौधों में प्रकाश संश्लेषण से बनी शर्करा को पौधों के अन्य भागों में ले जाने के लिये काम में आती है। इसकी आवश्यकता पौधों के प्रजनन काल के समय होती है। अगर इसका अभाव हो जाये तो राई व सरसों में फूल आने पर फलियों में दाने काफी कम हो जाते हैं। बोरोन की कमी के कारण पौधों का उपरी भाग मर जाता है और इसके पास से पत्तियाँ निकलना प्रारम्भ हो जाने से झाड़ी नुमा दिखने लग जाता है। इसके लिए 10 किग्रा बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से खेतों में बुवाई से पूर्व मिला दिया जाये तो अच्छा लाभ मिलता है ।

मैंगनीज भी इसी वर्ग का शूक्ष्म पोषक तत्व है जिसके अभाव से पौधों में होने वाली विभिन्न क्रियाएं नहीं हो पाती हैं। इसकी कमी से बीच वाली पत्तियों के आधार पर पीलापन होकर उनकी नोंक तक फैल जाता है। इसके लिए 25–30 किग्रा मैंगनीज सल्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से बूवाई से पहले डाल देना चाहिये और अगर लक्षण दिखने लगें तो 2 या 3 छिड़काव 0.5 प्रतिशत मैंगनीज सल्फेट की धूल पर्याप्त है। इसके बाद एक और पोषक तत्व है और वो है कॉपर। यह विटामिन–ए को बनाने में सहायक होता है। हल्की मिट्टियों में इसकी कमी अधिकतर पाई जाती है। इसकी कमी के लक्षण पर पत्तियों की नोंकें सफेद हो जाती हैं। पत्तियां सिकुड़ कर टेढ़ी हो जाती हैं। पौधों की गांठों की दूरी भी कम हो जाती है और पौधे छोटे से दिखते हैं। इसकी कमी होने पर 15 किग्रा कॉपर सल्फेट (नीला थोथा) प्रति हैक्टेयर को मिट्टी में बुवाई से पहले मिला दिया जाये। लक्षण दिखने के बाद 0.4 प्रतिशत कॉपर सल्फेट की धूल का छिड़काव 2 बार करने से कमी दूर हो सकती है। इसके अलावा मोलिब्डिनम, कोबाल्ट, वेनेडियम, सिलिकॉन, आयोडीन, सेलिनियम, गेलियम, एलुमिनियम, रूबिडियम, स्ट्रोनशियम निकिल, क्रोमियम और अरसेनिक भी है। जितने भी शूक्ष्म पोषक तत्व बताए गए हैं उनके लिये मिट्टी की जांच करना जरूरी है। परंतु इन तत्वों की कमी के लक्षण आमतौर पर नहीं मिलते है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस तरह हम विभिन्न व्यंजनों का इस्तेमाल करने पर खाना खाने में संतुष्टि मिलती है, उसी प्रकार पौधों को भी एक अच्छे स्वस्थ जीवन काल के लिये विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जिससे वह तो स्वस्थ रहते ही हैं साथ–साथ जो लोग उसे प्रयोग में लाते हैं वह भी स्वस्थ और परिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

सरसों : एक गुणकारी पौधा

वैशाली[1], अनुभूति शर्मा[2], नरेश प्रताप सिंह[1]

[1]सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

[2]भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

सरसों प्रमुख तिलहन फसलों में से एक है। इसकी खेती मुख्यतः बीज के लिये की जाती है। जिससे तेल प्राप्त किया जाता है। सरसों ठंड के समय उगाई जानी वाली एक फसल के रूप में जानी जाती है और चीन, भारत और कनाडा में उगाई जाती है। सरसों की फसल को अधिकतम नुकसान कीट द्वारा होता है। कीटों के उचित नियंत्राण से सरसों के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। सरसों का हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्व है। सरसों का तेल खाना बनाने, शरीर पर मालिश करने, साबुन, उच्च कोटि का ग्रीस तथा अचार एवं मसालों को बनाने के काम आता है।

भारत के अधिकतर राज्यों मे सरसों की खेती की जाती है। लेकिन प्रमुख रूप से इसकी खेती राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम आदि राज्यों में की जाती है। राजस्थान में मुख्य रूप से भरतपुर, अलवर, जयपुर, नागौर आदि जिलों में इसकी खेती की जाती है।

सरसों की फसल को अधिकतम (15–30%) नुकसान कीट द्वारा होता है जिसमें प्रमुख कीट, चैंपा या माहूं, आरा, मक्खी तथा चितकबरा हैं। कीटों के उचित नियंत्रण से सरसों के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। भारत में सरसों की नौ प्रमुख प्रजातियां तिलहन फसल के रूप में उगाई जातीं हैं जिसमें मुख्यतः सरसों अथवा लाहा, तोरिया, गोभी, सरसों, पीली सरसों आदि हैं। इनमें से (85%) लाहा की खेती मुख्यत रूप से की जाती है। राई–सरसों की समन्वित अनुसंधान परियोजना के अन्तर्गत देश के विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों पर किया जा रहा है जिसके परिणाम स्वरूप अभी तक लगभग 181 राई–सरसों की किस्में विकसित की गयी हैं। इन सभी किस्मों का विकास क्षेत्रों की जलवायु, भूमि की गुणवत्ता, तेल एवं खली के गुणवत्ता आदि विशेषताओं के आधार पर किया जाता है।

सरसों का हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्व है। सरसों का तेल खाना बनाने, शरीर पर मालिश करने, साबुन, उच्च कोटि का ग्रीस तथा अचार एवं मसालों को बनाने के काम आता हैं (सरसों की पत्तियों को साग सब्जी बनाने में काम लिया जाता है जो अति पौष्टिक होती है)। सरसों के तेल के साथ साथ सरसों के बीज का उपयोग करने से सब्जी में एक अद्‌भुत स्वाद मिलता है। उबलते तेल में सीधे सरसों के बीज डालने से सब्जी का स्वाद बढ़ता है। तेल निकालने के बाद बची खली पशुओं को खिलाया जाता है, जिससे पशु को पौष्टिक तत्व मिलते हैं जो उनकी हर तरह की शारीरिक क्षमता को बढ़ाता है। इस खली को खाद के रूप में भी खेतों में प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसमें 4–5% नाइट्रोजन होता है जो मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। सरसों के बीज के स्वास्थ्य लाभ पर एक नजर डाल लें।

सरसों के बीज के उपयोग और लाभ –

1. **गठिया का इलाज –** गठिया के इलाज में सरसों के बीज का उपयोग किया जाता है। आमतौर पर गठिया से पीड़ित व्यक्तियों को सरसों के बीज के सेवन से मैग्नीशियम और सेलेनियम मिलता है जिससे गठिया कम होता है।

2. **बंद नाक या गला –** बंद नाक या गला सरसों के बीज का इस्तेमाल करके आसानी साफ कर सकते हैं। सरसों की तेज गंध से नाक और गला साफ होता है।

3. **माइग्रेन की रोकथाम –** माइग्रेन कई व्यक्तियों के लिए एक गंभीर समस्या बन गया है। भोजन में मैग्नीशियम की कमी माइग्रेन होने का मुख्य कारण में। सरसों के बीज में अच्छी मात्रा में मैग्नीशियम होता है जिससे शरीर में मैग्नीशियम के स्तर की वृद्धि होती है। ओमेगा 3 फैटी आम्ल माइग्रेन की समस्या के इलाज में लाभकारी है।

4. **दमा –** दमा जैसी बीमारी में सरसों के बीज एक अच्छा उपाय है। सरसों में मैग्नीशियम और तांबे के रूप में खनिज शामिल हैं जो दमा के इलाज के लिए काफी लाभकारी है।

5. **त्वचा का जलयोजन –** सरसों के बीज मसलकर घृतकुमारी के अर्क के साथ त्वचा पर लगा सकते हैं। यह पैक त्वचा सम्बन्धित रोगों से बचाता है।

6. **संक्रमण के साथ लड़ना –** त्वचा में मुक्त कणों के प्रवेश से विभिन्न प्रकार के संक्रमण से पीड़ित हो सकते हैं। लेकिन सरसों के बीज की वजह से संक्रमण के सभी प्रकार से लड़ने में मदद मिलती है। सरसों के तेल में एलिल आइसोथियोसाइनेट के गुण शामिल हैं। यह फंगस सम्बन्धित त्वचा विकारों के लिये सबसे अच्छे इलाज के रूप में कार्य करता है। इसके अलावा इस तेल में विटामिन ई भी होता है। अगर यह त्वचा पर लगाया जाता है तो अल्ट्रावायलेट और पॉल्यूशन से बचाव होता है। साथ ही यह झाइयों और झुर्रियों से भी काफी हद तक राहत दिलाता है।

7. **बालों के लिए सरसों के बीज का उपयोग –** बालों की अनुचित देखभाल, प्रोटीन की कमी और प्रदूषण से बालों का बढ़ना प्रतिबंधित हो जाता है। बालों का अचानक टूटना आज महिलाओं के लिए काफी आम हो गया है। स रसों के तेल में ओलिक एसिड ओर लीनोलिक एसिड पाया जाता है। यह फैटी एसिड होते हैं जो कि बालों की ग्रोथ बढ़ाने के लिये अच्छी दवा है। यह बातों की जड़ों को पोषण देकर ब्लड सर्कुलेशन को बढ़ाता है।

8. **पोषक पदार्थों का समन्वयन –** सरसों के बीज में कई प्रकार के स्वास्थ्य गुण होते हैं। यह विटामिन और खनिज पदार्थों का काफी अच्छा स्त्राोत होता है। हर व्यक्ति को पर्याप्त मात्राा में विटामिन और अन्य पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है। अपने भोजन में इसको शामिल करने के बाद शरीर से ऑक्सीडेंटस को भी दूर किया जा सकता है। यह डाइटरी फाइबर से भी भरपूर होता है जो हमारे शरीर के लिए काफी जरूरी होते हैं। यह शरीर को गर्माहट भी प्रदान करता है। यह अंदर के बैक्टीरिया से लड़ता है। इसके सेवन से कोरोनरी हार्ट डिसीज का खतरा भी थोड़ा कम हो जाता है।

9. **स्नायु तंत्र के लिए अच्छा –** आज के दौर में लोग कई तरह की स्वास्थ्य समस्याओं से पीड़ित रहते हैं। स्नायु तंत्र की समस्या ऐसी ही एक परेशानी है। सरसों के बीज विटामिन बी कॉम्प्लेक्स से भरपूर होते हैं, जो कि शरीर के लिए काफी जरूरी होता है। यह खास विटामिन आपके स्नायु तंत्र को भी सुचारू रूप से चलाने में आपकी मदद करता है। यह शरीर के मेटाबोलिज्म को भी नियंत्रित करता है।

10. **मांसपेशियों और जोड़ों के दर्द से मुक्ति दिलाए –** सरसों के बीज में मैग्नीशियम और सेलेनियम दोनों होते हैं। इसमें ताप पैदा करने वाले और जलनरोधी गुण दोनों मौजूद होते हैं। सरसों के बीज और पानी को मिश्रित करके एक पेस्ट तैयार करें। अब इस पेस्ट को अपने जोड़ों तथा मांसपेशियों के उस भाग पर लगाएं जहां पर आपको दर्द हो रहा है। ये पदार्थ काफी ताप पैदा करते हैं, जिसके फलस्वरूप आपके शरीर की सूजन काफी कम होती है। इससे मांसपेशियों का घनत्व बढ़ जाता है और इससे दर्द होता है।

लेपीडियम सरसों कुल की महत्वपूर्ण औषधीय प्रजाति

स्वर्णिम कुलश्रेष्ठ, अरूण कुमार, हरि सिंह मीना एवं सतेन्द्र सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

लेपीडियम (गार्डन केस) सरसों कुल की एक तेजी से बढ़ने वाली प्रमुख प्रजाति है जिसका उपयोग एक खाद्य जड़ी बूटी के रूप में किया जाता है। भारतीय चिकित्सा की पारंपरिक प्रणाली में विभिन्न रोगों जैसे दस्त, पेचिरा, कुष्ठ रोग, यक्रत के रोग, गुर्दे के रोग, अपच, दमा, खांसी, सर्दी, नेत्र रोग तथा त्वचा संम्बन्धित रोगों के इलाज में इसका प्रयोग किया जाता है। भारत में इसे चंद्रिका या चन्द्रशूर के नाम से भी जाना जाता है एवं इस पौधे का उपयोग मुख्यतः औषधीय फसल तथा हरी सब्जी के रुप में किया जाता है। इसकी पत्तियों व पौधे के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण पोषक तत्व व रासायनिक तत्व पाये जाते है।

लेपिडियम सटाईवम (गार्डन केस) एक वार्षिक जड़ी बूटी हैं जो सरसों कुल की एक पादप जाति है। यह एक छोटा, सदाबहार चिकना और पतली शाखाओं वाला व तेजी से बढ़ने वाला खाद्य पौधा है, जो अपने चटपटे स्वाद और खु ाबू के लिए जाना जाता है। इसकी पत्तियाँ, पतली, विपरीत, अंडाकार या अंडाकार भाले के आकार की 1.5–8.0 से.मी. लम्बी होती है। इसके फूल सफेद भूरे या सफेद बैंगनी रंग का होते है। फल गोलाकार 1.2 से.मी. लम्बा, चपटा, कठ़ोर व धारीधार होता है जिसकी अन्तः फलभित्ति बैंगनी और काली होती है। इसके बीज छोटे, अंडाकार तथा एक छोर पर लाल, भूरे रंग के होते है। इसके बीजों से बना हुआ पाउडर हल्का पीला तथा माइक्रोस्कोपिक होता है। इसके बीज, पत्ते और जड़ आर्थिक रुप से बहुत महत्वपूर्ण है, परन्तु मुख्य रुप से इसके बीज ही खेती के लिए उपयोग किये जाते है। कुछ क्षेत्रों में इसे बगीचा क्रेस, बगीचे काली मिर्च, केस घास या पीपटवॉट नाम से जाना जाता है। भारत में इसे असेलियों (Asalio) या चन्द्रशूर के नाम से भी जानते है। भारत में इस बारहमासी पौधे का उपयोग मुख्यतः औषधिय फसल तथा हरी सब्जी में किया जाता है। इसका उपयोग आमतौर पर गार्निश के रुप में किया जाता है।

रासायनिक संघटक :

इसके बीजों में मुख्य रुप से लैपीडिन, ग्लुकोट्रोपेओलिन, एन.एन–डाईबैन्जाइल यूरिया, एन.एन–इाईबैन्जाइलथायोयूरिया, सिनेपिक एसिड और उसके कोलिन एस्टर सिनेपिन पाये जाते है। साथ ही इसमें कैरोटीन, सेल्यूलोज, कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा, थाईमीन, राइबोफलेविन, नियासिन तथा यूरिक एसिड भी पाये जाते है। बीज से निकलने वाले तेल में पामिटिक, स्टीयरिक, ओलिक, लिनोलिक, अरेकीडिक, बेहेनिक तथा लिगनोसेरिक एसिड होता है। इसकी पत्ती में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट व खनिज पदार्थ जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा निकल, कोबाल्ट और आयोडीन जैसे प्रमुख तत्व पाये जाते है एवं विभिन्न विटामिन जैसे विटामिन ए, थाईमीन, राइबोफलेविन, नियासिन व विटामिन सी भी विद्यमान होते है। पौधे के जड़ से उपर के ऊपरी भागों में भी अनेक प्रकार के रासायनिक तत्व पाये जाते है। इसके बीजों में पाये जाने वाले पोषक व रासायनिक तत्वों के आधार पर इसकी का पोषक मान तालिका 1 में दर्शाया गया है।

विशेष गुण :

लेपिडियम एक ऐसा पौधा है जिसमें विभिन्न प्रकार के विशिष्ठ गुण पाये जाते है जिनमें से कुछ विशेष गुण निम्न प्रकार है –

ज्वर नाशक, एनाल्जेसिक, ब्लड़ कोगुलेशन गतिविधि : इसके बीजों में पाये जानेवाले इथनॉलिक एक्सट्रेक्ट का उपयोग ज्वरनाशक, एनाल्जेसिक तथा ब्लड़ कोगुलेशन के अध्ययन में किया जाता है। चूहों पर किये अध्ययन से ज्ञात पाया गया है कि इसके इथनॉलिक एक्सट्रेक्ट की कम मात्रा के उपयोग का कोई हानिकारक या विषाक्त प्रभाव नही होता है।

तालिका 1: लेपिडियम के बीजों में पोषण मान

मुख्य घटक	पोषण मान/100ग्राम बीज
ऊर्जा	134 किलो कैलोरी
कार्बोहाड्रेट	5.5 ग्राम
शुगर	4.4 ग्राम
फाइवर	1.1 ग्राम
वसा	0.7 ग्राम
प्रोटीन	2.6 ग्राम
विटामिन–(ए)	346 माईक्रोग्राम
थायमीन–(बी)	0.08 मिलीग्राम
राइबोफलेबिना–(बी2)	0.26 मिलीग्राम
निपासिन–(बी3)	1 मिलीग्राम
पेंनथोनिक एसिड–(बी5)	0.247 मिलीग्राम
विटामिन–(बी6)	0.247 मिलीग्राम
फोलेटस– (बी9)	80 माईक्रोग्राम
विटामिन–(सी)	69 मिलीग्राम
विटामिन–(ई)	0.7 मिलीग्राम
विटामिन–(के)	541.9 माईक्रोग्राम
खनिज	
कैल्शियम	81 मिलीग्राम
लोहा	1.3 मिलीग्राम
मैंग्नीशियम	38 मिलीग्राम
मैग्नीज	0.553 मिलीग्राम
फॉस्फोरस	76 मिलीग्राम
पोटेशियम	606 मिलीग्राम
अन्य	
पानी	
89.4 ग्राम	

रासायनिक सुरक्षात्मक प्रभाव : चूहों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि लेपीडियम का जूस (0.8 मिली.) व इसके तत्व जैसे ग्लुकोट्रोपेओलिन, बैन्जाइलआइसो–थायोसाइनेट (70 मि.ग्रा/किग्रा.) क्यूनोलिन द्वारा कोलन व यकृत में हुए डी.एन.ए. की क्षति के सुधार में 75 से 92% तक सहायक है ।

मधुमेह अवरोधी गुण : दो सप्ताह तक लेपिडियम के द्रवीय अर्क के नियमित प्रयोग से रुधिर में शर्करा के स्तर को सामान्य किया जा सकता है।

अस्थिभंग उपचार गतिविधि : खरगोश पर किये गये प्रयोगो से पता चला है कि सर्जरी के बाद लेपीडियम के बीज को दैनिक आहार के साथ मिश्रित करके देने से उसमें जल्दी सही होने की क्षमता बढ़ जाती है।

कीटनाशक गतिविधि : लेपीडियम के पौधे के विभिन्न भागों का प्रयोग बहुत से कीटों की रोकथाम में किया जाता है जैसे के सफेद मक्खी की रोकथाम।

डायरिया रोकथाम गतिविधि : मनोहर के प्रयोगों के आधार पर लेपीडियम का तरल तथा एल्कोहॉलिक अर्क अनेक पशु मॉडलों में डायरिया रोकथाम हेतु सहायक पाया है एवं तरल अर्क एल्कोहॉलिक अर्क की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है ।

एंटी ऑक्सीडेंट गतिविधि : इसके बीज के एल्कोहॉलिक अर्क मे नेफ्रोप्रोटेक्टिव व एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि पायी जाती है।

नैफरोप्रोटेक्टिव गतिविधि : एक प्रयोग के आधार पर पाया गया है कि लेपीडियम के बीज का चूर्ण (1.0 ग्राम) दिन में तीन बार उन मरीजों को दिया जाए जिनकी उम्र 15–80 साल के बीच हो और साथ ही वो दमा का शिकार हो। ऐसे मरीजों के श्वसन तंत्र की गतिविधियों को स्पाईरोमीटर की मदद से नियमित देखा गया एवं पाया गया कि 4 सप्ताह बाद दमा के मरीजों की स्थिति में बहुत सुधार आया।

मूत्रवर्धक गतिविधि : इसके जलीय तथा मैथेनॉइक एक्सट्रेक्ट का इस्तेमाल मूत्रवर्धन गतिविधि के अध्धयन के लिए किया जाता है ।

पारंपरिक उपयोग :

लेपीडियम व्यापक रुप से पूरे भारत में दवा की पारंपरिक प्रणाली में रोगों के इलाज के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसके विभिन्न भाग जैसे बीज, पत्तियाँ तथा जडों का उपयोग विभिन्न मानव रोगों के उपचार में किया जाता है ।

बीज के शीत का उपयोग हिचकी में राहत देने के लिए किया जाता है ।

इसके बीज यकृत व तिल्ली के विकास में सहायक होते है ।

स्थानीय लोग इसके बीज को नीबू के रस के साथ मिश्रित करके गठिया के दर्द से निजात पाने के लिए इस्तेमाल करते है।

इसके बीज कड़वे, रक्तिमाकर, टॉनिक, कामो दीपक तथा मूत्रवर्धक होते है।

इसकी जडों का उपयोग माध्यमिक उपदंश और ऐठन के उपचार में किया जाता है।

इसके द्वारा तैयार कैप्सूल का उपयोग पुरानी कब्ज तथा 1–6 महीने से हो रहे अनयिमित दस्त से निजात पाने के लिए किया जाता है ।

दूध के साथ उबला हुआ बीज गर्भपात करने की क्षमता रखता है ।

चीनी के साथ मिश्रित करके बीज पाउडर लेने से अपच दस्त तथा पेचिश से निजात पाई जा सकती है।

इसके बीज का चूर्ण बनाकर दूध के साथ मिलाकार प्रतिदिन सुबह–शाम (2.5 से 10 ग्राम) सेवन करने से शरीर की लम्बाई में वृद्धि की जा सकती है।

भूमि की लवणता एवं क्षारीयता दूर करने के उपाय

मुकेश कुमार मीना एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

हरित क्रान्ति के फलस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि के साथ ही अनेक समस्यायें भी पैदा हुई जिनमें भूमि की लवणता एवं क्षारीयता देश की एक प्रमुख समस्या है। आंकड़े बताते हैं कि देश की लगभग 7 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणता एवं क्षारीयता से प्रभावित है। भूमि लवणता एवं क्षारीयता आमतौर से सिंचाई जल के कुप्रबंधन विशेषकर जल जमाव के कारण होती है। लगभग 40 प्रतिशत लवणीय एवं क्षारीय भूमि का विस्तार उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा तथा पंजाब राज्यों में है जो कि हरित क्रान्ति के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। लवणीय एवं क्षारीय भूमियां अर्थव्यवस्था के लिए हानि हैं क्योंकि इस प्रकार की भूमियां फसल उत्पादन के योग्य नहीं होती है। लवणीय एवं क्षारीय भूमियां अर्थव्यवस्था के लिए हानि हैं क्योंकि इस प्रकार की भूमियां फसल उत्पादन के योग्य नहीं होती है।

लवण का उत्पादन मिट्टी में मूल चटानों के अपक्षय की प्रक्रिया के कारण होता है। भूमिगत पानी अैंर मिट्टी के विलियन में उपस्थित लवणों' का भूमि की निचले स्तर से ऊपरी परत पर हस्तांतरण से मिट्टी में खारापन आता है। समस्या का मुख्य कारण तेलीय एवं खारे पानी से सिचाई है। हालांकि कई अन्य कारण जैसे अर्धशुष्क तापमान कम वर्षा अधिक वाष्पन, तलाब व नहरों से सिंचित क्षेत्रो में भूमिगत जल स्तर उठने एवं पानी के अधिक रिसाव आदि भी मिट्टी में लवणीयता एवं क्षारीयता लिए उत्तरदायी है। लवण का उत्पादन मिट्टी में मूल चटानों के अपक्षय की प्रक्रिया के कारण होता है । राजस्थान में लगभग 6.43 लाख हैक्टर भूभाग क्षारीयता से प्रभावित है। पश्चिमी राजस्थान में जहां भूजल सामान्यत लवणीय प्रवृत्ति का है जो मुख्यतः सिंचाई के काम लिया जाता है। इस प्रकार के पानी से लगातार सिंचाई करने पर मिट्टी क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं में बदल जाती है।

लवणीय भूमि – लवणीय भूमि वह भूमि होती है जिसमें घुलनशील लवणों की मात्रा ज्यादा होती है जो फसलों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करती है। इस प्रकार की मृदा की विद्युतीय चालकता (electrical conductivity) 4(dSm^{-1}) से ज्यादा होती है। विनिमेय सोडियम (exchangeable sodium) का प्रतिशत 15 से कम तथा pH मान 8.5 से कम होता है। लवणीय मृदा में सोडियम, कैल्शियम एवं मैगनिशियम के क्लोराइड एवं सल्फेट मुख्य घुलनशील नमक होते हैं। जिसका फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जैसे पौधो में पानी की प्राप्तता कम होना, पौधों की बढ़वार धीरे होना। फसल की जमाव में देरी। लवणों की अधिकता के कारण पौधों में सूखे की स्थिति मालूम पड़ना, पोषक तत्वों फास्फोरस नाइट्रोजन, जस्ता लोहा इत्यादि की उपलब्धि में कमी। ये वे मृदाऐं हैं जिनमें जल घुलनशील उदासीन लवणों मुख्यत सोडियम कैल्सियम एवं मैग्निशियम के क्लोराइड व सल्फेट की प्रचुरता होती है। इसी कारण मृदा की उपरी सतह पर सफेद रंग का नमक सा जमा होता है। इन मिट्टीयों की भौतिक दशा ठीक होती है। जल पराग्यक्यता भी सामान्य रहती है। इन मृदाओ में जल विकास की उचित व्यवस्था करी दी जाये तो घुलनशील लवण निक्षालित होने से ये मृदाए सामान्य बन सकती है।

क्षारीय भूमि–क्षारीय भूमि में विनिमेय सोडियम की मात्रा 15% से ज्यादा होती है जो फसलों के लिए हानिकारक साबित होती है। इस प्रकार की मृदा में घुलनशील लवणों की मात्रा बहुत ज्यादा नहीं होती है। क्षारीय मृदा की विद्युतीय चालकता 4 (dSm^{-1}) से कम होती है जबकि pH मान 8.5 से ज्यादा होता है। इन भूमियों को ऊसर भूमि भी कहते हैं। क्षारीय मृदाओं की दशा बहुत असंतोषजनक होती है। इनमे सोडियम बाईकोर्बोनेट, विनियमय सोडियम तथा सोडियम सिलिकेट लवणों की प्रचुरता होती है तथा विनिमयशील कैल्सियम व मैग्नीशियम की मात्रा बहुत कम होती है। मृदा की सतह पर काले रंग की पपड़ी सी जम जाती है जिसमें बड़ी बड़ी दरारें पड़ जाती हैं जिससे फसलों

पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मृदा की उपरी सतह पर दरार युक्त मोटी पपड़ी होने के कारण पानी को नीचे जाने से तथा फसलों के अंकुरण में रूकावट डालती है। वर्षा का पानी काफी दिनों तक पड़ा रहता है देरी से सूखता है तथा सूखने पर भूमि में दरारें पड़ जाती है। भूमि की भौतिक संरचना बिगड़ जाती है। जिवांश पदार्थ बहुत कम या न के बराबर होता है।

लवणीय क्षारीय भूमि–ऐसी भूमि जो लवणीयता व क्षारीयता दोनों से प्रभावित हो उसे लवणीय क्षारीय भूमि कहते है। लवणीय क्षारीय भूमि की विद्युतीय चालकता 4 (dSm^{-1}) से ज्यादा होती है। विनिमेय सोडियम की मात्रा 15% से ज्यादा होती है जबकि pH मान लवणों की विभिन्नता पर निर्भर करता है। उदासीन घुलनशील लवणो की मात्रा अगर अधिक होती है तो पी एस मान 8.5 से कम होता है और ये लवण जब निक्षालित होते है तो पी एव मान 8.5 से बढ़कर अधिक हो जाता हैं अगर मृदा में जिप्सम या कैल्सियम कार्बोनेट की मात्रा प्रयाप्त हो तो लवणों के निक्षलन से पी एच मान घट जाता है।

लवणीय एवं क्षारीय भूमियां देश की अर्थव्यवस्था के लिए बड़ी क्षति हैं क्योंकि इससे मृदा की उत्पादकता प्रभावित होती है। परिणामस्वरूप लवणीय एवं क्षारीय भूमियां बंजर या बेकार भूमि में तब्दील हो जाती हैं। जैसे–जैसे मृदा में लवणों की मात्रा बढ़ती हैं, वैसे–वैसे मृदाजल का पारासरण दबाव भी बढ़ता है। जिसके फलस्वरुप मृदा में पानी विद्यमान होने के बावजूद पौधों की जड़े जल का अवशोषण नहीं कर पातीं। लवण तत्वों के अवशोषण से पौधों में इनका जमाव विषैले स्तर तक हो जाता है। जिसके फलस्वरुप पौधे जलने लगते हैं। क्षारीय मृदाओ में सोडियम, क्लोराइड की अधिकता, विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशतता में वृद्वि और बढ़ते पी एच मान के कारण मृदा की दशा बहुत असंतोषजनक होती है। हवा पानी का आवागमन अवरुद्ध हो जाता है जिससे फसलो की बढ़वार प्रभावित होती है। परिणामस्वरूप लवणीय एवं क्षारीय भूमियां बंजर या बेकार भूमि में तब्दील हो जाती हैं। बढ़ती आबादी को देखते हुए लवणीय एवं क्षारीय भूमियों का पुनरूत्थान समय की आवश्यकता है।

लवणीय मृदाओं का सुधार :

निक्षालन – यह विधि उन मृदाओ में अपनानी चाहिये जिनमे भूमि जल स्तर नीचा हो इस किया द्वारा लवणों जल में विलेय करके जड़ क्षेत्र से नीचे बढ़ाया जाता है। ताकि पौधों पर लवणों का बुरा प्रभाव न हो सके। ग्रीष्म ऋतु निक्षलण के लिए अति उत्तम होती है। इस विधि में खेत को छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटकर उसकी मेड़बन्दी करके खेत में पानी प्रयाप्त मात्रा में भर देते है जिससे मृदा में उपस्थित लवण घुलकर नीचे उतर जाते हैं।

खाई खोदकर : इस विधि में थोड़ी थोड़ी दूरी पर खाइयां खोदते हैं। खेत के एक किनारे पर पहली खाई खोदते हैं जिसकी मिट्टी को खेत से बाहर डालते हैं। इसके उपरान्त कुछ दूरी पर दूसरी खाई खोदते हैं, इसकी मिट्टी को प्रथम खाई में इस प्रकार भरते हैं कि ऊपरी लवण तथा क्षारयुक्त मिट्टी नीचे तथा नीचे वाली साधारण मिट्टी उपर हो जाए इस प्रकार बारीबारी से सभी खाइयों को भरने पर सामान्य मृदा उपर आ जाएगी।

विलय लवणों को उपरी सतह से हटाना : इस में खेत को आठ दस हिस्सो में बाँटकर उसकी क्यारियाँ बना देते हैं। फिर सभी क्यारियों में 20–25 सेमी. ऊपर तक पानी भर दिया जाता है जिससे सतही लवण पानी में घुल जाते है। बाद में पानी के खेत से बाहर बहा देने से लवणों की अधिकांश मात्रा बाहर निकल जाती है जिससे मृदा में लवणों की मात्रा कम हो जाती है। जहाँ भूमितल स्तर काफी ऊँचा हो या भूमि में कुछ गहराई पर कड़ी परत हो वहाँ पर लवणों को बाहर निकालने के लिए फसल की आवश्यकता से अधिक पृष्ठीय या भूमिगत फालतू जल को खेत से बाहर निकाल देना चाहिये।

मृदा की सफेद परत को खुरचकर हटाना : मृदा की उपरी 156 सेमी. सतह पर सफेद परत के रुप में उपस्थित लवणों को खुरचकर हटाते है तथा हटाई गई लवणीय मृदा को खेत से दूर डालनी चाहिये।

क्षारीय मृदाओं का सुधार :

इस प्रकार की मृदाओं को सुधारने के लिए जिप्सम सबसे उपयुक्त, सस्ता एवं आसानी से उपलब्ध होने वाला भूमि उपधारक हैं। जिसे कैल्शियम सल्फेट के नाम से जाना जाता है। यह राजस्थान के हनुमानगढ़, बीकानेर, बाड़मेर एवं जैसलमेर जिलों में प्रचुरता में पाया जाता है। सामान्यतः बाजार में मिलने वाले जिप्सम में (70% शुद्ध लगभग) 16% कैल्शियम एवं 13.5% सल्फर पाया जाता है। राजस्थान के लिए जिप्सम की खरीद पर किसानों को 50% की रियायत पर सहकारी समितियों के माध्यम से उपलब्ध करवाती है। इस प्रकार जिप्सम के उपयोग द्वारा सल्फर की कमी को भी पूरा किया जाता है।

क्षारीय मृदाएं जिनका पी.एच. मान 8.5 से अधिक एवं विनिमयशील सोडियम की मात्रा 15% से अधिक होती है, ऐसी मृदाओं में जिप्सम मिलाने से उसमें उपस्थित कैल्शियम आयन सोडियम आयनों को मिट्टी की ऊपरी सतहों से हटाता है। साथ ही क्षारीय मिट्टी की ऊपरी सतहों से हटाता है। साथ ही क्षारीय मिट्टी में पाए जाने वाला सोडियम, जिप्सम में पाए जाने वाले सल्फेंट के साथ सोडियम सल्फेट के रूप में मिट्टी के नीचे निकल जाता है। इस प्रकार जिप्सम मिट्टी की क्षारीयता को दूर करता है एवं इसके उपयोग से मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार होता है। मिट्टी भुरभुरी हो जाती है एवं हवा व पानी का आवागमन आसानी से होने लगता है।

जिप्सम की मात्रा का निर्धारण प्रयोगशाला में मृदा परीक्षण के अनुसार तय किया जाता है जो कि मृदा में पाई जाने वाली सोडियम की मात्रा एवं मिट्टी के गठन पर निर्भर करता है। रेतीली मृदाओं को सुधारने के लिए भारी एवं चिकनी क्षारीय मृदाओं की अपेक्षाकृत कम जिप्सम की आवश्यकता होती है। भूमि सुधारक के रूप में काम में लिए जाने वाले जिप्सम की शुद्धता (कम से कम) 70% एवं मेस साइज 60 होनी चाहिए।

मानसून की वर्षा आरम्भ होने से पहले खेत को समतल करके मजबूत मेडबंदी करें। इसके बाद प्रयोगशाला में मिट्टी एवं पानी परीक्षण के बाद सिफारिश की गई जिप्सम की मात्रा को मिट्टी की ऊपरी सतह (6 इंच) में मिला दिया जाये। इसके बाद खेत को छोटी–छोटी क्यारियों में बांट दिया जाता है। फिर इन क्यारियों में वर्षा का पानी सामान्य स्तर (2–3 इंच) तक भरने दिया जाता है। यह पानी का भराव सामान्यता एक सप्ताह तक रखा जाता है। इसके बाद भी यदि पानी मिट्टी की सतह पर रहता है, तो इसे खेत से बाहर निकाल देना चाहिए। यदि वर्षा का पानी क्यारियों को भरने के लिए पर्याप्त नहीं है तो कुओं एवं नहर के पानी से भी इन क्यारियों में पानी का भराव सामान्य स्तर तक एक सप्ताह तक रखना चाहिए। क्यारियों में पानी सूखने या बाहर निकालने के बाद सामान्य कृषि कार्य करें। इस प्रकार जिप्सम द्वारा सुधारी गई मृदा को उसी रूप में रखने के लिए जरूरी है कि सिंचाई हेतु अच्छा पानी प्रयोग में लेवें। क्षार सहनशील फसलों एवं उनकी उत्तम किस्मों का उपयोग करें, जैविक खाद का अधिक इस्तेमाल करें। सामान्यतः जिप्सम द्वारा सुधारी गई क्षारीय मृदाओं में 3–4 वर्षों तक इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

सरसों: एक लाभकारी खाद्य तेल

अनुभूति शर्मा, अरूण कुमार, हरिसिंह मीना, मुकेश कुमार मीना, रूपेन्द्र कौर एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

आहार या भोजन के तीन उद्देश्य हैं। शरीर को अथवा उसके प्रत्येक अंग को क्रिया करने की शक्ति देना, दैनिक क्रियाओं में ऊतकों के टुटने–फूटने से नष्ट होने वाली कोशिकाओं का पुर्नर्निमार्ण और शरीर को रोगों से अपनी रक्षा करने की शक्ति देना। राई–सरसों विश्व की एक महत्वपूर्ण तिलहन फसल है। भारत की अर्थव्यवस्था में राई–सरसों का महत्वपूर्ण स्थान है। सरसों के बीज व पत्तियों में अधिक प्रोटीन, संतुलित विटामिन्स व मिनरल्स की मात्रा होती है जो इन्हें एक ज्यादा उपयोगी खाद्य पदार्थ बनाते हैं तथा सरसों के बीज व पत्तियों को अपने भोजन में शामिल करने से इस भोजन को एक संतुलित भोजन कहा जा सकता है।

ग्रामीण भारत में कृषि व उससे जुड़ी सहायक गतिविधियाँ आजीविका का एक प्रमुख साधन है। जनसंख्या विस्फोट और भोजन की मांग हमेशा साथ–साथ चलते हैं।भारत के सामाजिक–आर्थिक ढांचे में कृषि की महत्ता को इस तथ्य से महसूस किया जा सकता है कि देश कि अधिकांश जनसंख्या की आजीविका कृषि पर निर्भर है। प्रत्येक प्राणी के जीवन के लिए आहार आवश्यक है। आहार या भोजन के तीन उद्देश्य हैं। शरीर को अथवा उसके प्रत्येक अंग को क्रिया करने की शक्ति देना, दैनिक क्रियाओं में उतकों के टुटने–फूटने से नष्ट होने वाली कोशिकाओं का पुर्नर्निमार्ण और शरीर को रोगों से अपनी रक्षा करने की शक्ति देना। सरसों के बीज (जिसको राई भी कह सकते हैं) पूरे विश्व में उगाये जाते हैं।

राई–सरसों विश्व की एक महत्वपूर्ण तिलहन फसल है क्योंकि इसके बीजों में सिर्फ तेल की अच्छी मात्रा ही नहीं, बल्कि इसकी तेल रहित खली में उच्च दर्जे की प्रोटीन भी अधिक मात्रा में पाई जाती है। यह फसल उष्ण कटिबंध से लेकर शीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में विश्व के करीब 120 देशों में उगाई जाती है। भारत की अर्थव्यवस्था में राई–सरसों का महत्वपूर्ण स्थान है।

सरसों क्रूसीफेरी ब्रैसीकेसी कुल का द्विबीजपत्री एककवषीय शाक जातीय पौधा है। इसका वैज्ञानिक नाम ब्रेसिका कम्प्रेसटिस है। भारत में मूँगफली के बाद सरसों दूसरी सबसे महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है जो मुख्यतः राजस्थान, पंजाब, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल एवं असम में उगायी जाती है। सरसों राजस्थान की प्रमुख तिलहनी फसल है, जिससे तेल प्राप्त होता है। सरसों के तेल में सेचुरेटिड फैटी एसिड़ की मात्रा अन्य खाद्य तेलों से जयादा संतुलित होती है। फलस्वरूप अन्य खाद्य तेलों की अपेक्षा राई सरसों का तेल हमारे स्वास्थय के लिए सर्वोतम है। राई–सरसों में करीब 30–42% तेल होता है। सरसों के बीज व पत्तियों में अधिक प्रोटीन, संतुलित विटामिन्स व मिनरल्स की मात्रा होती है जो इन्हें एक ज्यादा उपयोगी खाद्य पदार्थ बनाते हैं तथा सरसों के बीज व पत्तियों को अपने भोजन में शामिल करने से इस भोजन को एक संतुलित भोजन कहा जा सकता है। सरसों की खेती कृषकों के लिए बहुत लोकप्रिय होती जा रही है क्योंकि इससे कम सिंचाई व लागत से अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। सरसों की कम उत्पादकता के मुख्य कारण उपयुक्त किस्मों का चयन अंसुतलित उर्वरक प्रयोग एवं पादप रोग व कीटों पर्याप्त रोकथाम न करना आदि है।

आधुनिक युग में तकनीकी विकास के साथ जहाँ एक ओर हम तरक्की की राह पर आगे बढ़ते जा रहे हैं वहीं हमारे खान–पान व रहन–सहन में हो रहे परिवर्तनों के कारण हमारा स्वास्थ्य विभिन्न प्रकार की खतरनाक बीमारियों का शिकार होता जा रहा है। इनमें हृदय रोग सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसका प्रमुख कारण खाने में सही घी व तेल का प्रयोग न होना है। भारतीय खाने में तेल का प्रयोग एक अति आवश्यक अंग है। तेल के प्रयोग से खाने का स्वाद बढ़ता है। तेल से हमें शक्कर एवं प्रोटीन के मुकाबले दुगुनी मात्रा में उर्जा की प्राप्ती होती है। चर्बी में घुलनशील विटामिन 'ए' और 'डी' भी तेल में विद्यमान होते हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यक फैटी एसिड 'लिनोलिक' और 'लिनोलेनिक' एसिड भी

खारे तेल से ही प्राप्त होते हैं जो मानव शरीर में नहीं होते एवं 'खरोस्टाग्लैटिन' उत्पादन के लिए बहुत आवश्यक है। इनकी कमी से हमारी शारीरिक क्षमता पर बहुत बुरा असर पड़ता है। अलग–अलग परीक्षणों से यह अनुमान लगाया गया है कि अति आवश्यक 'फैटी एसिड' बच्चों के दिमाग के सही विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

सरसों के तेल में 60% मोनोअनसेचुरेटेड फैटी एसिड होता है जिसमें 42% इरुसिक एसिड और 12% ओलेक एसिड होता है, इसमें 21% पोलीअनसेचुरेटेड होता है, जिसमें से 6% ओमेगा–3 अल्फा–लिनोलेनिक एसिड, 15% ओमेगा–6 लिनोलेनिक एसिड होता है और 12% संतृप्त वसा होता है।

पौधों की वृद्धि अवस्था के अनुसार सरसों के समस्त भागों (हरी पत्तियां, तना एवं बीजों) का मानव अथवा जानवरों के लिए खाने में उपयोग होता है। तेल व मसाले के साथ–साथ इनकी हरी पत्तियों का सब्जी व सलाद के रूप में उपयोग किया जाता है। हरी सरसों स्वाद में उत्तम और तीखी होने के साथ–साथ अन्य हरी सब्जियों से कहीं अधिक पौष्टिक होती हैं। हरी सरसों में पाचन क्षमता को बढ़ाने व शरीर को रोगों से दूर रखने की अदभुत क्षमता है। इनमें ऊर्जा की मात्रा कम व आवश्यक खनिज लवण तथा विटामिन्स् प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, जो शरीर को स्वस्थ बनाने व रोगों से सुरक्षा प्रदान करने में अहम भूमिका निभाते हैं। सरसों की हरी पत्तियों में विटामिन ई (टोकोफिरोल), विटामिन सी, कैरीटेनोएड, ग्लूकोसिनोलेट्स, स्टीरोल्स व फीनोलिक्स इत्यदि लाभकारी पोषक तत्वों के कारण पोषण में इनका बहुत अधिक महत्व है। देश के विभिन्न प्रांतों मुख्य रूप से उत्तर भारतीय राज्यों – पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश व राजस्थान में सरसों की हरी पत्तियों का उपयोग साग बनाकर खाने के लिये किया जाता है।

हरी सरसों मे विटामिन्स् व खनिज लवणों की मात्रा फलों, अण्डा व दूध से मिलने वाली मात्रा के लगभग समान ही होती है। इसके पत्तों में पर्याप्त मात्रा में आयरन पाया जाता है जिसका सेवन रक्ताल्पता से बचाव हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ताजी पत्तियों में फोलिक एसिड पाया जाता है जो लोहे के साथ मिलकर रक्त निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सरसों की पत्तियों में पाये जाने वाले खनिज लवण जैसे कैल्शियम, लौहा, जिंक, मैग्नीशियम, पोटेशियम तथा मैग्नीज रक्त को शुद्ध करने, पाचप को बढ़ाने व अम्ल–क्षार के संतुलन को बनाने मे बहुत उपयोगी है। इनमें रेशे की अधिक मात्रा होने से आंतों की सफाई, कब्ज व मधुमेह इत्यादि रोगों से बचाव व कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में सहायक होती है। साथ ही इसमें रोग प्रतिरोधक तत्व व फाइटो न्यूट्रीयट पाय जाते हैं जो कैंसर जैसी बीमारी से सुरक्षा प्रदान करते हैं। ताजी पत्तियाँ विटामिन 'सी' का भी उत्तम स्त्रोत हैं जो शरीर में रोग–प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाकर संक्रामक बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करता है।

इसके बीजों का तेल व मसाले के रूप में उपयोग किया जाता है। भारतीय खाने में सरसों का तेल का अत्यन्त महत्व है जिसका उपयोग अनेक प्रकार के व्यंजन व अचार बनाने में होता है। इनमें भी आवश्यक खनिज लवण तथा विटामिन भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं। इसमें पाये जाने वाले ओलिक एसिड में कोलेस्ट्रॉल

तालिका–1 विभिन्न वनस्पति तेलों में फैटी एसिड की प्रतिशत मात्रा

वनस्पति तेल	साईट्रिक	पॉमटिक	स्टीरिक	ऑलिक	लिनोलिक	लिनोलिनिक	ईरूसिक
ताड़	–	45	4	40	10	–	–
मूँगफली	–	11	2	48	32	–	–
मक्की	–	11	2	28	58	1	–
बिनौला	–	22	3	19	54	1	–
सूरजमुखी	–	7	5	19	68	1	–
सोयाबीन	–	11	4	24	54	7	–
तिल	–	9	4	41	45	–	–
सरसों	–	3	1–5	10	18	12	50
कनोला	–	4	2	62	22	10	2–5
जैतून	–	13	3	71	10	1	–

छाया अत्रि, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना

की मात्रा को कम करने वाला गुण पाया जाता है जो हृदय रोगियों के लिए अत्यन्त लाभकारी होता है।

खाने हेतु सही तेल का चुनाव व इस्तेमाल हृदय सम्बंधित बीमारियों से बचने में अहम् भूमिका अदा कर सकता है। आजकल बाजार में तरह–तरह के तेल उपलब्ध हैं परन्तु सही तेल का चुनाव करने के लिए हमें प्रत्येक तेल में उपस्थित फैटी एसिड की प्रतिशत मात्रा का संपूर्ण ज्ञान होना बहुत जरूरी है। खाये जाने वाले प्रमुख वनस्पति तेलों में कुछ ज्यादा प्रचलित व अधिक प्रयोग होने वाले तेलों में निम्नलिखित 'फैटी एसिड' मौजूद होते हैं। ये सभी एसिड मिलकर तेल का निर्माण करते हैं।

किसी भी तेल की गुणवत्ता उसके अन्दर उपस्थित 'सैचुरेटेड' एवं 'अनसैचुरेटेड' फैटी एसिड की मात्रा व उसकी किस्म पर निर्भर करती है। पॉमटिक और स्टीरिक सैचुरेटेड फैटीएसिड होते हैं। ताड़, मक्की, बिनौला, सोयाबीन और जैतून का तेल जोकि खाने में सबसे अच्छे व स्वास्थ्यवर्धक माने जाते हैं, इनमें 'सैचुरेटेड' फैटी एसिड की मात्रा काफी अधिक होती है। अंतराष्ट्रीय पैमाने के अनुसार यह 7% से कम होनी चाहिए। इनमें से कुछ तेलों (मूँगफली, मक्की, बिनौला, सूरजमुखी, सोयाबीन व तिल) में लिनोलिक एसिड (अनसैचुरेटेड फैटी एसिड) की मात्रा भी काफी अधिक है। इस कारण इन तेलों को अधिक तापमान पर बार–बार तलने के लिए प्रयोग करने पर हानिकारक तत्व (ट्रांस फैटी एसिड) पैदा हो जाते हैं जो हमारे शरीर की कोशिकाओं पर बहुत बुरा असर डालते हैं।

वनस्पति तेलों में ट्रांस फैटी एसिड की मात्रा 'हाइड्रोजिनेशन' के कारण ज्यादा होती है। इनके कारण हमारे शरीर में हानिकारक 'कोलेस्ट्रोल' एवं 'ट्राईग्लिसराइड' की मात्रा बढ़ जाती है व लाभदायक 'कोलेस्ट्रोल' इनके अनुपात में कम हो जाता है। परिणामस्वरूप उच्च रक्तचाप, हृदय रोग व मधुमेह जैसी बीमारियों को और अधिक खतरनाक बना देते हैं। 'ट्रांस फैटी एसिड' दिमाग की कोशिकाओं, झिल्ली और नसों की झिल्ली में संयुक्त होकर दिमाग की कार्यक्षमता को भी प्रभावित करते हैं। इनके कारण नसों की संचार क्षमता में परिवर्तन आ जाते हैं। नसों के खराब होने के कारण मस्तिष्क की क्रियाशीलता कम हो जाती है एवं 'पार्किसन' जैसी बीमारियों को न्यौता मिलता है।

सरसों के तेल में 'इरूसिक एसिड' की कुल मात्रा 50% तक होती है जिसके कारण सरसों के तेल का बहुत ज्यादा प्रयोग, वैज्ञानिकों के अनुसार, दिल की बीमारी का एक कारण बन सकता है क्योंकि यह हमारी रक्त धमनियों में जम सकता है। जिससे दिल को रक्त बहाव में कमी आ जाती है जो कि 'एंजाईना' को जन्म देता है। इसीलिए अंतराष्ट्रीय स्तर पर सरसों की नई 'कनोला' किस्में प्रचलित हैं। 'कनोला' सरसों उस किस्म को कहा जाता है जिसमें 'इरूसिक एसिड' की मात्रा 2% से कम तथा एक ग्राम तेल रहित खाल में 'ग्लूकोसिनोलेट' तीस माइक्रोमोल से कम होती है।

जैस कि डी.आर.एम.आर. भरतपुर कुछ उच्च गुणवक्ता वाली किस्में जैसे कि बी.आर.क्यू–2–1–5, बी.आर.क्यू–2–1–11 इत्यादि पर अनुसंधान कर रहा है जिसमें इरूसिक एसिड व ग्लूकोसिकोलेट कम मात्रा पाया जाता है। इसी तरह से पंजाब कृषि विश्वविद्यालय ने गोभी सरसों की दो 'कनोला' किस्मों जी.एस.सी–5, जी. एस.सी.–6 और आर.एल.सी.–1 (रायी सरसों) का विकास किया है जिनमें इरूसिक एसिड की मात्रा दो प्रतिशत से कम है। जहाँ एक ओर 'ग्लूकोसिनोलेट' की मात्रा कम होने के कारण कनोला तेल में कड़वापन कम है वहीं दूसरी ओर तलने के बाद यह तेल जल्दी खराब नहीं होता क्योंकि इसमें 'ऑलिक एसिड' की मात्रा 62% है जोकि काफी अधिक है। यह हानिकारक 'कोलेस्ट्रोल' पर कोई असर नहीं करता। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि 'ऑलिक' एसिड वक्ष–कैंसर को भी कम करने में मददगार है।

लोगों ने इस तेल को बहुत पसंद किया है और 'कनोला' तेल साधारण सरसों के तेल के मुकाबले बुत स्वाथ्यवर्धक है। इस का स्वाद आम तेलों से अच्छा है, सरसों के तेल से ज्यादा टिकाऊ है और जल्दी खराब नहीं होता है। उपरोक्त गुणों को ध्यान में रखते हुए जरूरी है कि 'कनोला' किस्मों को ज्यादा से ज्यादा पैदा किया जाए ताकि जनसाधारण को खाने हेतु स्वाद और सेहतमंद तेल मिले जो कि वह स्वयं अपने खेतों में पैदा कर सकता है।

सरसों के तेल को अचार चटनी और अन्य खाद्य सामग्रीयों में परिरक्षक की तरह उपयोग में लिया जाता है।

सरसों के तेल में फंफूदी नाशक तत्व होते हैं जो कि त्वचा सम्बन्धी बीमारियों को दूर करते हैं।

सरसों के बीज भोजन में प्रोटीन प्रचुरता पाई जाती है जिस वजह से यह पशुओं के खाने व पोल्ट्री फीड का एक प्रमुख अंग है।

सरसों ओमेगा–3 का एक प्रमुख स्रोत है। ओमेगा–3 एक अच्छा पॉलीअनसेचुरेटिड फैट है जो कि हृदय को सेहतमंद रखने, आंखों से जुडी समस्याओं से निजात पाने तथा कैंसर जैसी बीमारियों से लड़ने के लिए अति आवश्यक है।

सरसों की पत्तियों में विटामिन्स प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पोषकीय रेशा, मिनरल्स इत्यादि भी अत्यधिक होते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सरसों के बीज में अधिक प्रोटीन, संतुलित विटामिन्स व मिनरल्स की मात्रा होती है जो इन्हें एक ज्यादा उपयोगी खाद्य पदार्थ बनाते हैं तथा सरसों के बीज व पत्तियों को अपने भोजन में शामिल करने से इस भोजन को एक संतुलित भोजन कहा जा सकता है। अब सरसों का तेल पांरम्परिक और प्रयोगात्मक ज्ञान द्वारा ही नहीं बल्कि इसके लाभकारी गुणों के लिए वैज्ञानिकों के द्वारा भी समर्थित है।

सरसों उत्पादन में वैज्ञानिक विधियों का अनुकरण एवं किसानों का रवैया

आर. एस. जाट, हरवीर सिंह एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारत एक कृषि प्रधान उपमहादीप है। भारत में खाद्य फसलों के बाद तिलहन दूसरी मुख्य अर्थव्यवस्था है, जो कि 28.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर उगाये जाते हैं और 32.88 मिलियन टन उत्पादन है । भारत कनाडा और चीन के बाद तीसरे नम्बर का सबसे बडा सरसों उत्पादक और सातवां सरसों तेल का निर्यातक दश है। हमें निंरतर तेल की उपज बढ़ाने की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति के लिये हमें वर्ष 2050 एडी तक 4 गुणा उत्पादकता, 3 गुणा पानी की उत्पादकता तथा 6 गुणा मजदूर उत्पादकता तथा 2 गुणा ऊर्जा की उपयोगिता बढानी होगी। हमें 2050 तक देशवासियों की खाद्य तेल की आपूर्ति के लिये आवश्यक है कि सरसों की उन्नत वैज्ञानिक तरीके से खेती की जावें।

भारत एक कृषि प्रधान उपमहादीप है, जहां विश्व के 25.2% किसान तथा 2.3% कृषि भूमि है। विश्व में तिलहन उत्पादन पिछले तीन दशकों में उत्पादन 4.1% की गति से बड़ा है जिसमें भारत विश्व की 5 वीं सबसे बडी खाद्य तेल अर्थ व्यवस्था है भारत दुनिया का 7.4% तिलहन, 5.8% तेल एंव 6.1% खली का उत्पादन करता है तथा 9.3% विश्व खाद्य तेलों का उपभोग करता है। भारत में खाद्य फसलों के बाद तिलहन दूसरी मुख्य अर्थव्यवस्था है, जो कि 28.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर उगाये जाते है और 32.88 मिलियन टन उत्पादन है। भारत कनाडा और चीन के बाद तीसरे नम्वर का सबसे बडा सरसों उत्पादक और सातवां सरसों तेल का निर्यातक देश है।

सरसों उत्पादन एंव वृद्धि में क्षेत्रीय असमानता :–

सरसों मुख्यतः उत्तरी एंव उत्तरी–पूर्वी राज्यों में उगाई जाती है जैसे– राजस्थान, उतर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात एंव हरियाणा। राजस्थान लगातार सबसे ज्यादा क्षेत्रफल पर सरसों उगाने वाला राज्य हैं जहॉ 3.08 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल पर सरसों की खेती की जाती है जो कि पूरे तिलहनी क्षेत्र की 46% है। इसके बाद मध्य प्रदेश (0.81 मिलियन है) तथा उतर प्रदेश (10.66 मिलियन है.) राज्य हैं। उत्पादन में भी राजस्थान का सर्वोच्च स्थान है जो 2013–14 में 3.83 मिलियन टन था जो कि पूरे तिलहन उत्पादन का 48.2% है। अगर उत्पादकता की बात करें तो हरियाणा में प्रति हैक्टेयर उत्पादकता सर्वाधिक (1639 किग्रा/है.) है। जो कि गुजरात (1582 किग्रा/है.) तथा राजस्थान (1273 किग्रा/है.) से भी ज्यादा है। कुछ अन्य राज्यों में भी सरसों की खेती है जैसे– महाराष्ट्र, पंजाब, पश्चिम बंगाल, उडीसा, असम एंव दक्षिणी राज्यों जैसे– कर्नाटक आन्ध्र प्रदेश जो कि देश के कुल सरसों क्षेत्रफल का और उत्पादन में 15–20% योगदान रखते है।

सरसों के क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता में क्षेत्रीय असमानताएं बहुत है जैसे वर्ष 2012–13 में क्षेत्रफल के हिसाब से राजस्थान के गंगानगर (2,81,408 हैक्टेयर), अलवर (2,52,730 हैक्टेयर) तथा भरतपुर में (2,02,688 हैक्टेयर) क्षेत्रफल पर सरसों की खेती की गई। मध्य प्रदेश में भिण्ड में (1,82,808 हैक्टेयर) तथा मुरैना में (1,41,899 हैक्टेयर) क्षेत्रफल पर सरसों की खेती की गई। वैसे हरियाणा में महेन्द्रगढ़, गुजरात में बनासकढ तथा पश्चिमी बंगाल में मुर्शिदाबाद जिलों में भी सरसों की काफी बडे क्षेत्रफल में खेती की जाती है।

अगर हम जिले के हिसाब से सरसों की उत्पादकता देखें तो भी बहुत असमांताए है। कुछ जिले ऐसे है जिनमें उत्पादकता देश की उत्पादकता है उससे भी ज्यादा है जैसे हरियाणा में कैथल, पानीपत तथा रेवाडी जिलें। कुछ जिले जिनकी उत्पादकता 2 टन से ज्यादा है वो निम्न है हनुमानगढ (2639 किग्रा/ह), गंगानगर (2009 किग्रा/है.) तथा हरियाणा में कैथल (2304 किग्रा/है.), पानीपत (2281 किग्रा/है.), रेवाडी (2154 किग्रा/है.) एंव पंचकुला (2000 किग्रा/है.)। गुजरात में पंचमहल (2000 किग्रा/है.), जामनगर (2000 किग्रा/है.) तथा मध्य प्रदेश में

रतलाम (2098 किग्रा/है.) जिले है जिनकी उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से भी ज्यादा है। सभी सरसों उत्पादक राज्यों में नौ जिले ऐसे है जिनकी उत्पादकता 2 टन से ज्यादा है तथा 37 ऐसे जिले हैं जिनकी उत्पादकता 1.5–2.0 टन के बीच है। इनमें 53 ऐसे जिले है, जिनकी उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से भी ज्यादा है।

सरसों के उत्पादन में किसानों का रवैया – सरसों के उत्पादन में किसानों का व्यावहरिक रवैया निम्न प्रकार है :–

1. **बीज की गुणवत्ता एवं मात्रा –** किसान बीज कि गुणवत्ता देखें एवं उपचार किये बिना ही खेत में बुवाई कर देते है। किसान समझता है की सब बीज एक जैसे ही होते है। जिससे बीज का अच्छा जमाव नही हो पाता और कम पैदावर होती है। बीज की किस्में और एंव गुणवत्ता में अधिकाधिक सुधार के प्रयास किये जाने चाहिये साथ ही बीज उपचार रसायनों का भी उचित प्रयोग किया जाएं ताकि बीज या फसल को कोई रोग ना हो।

   राई व सरसों के किसान अभी भी आवश्यकता से ज्यादा बीज का प्रयोग करते है और बहुत घनी फसल उगाते है। उनका मानना है कि अधिक बीज डालने पर जो अन्य कारणों से नुकसान होता है जैसे ज्यादा तापमान, कीडा लगना या भूमि लवणता उसका समावेश हो जावेगा। लेकिन ऐसा होता नही और अधिक बीज से फसल घनी हो जाती है जिससक आगे चलकर और अधिक बीमारी लगने की सम्भावनायें बढ़ जाती हैं।

2. **बुवाई की विधि –** अभी भी किसान छिड़काव विधि से राई.सरसों की बुवाई करते हैं। जिससे पौधों से पौधे की दूरी एंव पंक्ति से पंक्ति की दूरी का सही समावेश नही हो पाता। बुवाई में हमको पौधों से पौधे की दूरी एंव पंक्ति से पंक्ति की दूरी को सही ढंग से विमोचन करना होगा। पौधों से पौधे की दूरी जो राज्यों के हिसाब से भी निर्धारित की गई, किसान भाई उसी प्रकार उसको प्रयोग में लायें। आधुनिक सीड डिल्स का भी प्रयोग कर हम सही पौधों से पौधे की दूरी एंव पंक्ति से पंक्ति की दूरी को रख सकते हैं।

3. **खरपतवार नियंत्रण –** सरसों की फसल में जो खरपतवारों की रोकथाम करना चाहिये उस हिसाब से किसान नियंत्रण नहीं करते है। जैसे – औरोबैंकी, खरपतवार की समस्या हो तो कुछ कम पौधें ग्रसित हैं तो उनको उखाड़कर जला देना चाहिए इत्यादि। इन सब बातों का किसानों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिये जिससे कि सरसों उत्पादन पर प्रतिकुल प्रभाव न पड़े।

4. **सिंचाई –** सरसों कम पानी चाहने वाली फसल है। किसान भाई कई बार जरूरत से ज्यादा सिंचाई सरसों फसल में देते है, जो ठीक नही है। सिंचाई की संख्या ही नही मात्रा भी ज्यादा रखते है। जिसका कुप्रभाव उत्पादन पर पडता है, तथा उपज कम मिलती है। इसके के साथ ही अधिक सिंचाई के कारण फसल में बीमारी (सक्लेरोटोनिया) भी अधिक लगती हैं। इसलिये किसानों से यह आग्रह है कि सिंचाई समय पर और जरूरत के हिसाब से करें।

5. **अन्तः शस्य क्रियाएं –** अन्तः शस्य क्रियाओं जैसे निरायी गुडाई व पौधों की छटाई का फसल उपज पर भारी प्रभाव पडता है। किसान फसल बोने के बाद पानी देने के अलावा कुछ नही करता जिससे पौधे घने रह जाते है और खरपतवार रह जाते है जिनका फसल उत्पादन पर प्रतिकुल प्रभाव पडता है। साधारणता किसान भाई इन क्रियाओं पर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं।

6. **खाद एवं उर्वरक का प्रयोग –** ज्यादातर किसान उर्वरकों की मात्रा का अनुचित प्रयोग करते हैं, निर्धारित मात्रा से ज्यादा उर्वरक देते है जो कि सही उपज लेने के लिये ठीक नहीं है। सही खाद एवं उर्वरक निर्धारित समय पर ना देना तथा निर्धारित मात्रा में उर्वरक न देना सबसे बड़ी समस्या है।

7. **कीट एवं बीमारी का नियंत्रण –** कीट एवं बीमारी का सही समय पर प्रबंधन करना अति आवश्यक है। किसान कीट एवं बीमारी से होने वाले नुकसान को अधिक बीज या खेत में अधिक पौधे उगाकर समावेशीत करता है जो कि बिल्कुल गलत है। कीट या बीमारी लगभग जैसे ही शुरू हो तुरत विषय विशेषज्ञ से मिलकर उसकी रोकथाम की जाँच अन्यथा ये उपज में काफी नुकसान कर देते हैं।

8. **भूसा एवं डण्ठल का उपयोग –** ज्यादातर किसान सरसों काटने के बाद बचे हुये अवशेष को या तो जला देते हैं या फिर ईटों भट्टों वाले को दे देते हैं। लेकिन वो भूसा एवं डण्ठल को खेत में नही छोडतें। किसानों को यह सलाह दी जाती है कि सरसों निकालने के बाद बचे अवशेष जलाना नहीं चाहिए इससे उर्वरा शक्ति का नुकसान होता है और ना हीं ईट भट्टों देना चाहिए जिससे पर्यावरण प्रदूषित होता है। सरसों के भूसा एवं डण्ठल

का किसान मल्च के रूप में खेत में उपयोग कर सकते हैं।

हमें निंरतर तेल की उपज बढ़ाने की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति के लिये हमें वर्ष 2050 एडी तक 4 गुणा उत्पादकता, 3 गुणा पानी की उत्पादकता तथा 6 गुणा मजदूर उत्पादकता तथा 2 गुणा ऊर्जा की उपयोगिता बढानी होगी। हमें 2050 तक देशवासियों की खाद्य तेल की आपूति के लिये आवश्यक है कि सरसों की ऊन्नत वैज्ञानिक तरीके से खेती की जावें।

सभी बाधाओं को लेकर हमें कुछ रणनीतियाँ बनानी पड़ेगी जो कि देश में सरसों उत्पादन को बढ़ावा दे सके –

1) किसान जलवायु एवं भूमि के अनुकूल किस्मों का प्रयोग करें।
2) बीज की सही व अनुमोदित मात्रा का ही प्रयोग करें।
3) सरसों उत्पादन में ऊन्नत मशीनों का प्रयोग करें।
4) उपयुक्त फसल चक्र को अपनायें और अधिक लाभ कमायें।
5) सरसों में बलुई क्षेत्रों में दो सींचाई व दोमट एवं काली मिट्टी में एक सींचाई ही दें।
6) उचित कीट एवं बीमारीयों का नियंत्रण करें। खरपतवार विशेषकर ओरोबेन्ची को देखते ही उखाड़ कर फेंक देवें।
7) सीमांत, खारी एवं क्षारीय मृदाओं तथा क्षारीय पानी वाले क्षेत्रों में राई–सरसों के बढ़ावा दिया जाये।
8) वैज्ञानिक विधि द्वारा खेती को अपनायें और अधिक लाभ पावें।

राई–सरसों के किसानों को समझना होगा कि अधिक बीज या अधिक सिंचाई करने से अधिक उपज या लाभ नही मिलने वाला । उसे कृषि वैज्ञानिको दवारा अनुमोदित कृषि प्रणालियों का प्रयोग करना चाहिए जिससे अधिक पैदावर हो और अधिक लाभ प्राप्त हो सकें। इसके अलावा बुवाई, निराई, गुडाई, सिंचाई, व कटाई के लिये ऊन्नत मशीनों का प्रयोग करें जिससे सही मात्रा में खाद, बीज व पानी का उपयोग हो सकें, पैदावार लागत कम हो और मुनाफा अधिक हो सकें।

धान की परती भूमि में सरसों का भविष्य

आर. एस. जाट, हरवीर सिंह एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

सरसों खाद्य तेल का सस्ता स्त्रोत है तथा प्रति व्यक्ति तेल की उपलब्धता हमारी बढ़ती हुई जीवन शैली के कारण और भी बढ़ रही है। बढ़ती हुई मॉग के अनुसार खाद्य तेल की घरेलू आपूर्ति पुरी तरह से अपर्याप्त है। प्राय इस मॉग को पूरा करनें के लिये एक बड़ी मात्रा में खाद्य तेलों का आयात किया जाता रहा है। यदि हम खाद्य तेलों का आयात करने की जगह, रबी में खाली पड़ी परती भूमि का उपयोग कर सरसों की खेती करे तो इस परती भूमि के उपयोग के साथ साथ खाद्य तेलों का उत्पादन बढा सकते है और साथ ही किसान एक अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकता है।

भारत में धान की खेती मुख्यता (40 मिलियन है.) खरीफ में होती है उसके बाद लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्रफल रबी मौसम में परती छोड़ दिया जाता है। परती छोडी गई धान की भूमि का लगभग 82 प्रतिशत क्षेत्रफल पश्चिम बंगाल, असम, बिहार, छतीसगढ़, झारखण्ड़, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में है। जिनका क्षेत्रफल कुल बोये गये धान के क्षेत्रफल के राज्यों जैसे–पंजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश के बराबर है, जो हरित क्रान्ति के एक अहम हिस्सा थे। यदि उस परती भूमि कों उपयोग में लाकर उसमें सरसों उगाये तो किसान को एक अतिरिक्त आय मिल सकती है और उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है। परती भूमि को छोड़ने का मुख्य कारण सिंचाई की आधारभूत सॅरचना का नही होना है। इस क्षेत्र में ज्यादातर किसान छोटे व सीमान्त जोत वाले है जो सिंचाई की सुविधाओं को बनाने के लिए पैसे खर्च नही कर सकते है। राई–सरसों की इन क्षेत्रों में वर्षा आधरित खेती की भरपुर सम्भावनाये है जो सही एवं आवश्यक तकनीक को अपनाकर और बाजार से संम्बधित जानकारी लेकर की जा सकती है।

बहुत से ऐसे कारक है जो रबी परती भूमि को उपयोग करने में बाधा डालते है। बड़े पैमाने पर इनको दो भागों में विभाजित कर सकते है। जल सम्बन्धी और मृदा सम्बंधी। जल फसल के अंकुरण के लिये अति आवश्यक है। जल से सम्बधित परेशानियों में धान की कटाई के बाद मृदा में नमी की कमी तथा रबी फसल के फूल आने तक सूखा की समस्या। वैसे धान की परती भूमि मे ंरबी में फसल उगाने पर बची मृदा नमी जो कि अंकुरण तथा फसल जमाव में काम आती है। मृदा से सम्बधित समस्याऐं जैसे धान की कटाई के बाद मृदा का कठोर हो जाना, मृदा में दरारे पड़ जाना, कार्बनिक पदार्थ की कमी होना तथा मृदा में क्षारीयता की समस्या।

धान परती क्षेत्रों की मुख्य बाधाएँ निम्न है–

खेत में धान की कटाई के बाद नमी का तेजी से कम होना।

परती धान के खेत में भूमि का कठोर हो जाना।

कम अवधि वाली धान की प्रजातियॉ की कमी जिसके कारण रबी फसलों की वुबाई देर से होती हैं।

इस अवधि में मजदूरों की कम उपलब्धता भी रबी की फसलों की बुवाई में बाधक है।

किसानों कों ऐसी क्षेत्रों में नमी संरक्षण तथा बुवाई तकनीकियों जो बीज को कम नमी में भी उगा सकें, की जानकारी कम है।

किसान गरीब है, उनके पास पर्याप्त पूँजी नही है, जो कि बीज, उर्वरक तथा खरपतवारनाशी खरीद सकें।

जन प्रसार का तरीका भी ठीक नही है जो किसान को तकनीकियों तथा साधनों के बारे में समय से जानकारी दे सकें।

धान का परती क्षेत्रफल

छतीसगढ़, झारखण्ड़, मध्य प्रदेश, उड़ीसा एवं पश्चिमी बंगाल ये देश के वे राज्य है, जहॉ धान मुख्य फसल है और जहॉ खेत धान की खेती के बाद खाली छोड़ दिया जाता है। ये राज्य देश के धान की परती

Rice fallows in India (11.65 million ha)

Eastern Region : 4.27 m ha
Eastern U.P., Bihar, Jharkhand and West Bengal

North-east Hill Region: 0.54 m ha
Assam

Central Region : 5.01 m ha
Madhya Pradesh, Chhattisgarh, Maharashtra

Coastal region: 1.52 m ha
Andhra Pradesh, Odisha, Tamil Nadu

State	Area ('000 ha)	% of kharif rice area
Madhya Pradesh	4382	78.3
Bihar	2196	36.8
West Bengal	1719	37.2
Orissa	1219	31.4
Maharashtra	629	35.7
Assam	539	24.1
Uttar Pradesh	353	5.6
Andhra Pradesh	305	11.5
Karnataka	182	18.5
Gujarat	83	17.7
Rajasthan	25	11.7
Tamil Nadu	20	1.2
Total	11,652	-

भूमि में 82 प्रतिशत योगदान रखते है।

इन बाधाओं का समुचित प्रबंधन करके सरसों की खेती लगभग सभी राज्यों में कर सकतें है। इस प्रकार सरसों का क्षेत्रफल और पैदावार भी बढेगी और खाद्य तेलों का आयात भी कम करना पडेगा ।

धान कटाई के बाद सरसों उत्पादन में मुख्यतः दो आवश्यकता है ।सबसे पहले, धान व सरसों दोनों की कम अवधि वाली प्रजातियों का विकास किया जाये जिससे कि वो जल्दी तैयार हो जावें और सूखा से बचा जा सके। दूसरी आवश्यकता है। राई–सरसों की वर्षा आधारित खेती के लिये तकनीकि और आर्थिक प्रयास किये जावें जिससे कि समय पर बुवाई हो सके, नमी को सुरक्षित रख सके और अधिक उपज प्राप्त कर सके।

हॉलांकि सरसों की फसल की वर्षा आघारित खेती भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। परंतु साधनोंएवं संसाधनों की अनुपलब्धता इसको स्वीकार नहीं करती है।

क्योंकि इस समय जमीन खोली होती है और मजदूर मिलने में कोई परेशानी नही आती इसलिये कुछ तकनीक तथा पॉलिसी होनी चाहिये जिसमें किसान को ज्ञान हो तथा धान के बाद की परती भूमि में सरसों उगाकर उपयोग में ला सके। अगर यह तकनीकी किसानों ने अपनाई तो निश्चित तो पर यह किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने में वरदान साबित होगी।

धान की परती भूमि में सरसों की खेती के लिये तकनीकि और अर्थिक प्रयास, राई–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर की तरफ से किये जा रहे हैं।

राई–सरसों के क्षेत्र का विस्तार

भारत में सरसों की माँग ज्यादा है तथा आपूर्ति कम है। इससे यह संकेत मिलता है कि हम धान के बाद परती भूमि में या गैर पारम्परिक क्षेत्रों में सरसों की खेती कर माँग को पूरा करें तथा किसान की अर्थव्यवस्था को सुधारें। भारत में धान के क्षेत्रफल का रबी में 30 प्रतिशत क्षेत्रफल ऐसा है जिसका कोई उपयोग नहीं है जो मुख्य रूप से पूवी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उडीसा, पश्चिमी बंगाल, छत्तीसगढ़, उत्तरी–पूर्वी राज्यों में जिसका सरसों उगाकर किसान समुचित उपयोग कर सकते है। इसके साथ ही गैर पारम्परिक क्षेत्र भी बहुत है जो कर्नाटक, दक्षिण राजस्थान, मध्य प्रदेश का रतलाम क्षेत्र एवं महाराष्ट्र का विदर्भ क्षेत्र में है वहा भी सरसों की खेती की जा सकती है। यदि इन क्षेत्रों के लिये तकनीकि विकास का प्रयास किया जावे तो लगभग 2 मिनियन है. क्षेत्र राई–सरसों की खेती के लिये बढा सकते है और साथ ही किसानों को बेहतर जीविकोपार्जन के आयाम दे सकते हैं।

लक्ष्य प्राप्ति करने के लिये रणनीतियॉ

पारिस्थितिक विशिष्ट किस्मे:

इन क्षेत्रों के लिये परिस्थिति के अनुरूप लघु अवधि वाली, तनाव सहिष्णु और इनपुट कुशल राई –सरसों की नवीनतम किस्मों का विकास करना। इसके साथ ही विकसित गई किस्मों के गुणवत्ता वाले बीजो का किसानों को वितरण करना आवश्यक है।

संसाधन प्रबंधन और कुशल उपयोग:

स्थान विशेष के अनूरूप फसल और खेती की प्रणाली प्रथाओं का मानकीकरण

करना, पोषक तत्व और जल संरक्षण और उसका प्रबंधन करना तथा खेत में जल संचयन प्रौद्योगिकी की अनुकूलन प्रयोग करना।

फसल प्रबंधन:

पारिस्थिति के अनुरूप सरसों की खेती की उन्नत तकनीकों का विकास करना, फसल प्रबंधन प्रथाओं की स्केलिंग करना व खरपतवार प्रबंधन प्रथाओं की स्केलिंग करना इत्यादि।

कीट और रोगों का प्रबंधन:

कीट और रोगों के प्रबंधन प्रोटोकॉल का विकास और बदलती हुई जलवायु परिस्थितियों की अनुरूप भविष्य के लिये योजना बनना।

फार्म मशीनीकरण:

विशिष्ट संसाधन संरक्षण जैसे मशीनों का विकास करना जैसे धान के बाद सीधे बुवाई के लिये शुन्य जुताई व बुवाई की मशीन, विशिष्ट सरसों बोने की मशीन, अंत क्रषण क्रियायें व खरपतवार नियंत्रण की मशीन।

प्रौद्योगिकियों प्रसारण व विस्तार:

नई प्रौद्योगिकियों के खेत पर बड़े पैमाने पर प्रदर्शन करना, प्रशिक्षण, मोबाइल सेमिनार और हितधारकों के लिये बोद्धिक क्षमता का विकास करना।

राई-सरसों में संरक्षण कृषि की संभावनाएं

हरवीर सिंह, आर. एस. जाट एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

संरक्षण कृषि, खेती की एक ऐसी तकनीक है, जिसमें फसल की अच्छी पैदावार के साथ प्राकतिक संसाधनों की गुणवत्ता भी बनी रहे ताकि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकतओं को पूरा करने के साथ–साथ भावी पीढ़ियों के लिये भी अच्छा वातावरण सुनिश्चित किया जा सकें। यह खेती का एक नया मॉडल है जिसमें जमीन को या तो बिल्कुल नही जोता जाता है या फिर कम से कम जुताई होती है तथा साथ ही लेजर तकनीक की मदद से जमीन को समतल किया जाता है और फसल अवशेषों का 30% भाग मृदा सतह पर छोड़ दिया जाता है।

आधुनिक फसल उत्पादन में समस्याऐं –

प्राकृतिक संसाधनों की मात्रा व गुणवत्ता में गिरावट– प्राकृतिक संसाधन सीमित होने व लगातार अधिक उपयोग के कारण कम होते जा रहे है। औसत जोत का आकार भी दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है।

पैदावार एंव गुणवत्ता में गिरावट– लगातार मृदा उर्वरता का क्षरण व दोहन होने के कारण उत्पादकता कम होती जा रही है। कीटनाशी व अधिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा को विषाक्त बना रहा है जिससे खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है।

बिगडती मृदा जैविकता–अधिक जुताई करने से व रासायनिकों के प्रयोग से मृदा जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पडा है।

खेतों में खरपतवारों का बढ़ाता प्रकोप–अधिक खरपतवार नाशियों के प्रयोग से अलग प्रकार के खरपतवार पैदा हो रहे है जिन पर किसी भी खरपतवार नाशी का प्रभाव नहीं पडता। ।

बिगडता मृदा स्वास्थ्य – अत्यधिक मृदा दोहन और कम जैविक खाद के प्रयोग के कारण मृदा स्वास्थ्य बिगडता जा रहा है और उत्पादकता कम हो रही है।

भूमिजल में निरंतर गिरावट – कम वर्षा व अधिक सिंचाई के कारण भूमिजल में निरंतर गिरावट आ रही है।

किसानों की घटती आय–अधिक लागत और मंहगे खाद और बीज के कारण प्रति इकाई आय कम होती जा रही है।

मृदा लवणीयता– नहरी क्षेत्रों में अधिक सिंचाई के कारण और बढते जल स्तर के कारण मृदा लवणता बढ़ रही है।

संरक्षित कृषि की आवश्यकता –

प्राकतिक संसाधनों का दोहन – पिछले कई दशक से फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए खेंतो में संसाधनों का अत्यधिक असंतुलित और अनुचित प्रयोग किया जा रहा है, परिणामस्वरूप हमारे संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा पर प्रतिकुल प्रभाव पडा है। आधुनिक खेती के कारण भूमि उपाजऊपन एंव फसल उत्पादों की गुणवता में कमी, मृदा में पोषक तत्वों की कमी, भूमिजल में निरंतर गिरावट, खेंतो में खरपतवारों का बढ़ाता प्रकोप, बिगडती मृदा समतलता, मृदा लवणीयता, खाघ पदार्थो में विषैले कृषि रसायनों की उपस्थिति, बिगडता मृदा स्वास्थ्य, मौसम की विषमताऐं तथा उत्पादकता में अस्थिरता या कमी जैसी समस्याऐं आ रही है। साथ ही संसाधनों के असन्तुलित प्रयोग से वायु, जल और मृदा प्रदूषण में लगातार वृद्धि हो रही है। फलस्वरूप मानव स्वास्थय पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडा है। इसके अलावा खेती में बढती उत्पादन लागत और किसानों की घटती आय भी चिन्ता का विषय बनी हुई है।

जलवायु परिवर्तन–जलवायु परिवर्तन से स्थानीय जैव विविधता में परिवर्तन, औसत तापमान में वृद्धि उसके क्षरण का कारण हो सकता है। अधिक तापमान से फसलों की वृद्धि व उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। देश में

फसल उत्पादन मे उतार चढ़ाव का कारण कम वर्षा, अनियमित वर्षा, अत्याधिक वर्षा, अत्याधिक नमी, फसलों पर रोग एंव कीडे लगना, जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारण है।

निवेश खर्च–पराम्परागत खेती में खर्च अधिक होने के कारण औसत मुनाफा घटता जा रहा है। संरक्षक खेती से किसान की लागत में कमी आती है तथा मुनाफा अधिक होता है।

संरक्षित कृषि के तरीके –

1) शून्य जुताई (जीरो टिलेज)

इस तकनीक द्वारा खेतों की बिना जुताई किये एक विशेष प्रकार की मशीन द्वारा फसलों की सीधी बुवाई की जाती है। जहा बीज की बुवाई करनी हो, उस जगह से मिट्टी को जोता जाता है और बीज डाल दिया जाता है। इसमें दो लाइनों के बीच की जगह को बिना जोते ही रखा जाता है। बुवाई के समय आवश्वयक उर्वरकों की मात्रा बीज के साथ ही नीचे डाल दी जाती है। इस तरह की बुवाई मुख्यतः रबी फसलों जैसे गेहूँ, चना और चावल में ज्यादा कामयाब सिद्ध हुई है। इस तकनीक द्वारा बुवाई करने पर देरी से बोयी गई फसलों में होने वाले नुकसान को बचाया जा सकता है। यह तकनीकी सरसों और अलसी में भी बहुपयोगी व लाभकारी सिद्ध हुई है।

जीरो टिलेज ड्रिल द्वारा बुवाई के लाभ –

देरी से बुवाई की अवस्था में इस मशीन से बुवाई सम्भव है।

कम समय में अधिक क्षेत्रफल की बुवाई की जा सकती है।

जीरो टिलेज ड्रिल के प्रयोग से 75. 85 प्रतिशत ईधन, ऊर्जा व समय की बचत होती है।

सामान्य बुवाई की अपेक्षा बीजों का अंकुरण जल्दी हो जाता है तथा जुताई न होने के कारण खरपतवार मिट्टी की निचली सतह में रहने के कारण उग नही पाते।

इस विधि से 15–20 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

मृदा व पर्यावरण प्रदूषण में कमी आती है।

पिछली फसल के अवशेष भूमि में मिलकर या सड़कर मृदा गुणवत्ता व स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं।

सावधानियाँ एवं सुझाव : जीरो टिलेज ड्रिल से बुवाई करते समय किसान भाई परांपारिक विधि की अपेक्षा अधिक नमी पर बुवाई करें।

2) मेड़ों पर खेती

इस तकनीक में फसलों की बुवाई मेंड़ो पर कतार में की जाती है इसके लिए एक यंत्र तैयार किया गया है, जिसे फरब प्लान्टर कहते है। इस तकनीक में 70–75 सेमी. दूरी पर मेड़ बनाई जाती है। जिसमें लगभग 45 सेमी. चौडी मेंड़ और इतनी दूरी गहराई पर नाली सी बन जाती है। बुवाई मेंड़ो पर और नाली में भी फसल के अनुसार की जा सकती है। यह तकनीक खेतों की जुताई करने के बाद या फिर पिछली फसल के लिये बनाई गयी मेंड़ों पर भी बिना जुताई के भी अपनाई जा सकती है।

लाभः

1. वर्षा ऋतु में खेतों में ज्यादा पानी भरा होने से मेंड़ों पर उगी फसल ज्यादा सुरक्षित रहती है, क्योंकि आनवश्यक पानी को नालियों में से होकर बाहर निकाला जा सकता है।
2. फसलों की सिंचाई करने पर 20–30 प्रतिशत पानी कम लगता है।
3. खरपतवार कम उगते है, क्योंकि मेंड़ों पर फसल के पौधों की संख्या ज्यादा होती है। जिससे खरपतवारों को पनपने का मौका नही मिलता।
4. बीज तथा खाद की भी बचत होती है।
5. फसल की बढ़वार व उपज अधिक होती है।

3) फसल अवशेष प्रबंधन

फसल की कटाई के बाद जो अवशेष खेत में रह जाते है उनको भी संरक्षण कृषि में सम्मलित किया गया है। भारत में कुल फसल अवशेषों में खाद्य फसलें 70 प्रतिशत, तिलहनी फसलें 6 प्रतिशत, रेशे वाली 13 प्रतिशत, दाल वाली फसलें 3 प्रतिशत तथा गन्ना 2 प्रतिशत और अन्य फसलें का 6 प्रतिशत का योगदान है। उत्तर पश्चिमी भारत में ज्यादातर किसान धान के अवशेषों को जला देते है जिससे पर्यावरण व मृदा स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यदि इनमें शुन्य जुताई या कम से कम जुताई की जावे तो इन अवशेषों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

4) लेजर विधि द्वारा मिट्टी का समतलीकरण –

संसाधन संरक्षण तकनीक जैसे बिना जुताई की खेती या मेंड़ पर बुवाई के लिये सबसे जरूरी बात यह है कि खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए अन्यथा बुवाई ठीक से नही हो पाती है। बीज मिट्टी में सही गहराई पर नही पहुँचने से बीजो का अंकुरण एक समान रूप से नही हो पाता है। खाद तथा पानी भी पौधों को समान रूप से नहीं उपलब्ध हो पाते है। लेजर विधि एक नई वैज्ञानिक विधि है जिसमें एक विशेष उपकरण द्वारा खेत को पूरी तरह से समतल किया जाता है।

लाभ:

समतल भूमि पर फसल उगाने का सबसे ज्यादा फायदा पानी की बचत व अधिक फसल उत्पादकता है। सिंचाई का पानी खेत के हर हिस्से में एक समान मात्रा में और कम समय में सारे खेत में फैल जाता है। आजकल पूरे विश्व में सरंक्षण खेती पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यह है कि खेत की मिट्टी को न्यूनतम हिलाया जायें, उसकी जुताई न के बराबर की जायें, भारी मशीनों का कम से कम प्रयोग किया जाये व मृदा सतह को हर समय फसल अवशेषों या दूसरे किसी वनस्पति अवरणों से ढक्कर रखा जाये। हरी खाद या जमीन को ढकने वाली अन्य फसलो को फसल चक्र में अपनाया जायें। ऐसा करने से बहुत सारे फायदे पाये गये है जिसमें फसल की पैदावार बढ़ने के साथ–साथ संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, पोषक तत्व, फसल उत्पाद और वातावरण की गुणवक्ता भी बड़ी है जो कि भविष्य में कृषि के लगातार अच्छे उत्पादन के लिए बहुत जरूरी है।

जलवायु परिवर्तन का सरसों उत्पादन पर प्रभाव

हरवीर सिंह, आर. एस. जाट एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

जलवायु परिवर्तन एक दीर्घकालीन मौसम का बदलाव है जिसे विभिन्न क्षेत्रों में महसुस किया गया है। ताप, वर्षा और वायु के औसत को मौसम कहते है। समुद्री लहरों का परिचालन, भूकम्प, पृथ्वी द्वारा प्राप्त सूर्य ऊष्मा में बदलाव, प्लेट टेक्टॉनिक्स और मानव द्वारा प्रकृति से की गई दखलंदाजी जलवायु परिवर्तन के लिये उत्तरदायी है।

जलवायु परिवर्तन के कारण – जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण ग्रीन हाउस गैसें (कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड) का उत्पादन एवं उत्सर्जन है। ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रताए भूमि के उपयोग, मरूस्थलीकरण, वनों की कटाई एवं जीवाश्म ईधन से बढ़ रही हैं। वायुमण्डल में मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड की सान्द्रता बढ़ने में कृषि की अहम भूमिका है।

वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों की सान्द्रता निम्न प्रकार है –

1. कार्बन डाई ऑक्साइड– 392 पी.पी.एम

2. मीथेन–1874 पी.पी.बी.

3. नाइट्रस ऑक्साइड–324 पी.पी.बी.

4. ओजोन–34 पी.पी.बी.

वर्ष 1880 से अब तक पृथ्वी की सतह के तापमान में 0.83 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है। जलवायु परिवर्तन में अंतर सरकारी पैनल आई.पी.सी.सी. में प्रतिक्रिया में बताया गया है कि गरीब देश सर्वाधिक पानी की कमी, निम्न फसल उत्पादकता, कीटाणु व जीवाणुओं के बदलते हुए आक्रमण इत्यादि से प्रभावित होंगें।

सरसों उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

वैज्ञानिक शोधों में पाया गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण सरसों की उपज वर्ष 2020 तक लगभग 2% कम हो जायेगी तथा 2050 में लगभग 7.9% एवं 2080 में लगभग 15% घट जायेगी अगर हमने कोई अनुकूल व कारगर उपाय नहीं किया तो।

सरसों उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन होने से बहुत सारे रोगों और कीटों का प्रकोप बढ़ रहा है जैसे–जड़ गलन, पेंटेड बग, चेंपा, इत्यादि।

उत्तर भारत में सरसों की बुवाई का समय 1 से 15 अक्टूबर के बीच होता है और किसान यदि बिना मौसम की जानकारी के फसल की बुवाई करते हैं और अगर तापमान 25 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा है तो अच्छे बीज होने के बाबजूद भी अंकुरण नहीं होता है। यदि किसान को तापमान की जानकारी है तो किसान बुवाई का समय बदल सकता है और उपयुक्त तापमान होने पर बुबाई करता है तो अंकुरण अच्छा होगा।

फसल में दाना बनते समय अगर तापमान में अचानक वृद्धि हो जाती है तो वह जल्दी पकने लगता है, जिससे दाना बनने की अवधि में कमी आती है और उत्पादन पर विपरीत असर पड़ता है।

असमय व अनियमित वर्षा भी सरसों की वृद्धि में कारक है, जब असमय वर्षा होती है तो वह फसल के लिये प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

अधिक कार्बन डाई ऑक्साइड इन सभी कारकों में एक मुख्य कारक है जिसकी वजह से तापमान में वृद्धि होती है और बढता तापमान बहुत सारी समस्याओं की मुख्य घटक है। अधिक कार्बन डाई ऑक्साइड से पौधों के भोजन बनाने की प्रकिया पर भी सीधा प्रभाव पडता है।

सरसों एक सी–3 पौधा है फिर भी उच्च स्तरीय कार्बन डाई ऑक्साइड इसकी वृद्धि तथा उपल के लिये लाभदायक है। अधिक तापमान होने से पौधे की जल्दी वृद्धि होती है, फूल निष्फल हो जाते है जिससे उपज कम होती है। फूल आने की अवधि का समय भी उपज को प्रभावित करता है

तथा फूल आते समय यदि तापमान 3 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा हो जाता है (21–24 डिग्री सेल्सियस) तो उपज में घटोत्तरी होती है।

अन्य फसलों की तरह सरसों भी फूल आने के समय सबसे ज्यादा तापमान से प्रभावित होती है।

विश्व बैंक की नवीनतम रिपोर्ट वर्ष 2014 की पर्यावरण व जलवायु परिवर्तन रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1990 से 2010 तक के समय काल में कार्बन डाई ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड़ गैसों के उत्सर्जन में क्रमशः 51.3%, 16.9%, 6.6% की वृद्धि हुई है।

रास्ते जो बदलते जलवायु परिवर्तन को अनुकूलन करके सरसों की उपज बढ़ा सकते हैं, जो निम्न हैं–

बुवाई के समय में परिवर्तन करके भी हम कुछ हद तक फसल का प्रतिकूल मौसम से बचाव कर सकते हैं।

अच्छी उपज वाली प्रजातियाँ उगाकर एवं उनका अच्छा प्रबंध करके ।

बुवाई के समय में परिवर्तन या अच्छी उपज वाली प्रजातियाँ उगा कर हम वर्ष 2020 सिनेरियो (2010–39) तक प्रोजेक्टेड़ लगभग 3% उपज बढ़ा सकते हैं।

उन्नत निवेश कार्य क्षमता/दक्षता तथा 25% अधिक नत्रजन के उपयोग से एवं बुवाई के समय मे परिवर्तन करके हम प्रोजेक्टेड लगभग 17% तथा अच्छी उपज वाली प्रजातियों के साथ प्रोजेक्टेड़ लगभग 25% उपज वर्ष 2020 सिनेरियो (2010–39) तक बढ़ा सकते हैं।

भविष्य में कम अवधि में पकने वाली प्रजातियाँ (130 दिन) जलवायु परिवर्तन के हिसाब से उपज के मामले में अच्छी सिद्ध हो सकती हैं।

उपयुक्त फसल मॉडल्स तथा सिमुलेशन की मदद से जो कि पानी तथा पोषक तत्व के हों, जो कि विभिन्न सरसों उत्पादन क्षेत्रों में अत्यधिक लाभकारी तथा सम्भावित तथा सहायक सिद्ध होंगे।

खाद्य तेलों में विभिन्न अम्ल व उनकी गुणवता

निशा कुमारी एवं रामअवतार
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

आज के दिन देश की बढ़ती जनसंख्या के हिसाब से खाद्य तेलों की बहुत बड़ी खेप आयात करनी पड़ती है। इस मांग को पूरा करने के लिए तिलहनी फसलों की उपज को तो प्राथमिकता देनी ही होती है अपितु तेलों की गुणवता को भी परखना भी जरूरी होता है। तिलहनों में न केवल तेल ही अधिक मात्रा में है बल्कि इनमें प्रोटीन की मात्रा भी काफी अधिक होती हैं।

वनस्पति तेलों की संरचना को देखे तो इन तेलों में कई प्रकार के अम्ल होते हैं। इन अम्लों की संरचना से ही खाद्य तेलों की गुणवता परखी जाती हैं। मनुष्य के शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करने में कार्बोहाइड्रेट्स और प्रोटीन की तुलना में खाद्य तेल प्रति ग्राम दुगनी ऊर्जा देते हैं। खाद्य तेलों में मुख्यतः दो प्रकार के अम्ल होते हैं – तृप्त (saturated) एवं अतृप्त (unsaturated)। जिन खाद्य तेलों में तृप्त अम्ल अधिक मात्रा में होते हैं वे स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी नहीं होते जैसे कि जमाया हुआ वनस्पति घी। ऐसे तेलों को अधिक मात्रा में खाने से रक्त धमनियों में कोलेस्ट्रोल का जमाव हो जाता है और हृदय रोगों के होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके विपरीत अतृप्त अम्ल विशेषतया लीनोलिक (Linoleic)ए स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते है क्योंकि यह अम्ल रक्त धमनियों में कोलेस्ट्रोल जमाव रोकने में सहायता करता है। करड़ी का तेल प्रायः हृदय रोगियों के लिए लाभकारी होता है क्योंकि इसमें लीनोलीक अम्ल सबसे अधिक होता है। दूसरे खाद्य तेलों जैसे तिल, सूरजमुखी और मूँगफली में भी आवश्यक लीनोलिक अम्ल काफी मात्रा में होता है। इनकी तुलना में सरसों के तेल में आवश्यक लीनोलिक अम्ल बहुत कम होता है व इसमें इरूसिक अम्ल (erucic acid) की मात्रा बहुत अधिक होती है (लगभग 50%) जो अतृप्त होते हुए भी अधिक गुणकारी नहीं होता है। इरूसिक अम्ल से कुछ सीमा तक हृदय रोगों को बढ़ावा मिलता है। हमारे भोजन में 15 से 18 ग्राम तक वनस्पति तेल होने चाहिए जो आवश्यक लीनोलिक अम्ल की कमी को पूरा करने में सहायक हो सकता है।

इन सब बातों के अलावा सरसों के तेल में विषैले यौगिक भी होते हैं जैसे कि ग्लूकोसीनोलेट्स (glucosinolates) और थायोसाइनेट्स (thiocyanates)। इन विषैले यौगिकों के कारण सरसों का तेल खाने से थाइराईड ग्रन्थी के बढ़ने की सम्भावना अधिक हो जाती है। अब पौध प्रजनन विधि द्वारा इन विषैले यौगिकों को कम करने हेतु भरपूर परीक्षण किये जा रहे हैं। अरण्डी के तेल में मुख्यतः रीसीनोलिक अम्ल (लगभग 98% होता हैं। अतः अरण्ड का तेल औद्योगिक उपयोगों के लिए (मशीनों की चिकनाई तथा कास्मेटिक) तथा 2 प्रतिशत घरेलू धन्धों जैसे साबुन आदि बनाने, पेंट, वारनेस और दवाई के रूप में अधिकतर कब्ज को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

लोकप्रिय वनस्पति तेल

जैतून के तेल

जैतून के तेल में फैटी एसिड की पर्याप्त मात्रा होती है जो हृदय रोग के खतरों को कम करती है। मधुमेह रोगियों के लिए यह काफी लाभदायक है। शरीर में शुगर की मात्रा को संतुलित बनाए रखने में इसकी खास भूमिका है। इसलिए आहार में भी इस तेल का प्रयोग किया जाता है।

सूरजमुखी तेल

यह तेल पंजाब–हरियाणा, कश्मीर आदि में ज्यादा उपयोग होता है। इसमें पॉलीअनसैचुरेटेड फैट की मात्रा ज्यादा होती है खासकर लिनोलेइक एसिड की। यह तेल चिपचिपा रहित और बिना महक के होता है। हालांकी यह तेल ऑलिव ऑयल की तरह दिल के लिये उतना फायदेमंद नहीं है। वसा में घुलनशील विटामिन तेल का मुख्य स्रोत है। विटामिन प्रतिरक्षा प्रणाली का समर्थन करता है और उम्र बढ़ने से रोकता है। सूरजमुखी के तेल का एक बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व–विशेष असंतृप्त वसीय अम्लों।

सोयाबीन तेल

यह केंद्रीय तंत्रिका तंत्र और दृश्य तंत्र के

गठन के लिए आवश्यक होता इसमें पॉलीअनसैचुरेटेड फैट होता है। यह सेहत के लिये अच्छा है क्योंकि यह अच्छे और खराब कोलेस्ट्रॉल के बीच में संतुलन बनाता है।

रेपसीड तेल

रेपसीड तेल विशेष रूप से व्यापक रूप से खाद्य उद्योग में इस्तेमाल किया। इसका इस्तेमाल टोटल कोलेस्टरॉल और एलडीएल को कम करता है। सरसों के तेल में ओलिक एसिड और लीनोलिक एसिड पाया जाता है, यह फैटी एसिड होते है जो कि बालों की ग्रोथ बढ़ाने के लिए अच्छी दवा है। यह शरीर की कार्य क्षमता बढ़ा कर शरीर की कमजोरी को एकदम दूर कर देता है।

तिल का तेल

तिल का तेल तनाव से संबंधित लक्षणों को शांत करता है। आयुर्वेदिक दवाओं के निर्माण में तिल के तेल का प्रयोग किया जाता है। तिल के लड्डू भी बनाए जाते हैं जिन्हें खा कर शरीर में ताकत आ जाती है। स्वास्थ्य के लिये काले वाले तिल का तेल अच्छा माना जाता है।

अलसी तेल

इस तेल का मस्तिष्क, रक्त वाहिकाओं, जठरांत्र संबंधी मार्ग और तंत्रिका तंत्र पर एक अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अलसी के तेल में पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड की मात्रा ज्यादा होती है।

ट्राइकोडरमा : उत्पादन, जीवन अवधि एवं प्रयोग

सुनील कुमार[1], बजरंग लाल ओला1, अरबिन्द कुमार वर्मा[1], भगवत सिंह राठौड़[1], पंकज शर्मा[2] एवं धीरज सिंह[2]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, गूंता-बानसूर, अलवर (राज)

[2]भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

ट्राइकोडरमा एक जैव–कवकनाशी है जो कि विभिन्न प्रकार की कवकजनित बीमारियों को रोकने में मदद करता है। इसके प्रयोग से रसायनिक दवाइयों के ऊपर निभरता कम हो जाती है। इसका प्रयोग प्रमुख रुप से रोगकारक जीवों की रोकथाम के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग प्राकृतिक रुप से सुरक्षित माना जाता है क्योंकि इसके प्रयोग का प्रकृति में कोई दुष्प्रभाव देखने को नहीं मिलता है।

मृदा में ट्राइकोडरमा के प्रयोग से लाभकारी सुक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाती है जिससे कि मृदा स्वस्थ्य को भी बनाए रखती है। ट्राइकोडरमा के बडे पैमाने पर उपयोग फसल स्वास्थ्य में वृद्धि करने के लिए या रोग प्रबंधन करने के लिए इस बात पर निर्भर करता है कि ट्राइकोडरमा का उपयुक्त वाहक कौन सा है जो कि अधिक समय तक ट्राइकोडरमा को जीवित रख सकें। इसके साथ ही ट्राइकोडरमा का जीवन अवधि, प्रयोग विधि इत्यादि जानकारी आवश्यक हो जाती है।

ट्राइकोडरमा फार्मूलेशन की विधि

1. **पाउडर आधारित फार्मूलेशन (Talc based formulation) –** तरल माध्यम में उगाये गए ट्राइकोडरमा को टॉल्क पाउडर के साथ 1: 2 अनुपात में मिलाते है। उसके बाद उसे 8% के नमी तक छाया में सुखाते है। इस फॉमूलेशन (सूत्रीकरण) में ट्राइकोडरमा का जीवन 3–4 महीने तक रहता है। इस विधि से भारत में ट्राइकोडरमा का टॉल्क पाउडर फार्मूलेशन सर्वप्रथम तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक जयराजन व उनके सहयोगी ने किया गया था। इसे सामान्यतः 4–5 ग्राम/किलो बीज के हिसाब से बीजोपचार में लेते है जो कि बीज का मिट्टी जनित रोगों से बचाव करता है। एक अनुमान के अनुसार 50% क्षेत्र में उपयोग लेने के लिए करीब 5000 टन ट्राइकोडरमा की जरूरत पड़ती है।

2. **वर्मीक्वीलाईट – गेहूँ का चोकर आधरित फार्मूलेशन (Vermiculite-Wheat bran formulation)) –** ट्राइकोडरमा को सर्वप्रथम गुड़ खमीर (मोलासेस यीस्ट) में 10 दिनों तक वृद्धि करते है। 100 ग्राम वर्मीक्वीलाइट व 33 ग्राम गेहूँ के चोकर को 70 डिग्री सेल्सियस पर 3 दिनों तक ओवन में निष्फल (sterlized) करते हैं। किण्वित ट्राइकोडरमा को 0.05N सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड़ एवं 133 ग्राम वर्मीक्वीलाइट – गेहूँ के चोकर के साथ मिलकर पाउडर मिलाकर छाया में सुखाते हैं (लुईस 1991)।

3. **चूर्ण आधारित फार्मूलेशन (Pestagranules based formulation)) –** 52 मिली लीटर किण्वित ट्राइकोडरमा वायोमास को 100 ग्राम गेहूँ के आटे के साथ अच्छी तरह मिलाते है। इस पेस्ट से 1 मि.मी. मोटी शीट तैयार कर हवा में तब तक सुखते है जब तक कड़ा न हो जाए। उसके बाद इसे पाउडर बनाते हैं। इस पाउडर को 18 मेस आकार की छलनी से छानकर जमा कर लेते हैं (कोनिक एट अल 1991)।

4. **एलजीनेट रिलस आधारित फार्मूलेशन (Alginate prills based formulation) –** 750 मि.ली. आसुतजल में 25 ग्राम सोडियम एवं एलजीमेट को घोलते हैं तथा दूसरी तरफ भोजन आधारित 50 ग्राम ट्राइकोडरमा को 300 मि. ली. पानी में घोलते हैं। ये दोनों घोल को ऑटोक्लेवड करने के बाद ठंडा करते हैं। उसके बाद दोनों को मिलाते हैं। इस मिश्रण को बूंद–बूंद करके कैल्सियम क्लोराइड में मिलाते हैं जिससे कि छोटे–छोटे गोलाकार बीडस् बनते हैं। इस बीडस् को हवा में सुखाकर 5 डिग्री सेल्सियस पर संग्रहीत करते हैं।

5. **प्रेस मड आधारित फार्मूलेशन (Press Mud based formulation) –** प्रेस मड शुगर कारखाने का प्रतिफल होता

है जिसे ट्राइकोडरमा के संवर्धन के लिए उपयोग में लेते हैं। 9 दिन पुराने ट्राइकोडरमा कल्चर को 125 किलो प्रेस मड में अच्छी तरह से मिलाने के बाद इकट्ठा कर जूट की बैग से ढ़क देते हैं। इसमें नमी बनाये रखने के लिए बैग पर पानी का हल्का फव्वारा करते हैं। मदर कल्चर 25 दिन में बनकर तैयार हो जाता है। इस मदर कल्चर को 8 टन प्रेस मड में मिलाकर रखते हैं जो कि 8 दिन के बाद खेत में डालने के लिए तैयार हो जाता है।

6. **कॉफी की भूसी आाधरित फॉर्मूलेशन (Coffee husk based formulation)–** कॉफी की भूसी में ट्राइकोडरमा संवर्धित कर किसान एक व्यवसायिक उत्पाद की छोटी मात्रा से पर्याप्त मात्रा में अपने स्तर पर बनाकर बडे क्षेत्र में प्रयोग कर सकते है। इस तरह तकनीक की खोज सावंत एवं सांवत (1996) वैज्ञानिकों ने मिलकर विकसित की है। इसके द्वारा काली मिर्च में फुट रॉट रोग नियंत्रण के लिए कर्नाटक व केरल के किसान उपयोग में लेते हैं।

7. **तेल आाधरित फॉर्मूलेशन (Oil based formulation) –** ट्राइकोडरमा तेल आधारित सूत्रीकरण करने के लिए हम वनस्पति तेल या खनिज तेल का प्रयोग करते हैं। ट्राइकोडरमा सूक्ष्म जीव को पानी के साथ अमिश्रणीय विलायक (Water immiscible solvent) जैसे डीजल, खनिज तेल, एवं वनस्पतिक तेल (मूँगफली तेल) में घोल बनाते हैं। इसमें एक स्टिकर मिलाते हैं जिससे कि पालसन (Emulsion) में एक सामान स्थायी सतह बनता है।

इस प्रकार से तेल आधारित सूत्रीकृत ट्राइकोडरमा को पर्णीय छिड़काव के लिए उपयोग में लेते हैं।

इसे हम शुष्क मौसम में पर्णीय छिडकाव के लिए उपयुक्त होता है। इसका जीवन अवधि (Shelf life) 8 महीने तक हो सकती है।

यह तेल ट्राइकोडरमा बीजाणु, पौधे, मनुष्य व जानवरों के लिए हानिकारक नही होते हैं।

ट्राइकोडरमा के बीजाणु पत्तों पर लंबे समय तक जीवित रहते हैं।

8. **केले अपशिष्ट आाधरित फॉर्मूलेशन (Banana waste based formulation) –** केले में अपशिष्ट पर आधारित फॉर्मूलेशन ट्राइकोडरमा प्रजाति के बड़े पमैाने पर गुणन का प्रोटोकॉल सबसे पहले बालासुब्रमण्यम एट अल द्वारा 2008 में प्रस्तावित किया था। इसके लिए केले के अपशिष्ट, यूरिया, रॉक फास्फेट, बेसिलस पॉलिमिक्जा, सूडोमोनास एंव ट्राइकोडरमा कल्चर को मिलाते हैं। सबसे पहले केले के अपशिष्ट के 5–8 सेमी. की लंबाई में काट लेते हैं। फिर एक गड्ढ़े में विभिन्न अवयवों को पाँच अलग–अलग परतों में रखते हैं। प्रत्येक परत में एक टन केले के अपशिष्ट पदार्थ, 5 किलो यूरिया, 125 किलो रॉक फॉस्फेट एवं 1 लीटर तरल कल्चर बेसिलस पॉली मिक्जा, सूडोमोनास एंव ट्राइकोडरमा देते हैं। इस तरह से पाँच परत बनाकर अच्छी तरह से मिला देते हैं। केले का अवशिष्ट 45 दिनों के अन्दर विघटित व ट्राइकोडरमा से सवंर्धित हो जाता है और बड़े पैमाने पर खेतों में उपयोग के लिए तैयार हो जाता है।

9. **ट्राइकोडरमा संविर्धित खाद –** इस विधि से किसान एक व्यावसायिक उत्पाद की छोटी मात्रा से पर्याप्त मात्रा में अपने स्तर पर बनाकर बडे क्षेत्र में प्रयोग कर सकते हैं बल्कि अपने ही स्तर पर इसे गुणित कर ज्यादा से ज्यादा फसलों में प्रयोग कर सकते हैं। पर ध्यान रखें कि यह लंबी अवधि के लिए न करें। 100 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद/वर्मीकम्पोस्ट या नीम की खली लें। इसे किसी छायादार जगह में फैलाकर रखें फिर इसके उपर 1 किग्रा. ट्राइकोडरमा कल्चर को भुरक दें और कुदाल या फावड़े से अच्छी तरह मिलाएं। अगर यह सूखी लगे तो हल्के पानी के छीटें दें। इसके बाद इसे पॉलीथीन से ढ़क दें। हर 7 दिन के अंतराल पर मिश्रण को मिलाएं। लगभग 20 दिन में खाद ट्राइकोडर्मा संविर्धत हो जायेगी जिसे खेतों में विस्तारित कर अथवा जोत–गढ्ढ़े में डालकर फसल लगाएं। बागवानी पौधे व सब्जी जैसे–आम, लीची, नींबू, अमरुद, आंवला व बैंगन, टमाटर, लोकी इत्यादि में रिंग बेसिन बनाकर संविर्धत खाद डाली जा सकती है।

विभिन्न सूत्रीकरण (फॉर्मूलेशन) में ट्राइकोडरमा की जीवन अवधि – ट्राइकोडर्मा कल्चर की व्यवसायिक उत्पाद का सफल विपणन करने के लिए तैयार उत्पाद में ट्राइकोडर्मा की जीवन अवधि का एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सामान्यतः जैव कल्चर का सूत्रीकरण कार्बनिक खाद्य पदार्थ पर आधारित का जीवन अवधि ज्यादा होता है, अर्काबनिक खाद्य पदार्थ की तुलना में।

1. कॉफी भूसी में सूत्रीकरण, ट्राइकोडर्मा की जीवन अवधि 18 महीने से ज्यादा होती है।

2. टॉल्क, पीट (Peat), लिग्नाइट, केवोलिन में सूत्रीकरण, ट्राइकोडर्मा की

जीवन अवधि 3–4 महीने होती है।

3. 120 दिनों के बाद ट्राइकोडर्मा के बीजाणु की संख्या आधी हो जाती है।
4. ट्राइकोडर्मा कल्चर को 100 माइक्रोन मोटाई की दूधिया सफेद पॉली प्रोपलीन बैग में पैकेजिंग करने पर अधिक दिनों तक जीवन अवधि होती है।
5. पाउडर आधरित ट्राइकोडर्मा कल्चर में काइटिन और ग्लिसरॉल (Chitin and Glycerol) मिलाने से एंव किण्वन के लॉग चरण के अंत में गर्मी का झटका देने से जीवन अवधि 1 साल तक हो जाती है।

ट्राइकोडरमा कल्चर के प्रयोग विधि –

बीजोपचार – बीजोपचार के लिए प्रति किलो बीज में 5–10 ग्राम ट्राइकोडरमा पाउडर (फार्ममूलेशन) जिसमें 2x10 सी. एफ.यू./ग्राम होता है, को मिश्रित कर छाया में सुखा लेते हैं फिर बुआई करें।

सीड प्राईमिंग – बीज बोने से पहले खास तरह के घोल की बीजों पर परत चढाकर छाया में सुखने की क्रिया को सीड प्राइमिंग कहा जाता है ट्राइकोडरमा से सीड प्राइमिंग करने हेतु सर्वप्रथम गाय के गोबर का गारा (स्लरी) बनायें। प्रति लीटर गारे में 10 ग्राम ट्राइकोडरमा उत्पाद मिलाऐं और इसमें लगभग 1 किग्रा. बीज डुबो कर रखें। इसे बाहर निकालकर छाया में थोडी देर सूखने दें, फिर बुआई करे। यह प्रक्रिया खासकर अनाज दलहन और तिलहन फसलों की बुआई से पहले की जानी चाहिए।

कंद उपचार – 10 ग्राम ट्राइकोडरमा प्रति लीटर पानी में डालकर घोल बनावें फिर इस घोल में कंद को 30 मिनट तक डुबाकर रखें। फिर इसे छाया में आधा घंटे रखने के बाद बुवाई करें।

मृदा शोधन – 1 कि.ग्रा. ट्राइकोडरमा पाउडर को 25 किग्रा. कम्पोस्ट (गोबर की सड़ी खाद) में मिलाकर एक सप्ताह तक छायादार स्थान पर रख कर उसे गीले बोरे से ढ़कें ताकि इसके बीजाणु अंकुरित हो जाऐं। इस कम्पोस्ट को एक एकड़ खेत में फैलाकर मिट्टी में मिला दें, फिर बुआई/रोपाई करें।

नर्सरी उपचार – बुवाई से पहले 5 ग्राम ट्राइकोडरमा उत्पाद/लीटर पानी में घोलकर नर्सरी बेड को भिगोएं।

कलम और अंकुर पौधो की जड़ डुबोऐं – 1 लीटर पानी में 10 ग्राम ट्राइकोडरमा घोल लें और कलम एवं अंकुर पौधों की जड़ों को 10 मिनट के लिए घोल में डुबोकर रखें, फिर रोपाई करें।

पौधा उपचार – प्रति लीटर पानी में 10 ग्राम ट्राइकोडरमा पाउडर का घोल बनाकर पौधों के जड़ क्षेत्र को भिगोंए।

पर्णीय छिडकाव – कुछ तरह के रोगों जैसे पर्ण चिती, झुलसा आदि की रोकथाम के लिए पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देने पर 5–10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें।

ट्राइकोडरमा के इस्तेमाल द्वारा नियंत्रित कुछ रोग –

फसल का नाम	रोग का नाम	रोगजनक का नाम
मिर्च, टमाटर व बैंगन	नर्सरी में पौध गलन/ अंकुर गलन (डैम्पिंग ऑफ)	पिथियम, फाइटोप्थोरा एवं प्यूजेरियिम
हल्दी, अदकर व प्याज	कंद सड़न (राइजोम रॉट)	पिथियम, फाइटोप्थोरा एवं प्यूजेरियिम
केला, कपास, टमाटर व बैंगन	उकठा (विल्ट)	प्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम
चना, मसूर व अरहर	उकठा (विल्ट)	प्यूजेरियम स्पिसीज
जिमीकंद/ओल	मृदा स्तर पर तना गलन/मूल संधि गलन (कॉलर रॉट)	स्क्लैरोशियम रॉल्फसी

ट्राइकोडरमा की संगतता – यह जैविक /कार्बनिग खाद और अन्य बायोफर्टिलाइजर जैसे राइजोबियम एजोस्पिरिलम, पैसिलस सब्टिलिस एंव फॉस्फोबेक्टिरिया के साथ संगत है। ट्राइकोडरमा रासायनिक कवकनाशी मेटालेक्सिल और थाइरम द्वारा उपचारित बीज के साथ प्रयोग किया जा सकता है।

लक्ष्य सूक्ष्मजीव पर विरोधी मारक क्षमता।

उत्पाद में नमी की मात्रा 8% व पी–एच 7 हो।

प्रयोग करने की अंकित तिथि कम से कम 6 महीने से ज्यादा न हो।

मानव और अन्य माइकोबियल द ाकों के संख्या की अधिकतम स्वीकार्य सीमा 2x10 सी.एफ.यू. प्रति ग्राम या मिली लीटर।

ट्राइकोडरमा उत्पाद का रखरखाव – ट्राइकोडरमा एक कवक है, अतः सामान्यतः 3–4 महीने तक इसकी संख्या में विशेष गिरावट नहीं आती है। परन्तु समय बढने के साथ इसकी संख्या प्रति ग्राम कम होने लगती है। इससे इसकी गुणवत्ता पर बहुत असर पड़ता है। इसलिए पैकेट को अधिक दिन तक रखने के लिए 8 –10 डिग्री सेल्सियम तापमान पर संग्रहित करना चाहिए।

ट्राइकोडरमा के प्रयोग के लाभ –

यह रोगकारक जीवों की वृद्वि को रोकता है या उन्हें मारकर पौधों को रोग मुक्त करता है। यह पौधों की रासायनिक प्रक्रियाओं को परिवर्तित कर पौधों में रोगरोधी क्षमता को बढ़ाता है। अतः इसके प्रयोग से रासायनिक दवाओं विशेषकर कवकनाशी पर निर्भरता कम होती है।

यह पौधों में रोगकारकों के विरूद्व तंत्रगत अधिग्रहित प्रतिरोधक क्षमता (सिस्टेमिक एक्वायर्ड रेसिस्टेन्स) की क्रियाविधि को सक्रिय करता है।

यह मृदा में कार्बनिक पदार्थों के अपघटन की दर को बढ़ाता है। अतः यह जैव उर्वरक की तरह काम करता है।

यह पौधो में एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि को बढ़ाता है। टमाटर के पौधों में ऐसा देखा गया कि जहाँ मिट्टी में ट्राइकोर्डर्मा डाला गया, उन पौधों के फलों की पोषक तत्वों की गुणवत्ता खनिज तत्व और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि अधिक पाई गई।

यह पौधो की वृद्धि को बढ़ाता है क्योंकि यह फॉस्फेट एवं अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों को घुलनशील बनाता है। इसके प्रयोग से घास और कई अन्य पौधों में गहरी जडों की संख्या में बढ़ोत्तरी दर्ज की गई जो उन्हें सूखे में भी बढ़ने की क्षमता प्रदान करती है।

ये कीटनाशकों वनस्पतिनाशकों से दूषित मिट्टी के जैविक उपचार (बॉयोरिमेडिएशन) में महत्वपर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें विविध प्रकार के कीटनाशक जैसे ऑरगेनोक्लोरिटन ऑरगेनोफॉस्फेट एंव कार्बोनेट समूह के कीटनाशकों को नष्ट करने की क्षमता होती है।

ट्राइकोडरमा के प्रयोग में सावधानियाँ –

ट्राइकोडरमा कल्चर/फार्मूलेशन को उचित एवं प्रमाणित संस्था अथवा कम्पनी से ही खरीदें।

कल्चर/फार्मूलेशन छः महीने से ज्यादा पुराना न हो।

बीज/पौधे उपचार का कार्य छायादार एंव शुष्क स्थान पर करें।

ट्राइकोडरमा के साथ साथ अन्य कवकनाशी रसायनों का प्रयोग न करें।

ट्राइकोडरमा के प्रयोग के 4–5 दिनों के पश्चात् रासायनिक कवकनाशी का प्रयोग न करें।

सूखी मिट्टी में ट्राइकोडरमा का प्रयोग न करें। नमी इसके विकास और बचे रहने के लिए एक अनिवार्य पहलू है।

ट्राइकोडरमा उपचारित बीज को सूर्य की सीधी धूप न रखें।

कार्बनिक खाद में मिलाने के बाद इसे लंबी अवधि के लिए न रखें।

फसल उत्पादकता एवं मृदा स्वास्थ्य में सूक्ष्मजीवों की भूमिका

रामसिंह, सुबरन सिंह, आकांक्षा शर्मा एवं पंकज शर्मा
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

बढ़ती हुई जनसंख्या की भोजनापूर्ति, भूमि के आकार में कमी, पर्यावरणीय क्षय तथा प्राकृतिक संसाधनों की कमी हम सभी के सामने एक बहुत बडी चुनौती है। विश्व की जनसंख्या में वृद्धि एक विशेष कारण है। क्योंकि इसके लिए वर्ष 2020 तक 28.8 मिलियन टन भोजन की आवश्यकता होगी। जबकि हमारे पास उपलब्ध भोजन केवल 21.6 मिलियन टन होगा। कृषि एवं उद्यानिकी फसलें भोजन, चारा तथा पोषण की आवश्यकता को पूरी करने के लिए मुख्य भूमिका निभाती है। वर्तमान में फसल उत्पादकता मुख्यरूप से कृषि प्रबंधन में असामान्य रसायनिक उर्वरकों तथा कृषि रसायनों के उपयोग पर निर्भर है। इस प्रकार के उपयोग से 30–40 वर्षो में न केवल मृदा की गुणवत्ता एवं स्वास्थ्य में कमी आई है बल्कि मृदा अनुपजाऊ एवं अनुर्वर हो गयी है। फसल उत्पादकता भोजन की गुणवत्ता एवं मात्रात्मकता दोनों में सर्वोपरि भूमिका निभाते हैं। जैविक आदानों में कृषि उपयोगी सूक्ष्म जीव, फसल उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य तथा बदलते जलवायवीय परिस्थितियों में जैविक तथा अजैविक तनाव के प्रबंधन में मुख्य स्थान रखते हैं।

फसल उत्पादकता मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों पर निर्भर करती है। रासायनिक उर्वरकों का उपयोग पादप विकास के लिए मृदा में पोषक तत्वों की आपूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभातें हैं। रसायनिक उर्वरक विदित तत्वों (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, सल्फर तथा जिंक) का बदला हुआ औद्योगिक रूप है। लेकिन उनका अत्यधिक उपयोग मृदा गुणवत्ता में क्षय, प्रदूषित भोजन तथा पर्यावरण का स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव शामिल हैं। इसके अलावा कृषि रसायनिकों की कीमतें छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसानों के लिए निषिद्ध तथा असहनीय है। हाल के ही वर्षो में सतत् पोषक तत्वों युक्त उच्च गुणवत्ता वाले भोजन का उत्पादन जैव सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए किया जा रहा है। इसके लिए जैवीय आधारित स्त्रोतों जैसे जैव उर्वरक, जैव–कीटनाशी तथा अन्य सूक्ष्म जीवीय आदानों द्वारा रसायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशियों के उपयोग में कमी के साथ–साथ मृदा के उपजाऊपन में वृद्धि करने के लिए ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। कृषि उपयोगी सूक्ष्म जीव जो एक प्राकृतिक विविध सूक्ष्म जीवों का संग्रह है जिनका संरोपण मृदा की भौतिकीय एवं रसायनकिय, मृदा सूक्ष्म जैवीय विविधता, मृदा स्वास्थ्य, पादप वृद्धि एवं विकास तथा फसल उत्पादकता के लिए उपयोगी है। इन सूक्ष्मजीवों में पादप वृद्धि समर्थक जीवाणु, नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्म जीव, नीले–हरे शैवाल, माइकोराइजा, पादप रोग में कमी करने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीव, तनाव सहिष्णुता रखने वाले अन्तःपादप तथा जैवीय क्षय करने वाले सूक्ष्म जीव शामिल हैं।

पादप विकास समर्थक सूक्ष्म जीव

पादप विकास समर्थक सूक्ष्म जीव अनेकों विस्तृत तरीकों की क्रियाविधियों से पादप विकास को बढ़ाने में सहायक होते हैं। इन क्रियाविधियों में नत्रजन स्थिरीकरण, अकार्बनिक यौगिकों का विलयीकरण, कार्बनिक यौगिकों का खनिजीकरण, हार्मोन्स का उत्पादन, सूक्ष्म जीव विरोधक उत्पादन, एचसीएन तथा जलीय एंजाइम उत्पादन शामिल हैं। पादप विकास समर्थक सूक्ष्म जीव उनके कार्य के आधार पर जैव उर्वरक, पादप उत्तेजक, जैव कीटनाशी एवं जैवरक्षक जैसे आर्थ्रोबेक्टर, अजोटोबैक्टर, एजोस्पाईरिलम, बैसिलस, इन्ट्रोबेक्टर, स्यूडोमोनास, राइजोबियम, सिरेसिया, एस्परजिलस, पैनीसीलीयम, ट्राइकोडर्मा, मैटाराइजियम, व्यूबेरीया, आरबसकुलर माइकोराइजल कवक में विभाजित किये गये हैं। ये मुख्यरूप से जैव उर्वरक एवं जैवकीटनाशी के रूप में उपयोग में लाये जाते हैं।

जैव उर्वरक

जैव उर्वरक एक और एक से अधिक जीवाणु और कवकों का संग्रहण होता है। जो कि आसानी से मृदा में उपयोगी पोषक

तत्वों के चक्रीयकरण एवं संग्रहण में सहायक होते हैं। जिसके फलस्वरूप फसल उत्पादकता में वृद्धि होती है। जैव उर्वरक मृदा पर्यावरण को विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म एवं दीर्घ पोषक तत्वों जैसे नत्रजन स्थिरीकरण, फॉस्फेट एवं पोटेशियम विलयीकरण एवं खनिजीकरण तथा पादप वृद्धि को प्रभावित करने वाले पदार्थ, जीवाणु प्रतिरोधक उत्पादन तथा कार्बनिक पदार्थो से परिपूर्ण करते हैं। विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरक जैसे नत्रजन स्थिरीकरण, फोस्फेट विलीयकरण सूक्ष्मजीव, जिंक तथा पोटेशियम विलयीकरण जीवाणु फसल उत्पादकता एवं मृदा उर्वरकता को बढ़ाने के लिए प्रतिवेदित किये गये हैं।

नत्रजन स्थिरीकरण सूक्ष्मजीव

सूक्ष्मजीव दो तरीके सहजीवी एवं स्वतंत्र रूप से वातावरणीय नत्रजन का स्थिरीकरण करते हैं। राइजोबियम पादप जड़ ग्रंथि में वातावरणीय नत्रजन स्थिरीकरण के लिए मुख्य रूप से जाने जाते हैं। तथा ये सहजीवी पादप में सम्बंध स्थापित करने के लिए सहयोगी हैं। ये फलीदार फसलों में 50–300 किलोग्राम नत्रजन/हैक्टयेर स्थिर करते है। कुछ पादप उपयुक्त संरोपण जैसे राइजोबियम ट्राइफोलियम बर्सीम के लिए, रा. मैलिलोटाई रिजका के लिए, रा. फिजोलाई मूंग तथा उड़द के लिए, ब्रेडीराइजोबियम जैपोनिकम सोयाबीन के लिए, रा. लैगुमिनोशिरम मटर एवं मसूर के लिए, मिजोराइजोबियम चना के लिए बताये गये हैं। एजोटोबेक्टर स्वतंत्र रूप से वातावरणीय नत्रजन स्थिरीकरण में सहायक है। यह 15–20 किलोग्राम नत्रजन/हैक्टयेर प्रतिवर्ष स्थिर कर सकता है। ये विभिन्न पादप रोगजनकों के विरूद्ध कवक प्रतिरोधी योगिक पैदा करते हैं। ये बढ़ते हुए युवा पौधों का अकुंरण तथा ताकत को बढ़ाता है। इस तरह के सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति कुछ फसलीय पादप जैसे चावल, मक्का, गन्ना, बाजरा, सब्जियों तथा बागवानी फसलों में देखी गई है।

फॉस्फेट खनिजीकरण एवं विलयीकरण सूक्ष्मजीव

अम्लीय एवं चूनेदार मृदा की परिस्थितियों में बहुत अधिक मात्रा में फॉस्फेट स्थिरीकरण होता है। जो पोधे के लिए उपलब्ध नही हो पाता है। स्थिर फॉस्फोरस कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। कार्बनिक फॉस्फोरस कुल स्थिर फॉस्फोरस का 70–80 प्रतिशत भाग होता है। फॉस्फेट विलयीकरण जीवाणु उपलब्ध अघुलित फॉस्फोरस को पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं। फॉस्फेट विलयीकरण जीवाणुओं का विलयीकरण प्रभाव मुख्य रूप से कार्बनिक अम्लों के उत्पादन से होता है। जिसके कारण मृदा की पीएच को कम हो जाती है। जो कि फॉस्फेट के विलयीकरण में सहायक है।

जिंक विलयीकरण सूक्ष्मजीव

जिंक एक आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व है। जो पादप के सम्पूर्ण जीवनकाल में विभिन्न प्रकार के कार्यो में संलग्न होता है। पादप वृद्धि, परिपक्वता तथा उपज ये सभी जिंक के पोषण पर निर्भर करते हैं। इसके अलावा यह सूक्ष्मजीवों में लोहे के बाद दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। जो 100 से ज्यादा एंजाइमों में भूमिका निभाता है। यह पादप के विभिन्न कार्यो जैसे ऑक्सीजन संश्लेषण, हरित लवक की सौर रसायनिक क्रियाविधियाँ, जैवीय झिल्ली की स्थिरता, तथा कार्बोनिक एंजाइम की क्रियाविधि में शामिल रहता है। यह अन्न की गुणवत्ता को न्यूक्लिर अम्ल, वसा, एव प्रोटीन के संश्लेषण से बढ़ाने में सहायक होता है। पादप की जड़ों में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव जैसे सिरेसिया प्रजाति, जिंक को निष्कर्सित करने में मुख्य भूमिका अदा करते हैं। मुख्य रूप से तीन जीवाणु संरूपण जैसे बर्खोल्डिलीया, एक्टीनोबैक्टर स्पी. एसजी 2 तथा एक्टीनोबैक्टर स्पी. एसजी 3 चावल के पौधों की जड़ों में जिंक विलयीकरण के लिए आवश्यक होते हैं।

पोटेशियम विलयीकरण सूक्ष्मजीव

पोटेशियम पादप वृद्धि के लिए एक तीसरा सबसे बड़ा आवश्यक तत्व है। यह विभिन्न प्रकार की उपापचयी क्रियायें जैसे प्रोटीन तथा एंजाइम संश्लेषण एवं प्रकाश संश्लेषण क्रियाविधि में भूमिका निभाता है। यह विभिन्न प्रकार के रोग एवं कीड़ों के विरूद्ध पौधों में प्रतिरोधकता विकसित करने में सहयोगी होता है। पोटेशियम पृथ्वी पर जल में घुलनशील एवं कुछ तत्व जैसे अभ्रक, इलायट एवं ओर्थोक्लेज के रूप में पाया जाता है। पोटेशियम विलयीकरण जीवाणु पोटेशियम को पौधों के लिए उपलब्ध कराने में सहयोग करते हैं। दो पोटेशियम विलयीकरण जीवाणु जैसे केएनपी 413 एव केएनपी 414 चीन की टीयानमू, चोटी से पृथक किये गये हैं। कुछ इस प्रकार के सूक्ष्मजीवों के उदाहरण जैसे म्यूसीलेजीनोसस, अजोटोबैक्टर तथा राइजोबियम प्रजातियां शामिल हैं।

2. जैव कीटनाशी

जैवकीटनाशी पारिस्थितीकी योग्य कृषि में कीटनाशीयों की समस्या के समाधान के उपाय है। ये किसी रोगजनक कीट के लिए उपयुक्त सूक्ष्म जीव है। इनके बहुत चर्चित उदाहरण जैसे जैवकवकनाशी (ट्राइकोडर्मा), जैवखरपतवारनाशी (फाइटोप्थोरा), वेक्यूलो विषाणु, बेसीलस थुरीजैनसीस (बीटी) जीवाणु तथा कीट

भक्षी कवक हैं। एक बहु चर्चित सूक्ष्मजीव कीटनाशाी का उदाहरण बीटी है जो पत्ता गोभी, आलू तथा अन्य फसलों में कीटों के संक्रमण को नियंत्रित करता है। वेक्यूलो विषाणु पादपों को विषाणु जनित रोगों से सुरक्षा देता है। इसका वायु कणीय उपयोग विभिन्न फसलों जैसे कपास, चावल तथा सब्जियों में लेपीडोप्टेरियन कीटों से सुरक्षा प्रदान करता है। ट्राइकोडर्मा मृदा जनित रोग जैसे जड़गलन के विरूद्ध एक उपयुक्त कवकनाशी है। यह प्रमुख रूप से सूखाग्रस्त फसलों जैसे मूंगफली, उडद, मूंग तथा चना में होने वाले रोगो के लिए उपयोग में लाई जाती है।

मृदा स्वास्थ्य में सूक्ष्मजीवों की भूमिका

मृदा पृथ्वी पर एक जीवित भाग है। जो न केवल पर्याप्त अन्न उत्पादित करती है बल्कि सतत् वैश्विक पर्यावरणीय परिस्थितीयों को सुनियोजित करती है। यह पृथ्वी की सतह पर कार्बन की सबसे अधिक मात्रा (2157–2293 पीजी) का प्रतिनिधित्व करती है। ये मृदा कार्बन के सूक्ष्म बदलाव वैश्विक कार्बन संतुलन एवं जलवायुवीय परिवर्तन में सार्थक होते हैं। इसलिए मृदा स्वास्थ्य अध्ययन एवं आंकलन, इसके विभिन्न प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भौतिकीय, रसायनकीय एवं जैविक क्रिया विधियों के प्रति रूझान बढ़ा है। शोधकर्त्ताओं द्वारा मृदा स्वास्थ्य को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है। यह उपयुक्त प्रकार की मृदा की कम से कम पर्यावरणीय प्रभाव द्वारा सतत् कृषि उत्पादकता को लम्बे समय के लिए बनाये रखने की क्षमता है। मृदा स्वास्थ्य पूर्णरूप से मृदा की कार्यशीलता की तस्वीर को दर्शाता है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से नापी नहीं जाती है। यह उपयुक्त मृदीय गुण जैसे कार्बनिक पदार्थ तथा मृदा स्थिति जैसे उपजाऊपन के द्वारा अनुमानित कि जाती है। रसायनिक , भौतिकी एवं जैविक भाग मृदा स्वास्थ्य का संतुलन बनाये रखने में उपयोगी होते हैं। सूक्ष्मजीव मृदा पारिस्थितिकी तंत्र में एक समाकलित अवयव हैं। जो मृदा के जीवन को बढ़ाने में सहायक होते हैं। एक स्वस्थ मृदा अनेकों विभिन्न प्रकार की सूक्ष्मजीवों की आबादी का संकलन होता है। एक ग्राम मृदा में 10^8–10^9 से अधिक जीवाणवीय कोशिकायें, 10^7–10^8 ऐक्टीनोबैक्टर कोशिकायें एवं 10^5–10^6 कवक की विभिन्न प्रकार के प्रजातियाँ होती हैं। ये सूक्ष्मजीव मृदा में स्वास्थ्य, कार्यशीलता, सतत् पर्यावरण के जैविक भाग हैं। जो इस पृथ्वी ग्रह पर पादप एवं जन्तुओं की उत्तरजीविका के लिए आवश्यक हैं। ये विस्तृत रूप से उपस्थिति एवं बाहुल्यता के आधार पर मृदा स्वास्थ्य को लम्बे समय तक अच्छी स्थिति में बनाये रखने के लिए विशेष योगदान देते हैं। सूक्ष्मजीव समुदाय मृदा की जैवविविधता, कार्बन चक्रीकरण, नत्रजन चक्रीकरण, सूक्ष्मजीव क्रियाओं को बनाये रखने में सहयोगी होते हैं। मृदा बायोमास जीवाणु, कवक एवं प्रोटोजोआ का संकलन है। जो ऊर्जा एवं पोषक तत्वों के चक्रीकरण तथा कार्बनिक पदार्थो के परिवर्तन का विनिमयकरण में उपयोगी हैं। मृदा सूक्ष्मजीव बायोमास मुख्य रूप से विघटनीकरण तथा नत्रजन खनिजीकरण से सम्बंध रखता है। मृदा सूक्ष्मजीवों का उपयोग पोषक तत्व प्रारूप एवं पादप वृद्धि तथा उत्पादकता को बढ़ाने में लाभदायक होता है। इसलिए जैव संरूपणों का उपयोग आधुनिक कृषि के कार्य में उत्पादकता बढ़ाने के लिए किया जाना चाहिए।

नैनो जैव प्रौघोगिकी : कृषि अनुसंधान विकास की नई आशा

हरि सिंह मीना, अरूण कुमार, स्वर्णिम कुलश्रेष्ठ एवं अनुभूति शर्मा
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

नैनो तकनीक व्यावहारिक विज्ञान के क्षेत्र में 1 से 100 स्केल में प्रयुक्त और अध्ययन की जाने वाली सभी तकनीकों और सम्बंधित विज्ञान का समूह है। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नैनो टेक्नोलॉजी एक महत्वपूर्ण खोज है। नैनों जैवप्रौद्योगिकी में आणविक जीव विज्ञान व नैनोतकनीक की समस्त सफलताओं का समायोजन शामिल हैं। सभी मेमेलियन, पादप व सूक्ष्मजीबों में जीनोमिक्स के अनुप्रयोगों हेतू नैनोबायोटेक्नोलॉजी का अत्यधिक महत्व है। यह जीनोमिक्स से संबंधित रिसर्च के क्षेत्र में, सूचना प्राप्त करने, नई तकनीकों तथा जैवविज्ञान से संबंधित सूचना व ज्ञानविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रौ जैसे मेडिसिन, कृषि इत्यादि में उपयोग हेतू अति महत्बपूर्ण है। नैनोबायोटेक्नोलॉजी का डी.एन.ए. अनुक्रमण, डी.एन.ए माइक्रोऐरे व अभिव्यक्ति रुपरेखा, प्रोटीन माइक्रोऐरे, परमाणु संसोधित बीज, पादप कोशिकाओ में सिलिका आधारित रुपांतरण, नैनो ईधन व कण खेंती के क्षेत्रों में बहुत महत्व है। नैनोबायोटेक्नोलॉजी व नैनो तकनीक कृषि उत्पादों की गुणवत्ता बनाये रखने व उनकी निश्चित पहचान सुनिशिचित करनें, खाद्य पदार्थो की बर्बादी रोकनें, खाद्य प्रसंसकरण व खाद्य पदार्थो की पेकेजिंग के क्षेत्र में, नैनोपेस्टीसाइड्स, नैनोवेक्सीन, पादप रोगों की पहचान व पादप स्वास्थ्य इत्यादि के क्षेत्र में अपार संभावनाए है।

नैनो जैव प्रोद्यौगिकी (Nanobiotechnology) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी वैज्ञानिक व जीव–भौतिकीवेत्ता (Bio-physicist) लिन डब्ल्यू जेलिंस्की (Lynn W. Jelinski) ने किया। विज्ञान की इस नवीनत्म शाखा में आणविक जीव विज्ञान व नैनोतकनीक की समस्त सफलताओं का समायोजन शामिल हैं। पिछले 4 बिलियन वर्षो में कोशिका मशीनरी व जैविक मॉलेक्यूल्स के क्षेत्र में हुए प्राकृतिक विकास तथा अभियांत्रिकी द्वारा विकसित नैनो संरचनाओ व नैना मशीनो के बारे में जानकारी एवं उनके उपयोग की समझदारी द्वारा आणविक जीव विज्ञानी नैनो विज्ञानियो की भरपूर सहायता कर सकते है। नैनो स्केल पर जीवों की उत्पत्ति के क्षेत्र में वैज्ञानिक काफी समय से कदम बढ़ा चुके हैं जैसे स्टेम सेल रिसर्च व क्लोनिंग इत्यादि। सन् 1968 में भारतीय मूल के अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. हरगोविंद खुराना को कृत्रिम न्यूक्लियोटाइड बनाने तथा उनका उपयोग करके एक नया डी. एन.ए तैयार करने के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। सन् 1976 में केलिफॉर्निया आधारित एक रिसर्च टीम (जेनेनटेक) ने कृत्रिम जीन बनाने की एक मशीन का आविस्कार कर दिया। कृत्रिम जीन व कृत्रिम डी.एन.ए. कृषि तथा मेडिसिन के क्षेत्र में आनुवांशिक अभियांत्रिकी का प्रमुख आधार है। नैनोतकनीक द्वारा जैविक अणुओं व कोशिका प्रक्रियाओ के असाधारण गुणों का फायदा उढ़ाने व सद्पयोग करने तथा ऐसे बहुत से लक्ष्यों जिन्हें किसी अन्य प्रणाली द्वारा पूरा करना मुश्किल या असंभव हैं को पूरा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए नैनो संरचनाओं को बनाने के लिए सिलिकन की मचान (स्केफॉल्डिंग) के स्थान पर डी.एन.ए लेडर की संरचना का उपयोग नैनो विज्ञानियो द्वारा नैनो संरचना बनाने के लिए एक प्राकृतिक फ्रेमवक्र का कार्य कर सकता है। इसके उच्य विशिष्ट बोंडिंग गुण परमाणुओं को नैनो संरचना में एक अनुमानित तरिके से जोड़ने में सहायक होंगी। नैनो विज्ञानी नैनो संरचना बनाने के लिए जैव अणुओं की सेल्फअसेम्बली पर काफी निर्भर हैं जैसे लिपिड जोकि अचानक तरल से क्रिस्टल अवस्था में परिवर्तित हो जाता है।

डी.एन.ए. नैनो संरचनाओं को बनाने के अलावा बहुत सी आवश्यक नैनो मशीनों का भी मुख्य अवयव है। मुख्यतः डी.एन.ए. अणु में सूचना भंडारण की क्षमता का अगली पीढ़ी के कम्प्यूटरों में एक महत्वपूर्ण स्थान होगा। नैनो प्रोसेसर्स, नैनो सक्रिट व सिलिकन चिप में डी.एन.ए का उपयोग महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के डी.एन.ए आधारित "बायोचिपो" की सूचना भंडारण की क्षमता बहुत ही असाधारण है। इसी तरह "डी.एन.ए चिप" को आकड़ों की तेजी

से गणना हेतू उपयोग में लाया जा सकता है। वैज्ञानिको की एक रिसर्च के अनुसार डी.एन.ए के 1000 अणुओं द्वारा 4 महीने में की गई गणना के लिए कम्प्यूटर को उसी समस्या की गणना करने के लिए लगभग एक सदी की जरुरत होंगी। नवीनत्म आविस्कारों व खोजों के इस कृमिक विकास में दूसरे जैवअणुओं का इस्तेमाल भी कुछ समस्याओं के समाधान हेतू किया जा रहा हैं जैसे कुछ वैज्ञानिको द्वारा सीडी से हजारों गुणा अधिक सूचना भंडारण हेतू आँख की रेटिना जैसी रचनाओं के लाइट अब शोशण करने वाले अणुओ का उपयोग करके सूचना भंडारण की क्षमता बढ़ाने की और अंवेषण जारी है।

इस प्रकार से नैनोबायोटेक्नोलॉजी आशा के क्षेत्र में नैनो (माइक्रो) निर्माण व जैव प्रणाली दोंनो के लाभ के लिए एक योजक कड़ी का काम करती है। सभी मेमेलियन, पादप व सूक्ष्मजीबों में जीनोमिक्स के अनुप्रयोगों हेतू नैनोबायोटेक्नोलॉजी का अत्यधिक महत्व है। यह जीनोमिक्स से संबंधित रिसर्च के क्षेत्र में, सूचना प्राप्त करने, नई तकनीको तथा जैवविज्ञान से सम्बन्धित सूचना व ज्ञानविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे मेडिसिन, कृषि इत्यादि में उपयोग हेतू अति महत्वपूर्ण है। नैनोबायोटेक्नोलॉजी का त्वरित प्रभाव निम्नलिखित क्षेत्रों में महसूस किया जा रहा है।

डी.एन.ए. अनुक्रमण (DNA Sequencing)

डी.एन.ए अनुक्रमण एक केन्द्रिय प्रक्रिया होंने के नाते इसमें उच्चतम शुद्धता होना अति आवश्यक है। इस क्षेत्र में अत्यधिक शुद्धता एवं शीघ्रता लानें हेतू नैनोफेब्रीकेटेड जेलफ्री (Gel free) सिस्टम व उच्च थ्रोपुट डी.एन.ए अनुक्रमण विधियों की ओर अनुसंधान कार्य हो रहा है। नैनोजैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान कार्य नैनोआधारित जेलमुक्त प्रणाली द्वारा डी.एन.ए अनुक्रमण की क्षमता तथा इसके द्वारा और अधिक तेजी से डी.एन.ए अनुक्रमण की दिशा में बढ़ रहा है। दूसरे शक्ति शाली दृष्टिकोणों को भी इसके साथ जोडा जा रहा हैं जैसे ऐसोसिएशन आनुवाँशिक विश्लेशण, फसलों के जर्मप्लाज्म के डी.एन.ए अनुक्रमण का डाटा इत्यादि। कृषित फसलों व उनके जंगली संबंधियो के जीन पूल द्वारा फसलों के महत्वपूर्ण आर्थिक गुणों तथा उनकें आणविक माक्रर (Molecular marker) के बारे में बहुत ही उपयोगी जानकारी हासिल की जा सकती है। इस तरह मॉलेक्यूलर माक्रर असिसटेड ब्रीडिंग द्वारा फसल सुधार की प्रगति में तेजी लाने हेतू नैनोबायोटेक्नोलॉजी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

डी.एन.ए माइक्रोऐरे व अभिव्यक्ति रुपरेखा (DNA Micro-arrays and Expression Profiling)

माइक्रोऐरे आधारित संकरण (हाईब्रिडाइजेशन) के तरीको द्वारा एक साथ हजारों जीनो के अभिव्यक्ति स्तर (ऐक्सप्रेशन लेबल) को मापा जा सकता है। इस प्रकार की गणना जीनो के सभी पहलुओं जैसे रेगूलेशन व फंक्सन (कार्य) के बारे में समस्त जानकारी कराती हैं तथा इस प्रकार के प्रयोग जैवविज्ञान अनुसंधान के क्षेत्र में एक केंद्रिय भूमिका निभा रहे है। सिक्यूवेन्स डिटरमिनेशन के नवीन फॉर्मेट का विकास तथा हाईथ्रोपुट युक्त जीनोमिक ऐक्सप्रेशन पैटर्न वर्तमान तकनीकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। हजारों डीएनए व प्रोटीन अणुओं को ग्लास/सिलिका/बीड्स स्लाइड पर ऐरे द्वारा डीएनए व प्रोटीन चिप तैयार की जा रहीं है। नैनो आधारित तकनीक डीएनए, जीन व प्रोटीन संरचना व उनकी कार्य प्रणाली, उनका उपयोग, उत्परिवर्तन इत्यादि के क्षेत्र में काफी प्रगति कर रहीं है।

प्रोटीन माइक्रोऐरे (Protein Micro-array)

प्रोटीन की संरचना व कार्य डीएनए के मुकावले बहुत अधिक जटिल है तथा ये डीएनए से कम स्थिर होती है। प्रत्येक कोशिका के अन्दर हजारों प्रकार की प्रोटीन पाई जाती है तथा उनमें से कुछ प्रोटीन एकदम अलग होती है। प्रोटीन माक्रोऐरे द्वारा ऐसे प्रोटीन वॉयोमाक्ररो की खोंज की जाती हैं जिससे रोगी एवं स्वस्थ कोशिकाओं में पेस्टीसाइड्स की एफीकेसी व टोक्सीसिटी का पता लगाया जा सकें तथा विभिन्न प्रकार की प्रोटीनो का रोगी एवं स्वस्थ दोनों प्रकार की कोशिकाओं में उत्पादन व विकास की संभावना खोजी जा सकें। इस प्रकार के अनुसंधान कार्य से प्रोटीनो की संरचना व कार्य में सम्बंध स्थापित किया जाता हैं तथा प्रोटीन व दूसरे अणुओं के बीच बाइंडिंग इन्टेरेक्शन का मूल्यांकन किया जाता है।

परमाणु संसोधित बीज (Atomically Modified Seeds)

पौधों में आनुवाँशिक परिवर्तन के क्षेत्र में नैनोतकनीक अपनी योग्यता दर्ज करा चुकी हैं तथा निकट भविष्य में फसल सुधार के क्षेत्र में अधिकाधिक सहायक होने की ओर अग्रसर है। दोनों प्रकार के उत्परिवर्तनों (प्राकृतिक व क्रत्रिम) का फसल सुधार में प्राचीन काल से ही बहुत बड़ा योगदान रहा है। पारम्परिक उत्परिवर्तन अनुसंधान में बहुत से रसायनों व किरणों जैसे इ.एम.एस, एम.एम.एस, ऐक्सरे किरणें, गामा किरणें इत्यादि का उपयोग उत्परिवर्तक के रुप में किया जाता हैं, परंतु नैनोतकनीक द्वारा उत्परिवर्तन अनुसंधान के क्षेत्र में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। थाईलेण्ड की एक परमाणु

भौतिक प्रयोगशाला में नैनोतकनीक द्वारा धान की एक स्थानीय बैंगनी रंग के पत्तों, तनें व दानों वाली किस्म को हरे पत्तों व तनें तथा सफेद रंग के दानों में परिवर्तित करने में सफलता हासिल की है। इस अनुसंधान हेतू उन्होंने धान की स्थानीय किस्म के दानों में पार्टिकल वीम द्वारा एक छोटा सा छिद्र बनाया तथा उसमें नाइट्रोजन के परमाणु को प्रवेश करा दिया। इस नाइट्रोजन के परमाणु ने धान के डीएनए को रिएरेंजमेंट के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरुप एक नई किस्म की उत्पत्ति हुई जिसके तनें व पत्तों का रंग हरा तथा दानों का रंग सफेद था जबकि जनक किस्म में तने, पत्ती व दानों का रंग बैंगनी था। परमाणु स्तर पर परिवर्तन द्वारा इस तरह से जो जीव उत्पन्न किये जाते है उन्हें "परमाणु संशोधित जीव" (Atomically modified organisms, AMO's) कहते हैं, तथा बीजों के संदर्भ में इन्हें "परमाणु संसोधित बीज (Atomically Modified Seeds AMO's) के नाम से जाना जाने लगा है। इस प्रकार की नैनोस्तर की तकनीक की तरफ झुकाव व आकर्षण का प्रमुख कारण यह है कि इसमें "आनुवांशिक संशोधित जीव" (Genetically modified organisms, GMO's) की तरह आनुवांशिक संशोधन के विवाद का कोई मुद्धा नहीं हैं तथा इसमें किसी भी तरह की सामाजिक अवधारणाओं के लिए कोई स्थान नहीं है।

पादप कोशिकाओं में सिलिका आधारित रुपांतरण (Transformation)

पादप कोशिका रुपांतरण अनुसंधान के क्षेत्र में फॉरेन आनुवांशिक पदार्थ की डिलिवरी हेतू सिलिका नैनोकणों का उपयोग किया जाने लगा है। नैनोकण बहुत छोटी सी मात्रा में बाहरी आनुवांशिक पदार्थ को कोशिका के अन्दर छोडता है तथा जीनों को उसी कोशिका में अभिव्यक्ति (ऐक्प्रेशन) के लिए नियंत्रित फैशन में प्रेरित करता है। इस तकनीक का विवेचन जॉवा स्टेट यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक फ्राँकोइस टोर्नी ब्रेन शिराओ तथा उनके साथियों द्वारा किया गया।

नैनो ईधन (Nanofuels)

नैनो ईधन की अवधारणा इस तथ्य पर आधारित हैं कि जैविक ईधन जोकि नैनोस्तर पर तैयार किये जा रहे हैं उनके द्वारा अधिक ऊर्जा उत्पन्न होगी तथा रुपांतरण (conversion) के दौरान कम से कम ऊर्जा का व्यय तथा नुकसान होगा। ओंटावा विश्वविद्याालय की लेवेन्स्क प्रयोगशाला में कृषि उत्पादों का मूल्यवांन उत्पादों में नैनो–रुपांतरण की ओर कार्य हो रहा है। वानस्पतिक तेलो का जैविक ईधन व वॉयोडिग्रडेवल सॉलवेंट्स में परिवर्तन के लिए नवीन नैनो उत्प्रेरकों का विकास तथा उनके डिजाइन की वैज्ञानिक जाँच काफी समय से जारी हैं तथा अब इसे नैनो तकनीक क्षमताओं द्वारा और अधिक तेज किया जा रहा है।

कण खेती (Particle farming)

आनुवांशिक अभियांत्रिकी आधारित फसल सुधार में नैनोकणों के उपयोग द्वारा खेती की पद्धति को "कण खेंती" कहते है। पौधों द्वारा कीमती धातुओं के नेंनोकणों को अवशोषित करने तथा उनसें औधोगिक स्तर पर कीमती धातुओं को अलग करने के क्षेत्र में अनुसंधान हो रहा है जैसे रिजका (अल्फाल्फा) की खेती सोंने युक्त कृत्रिम भूमि पर करके उससे औधोगिक स्तर पर सोना प्राप्त करने में सफलता हासिल की है। सोने के नैनोकण पौधौ की जड़ो व सम्पूर्ण पौधे में अबशोशित हो जाते है। इन पौधों को जड़ सहित निकाल कर व कार्बनिक पदार्थो में घोलकर उससें सोना प्राप्त किया जाता है। भारत में पुणे स्थित एनसीएल द्वारा इस प्रकार का रिसर्च कार्य जेरेनियम की पत्तियों को स्वर्ण युक्त पानी के घोल में डुबोकर उनसें सोना प्राप्त करने में सफलता हासिल की है।

उपरोक्त महत्वपूर्ण अनुप्रयोगों के अलावा नैनोबायोटेक्नोलॉजी व नैनो तकनीक कृषि उत्पादों की गुणवत्ता बनाये रखने व उनकी निश्चित पहचान सुनिशिचित करने, खाद्य पदार्थो की बर्बादी रोकने, खाद्य प्रसंसकरण व खाद्य पदार्थो की पेकेजिंग के क्षेत्र में, नैनोपेस्टीसाइड्स, नैनोवेक्सीन, पादप रोगों की पहचान व पादप स्वास्थ्य इत्यादि के क्षेत्र में इनके उपयोग की व्यापक संभावनाए है तथा इन सभी क्षेत्रो में व्यापक अनुसंधान कार्य किये जा रहे है।

जलवायु अनुकूल कृषि में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका

सुप्रिया, सुबरन सिंह, पी.के. राय, वी.वी. सिंह एवं धीरज सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

समय के साथ जलवायु में परिवर्तन होने के कारण अपर्याप्त वर्षा, विभिन्न अजैविक कारकों, संभावित जंगली घास, कीट, बैक्टीरिया और वायरस से होने वाली बीमारियों के प्रभाव की वजह से फसल की उपज में कमी आई है। जैव प्रौद्योगिकी और कृषि के क्षेत्र में उन्नत तकनीकों के इस्तेमाल से जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप पौधों को तैयार किया जा सकता है। इस बदलते परिवेश में कृषि जैव प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना एक महत्वपूर्ण प्रयास है जिससे फसलों की पैदावार में सुधार किया जा सकता है व बदलती हुई जलवायु के कारण फसलों पर होने वाले दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसके अंतर्गत जैव प्रौद्योगिकी आधारित जैव उर्वरक, जीएम फसलों, जो उर्वरक निवेश को कम करने में सहायक है, इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा इसके माध्यम से आधुनिक जीनोमिक्स तकनीकों का प्रयोग करके विभिन्न अजैविक और जैविक कारकों के लिए प्रतिरोधी पौधों को विकसित किया जा सकता है जो उत्पादन में वृद्धि करने व विषम परिस्थितियों का मुकाबला करने में सक्षम हैं।

जलवायु परिवर्तन जलवायु प्रणाली में आने वाला एक महत्वपूर्ण और स्थायी परिवर्तन है जो समय के साथ एक लंबी अवधि के बाद आता है। जलवायु परिवर्तन के पीछे मुख्य कारण मानवीय गतिविधियों या पृथ्वी के प्राकृतिक बलों जैसे सौर विकिरण और महाद्वीपीय बहाव को माना जाता है। जलवायु परिवर्तन से कृषि क्षेत्र पर स्पष्ट और सीधा असर पड़ता है तथा इसके विपरीत जलवायु पर कृषि से संबंधित गतिविधियाँ भी स्पष्ट प्रभाव डालती हैं। कृषि गतिविधियों के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन हुआ है। कृषि, जो कि भारत में दूसरा सबसे बड़ा औद्योगिक क्षेत्र माना जाता है, सीधे तौर पर लगभग 14% वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और परोक्ष रूप से अतिरिक्त 17% उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार है। इसलिए कृषि उत्पादन जलवायु परिवर्तन को बढ़ाने व इसे कम करने के प्रयासों अर्थात दोनों दिशाओं में कार्य करता है।

जलवायु परिवर्तन के मुद्दे के कारण कृषि नवाचार की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ गई है। खाद्य फसलों की दुनिया भर में बढ़ती हुई माँग को दो तरह से परिपूर्ण किया जा सकता है – पहला उत्पादन क्षेत्र को बढ़ाकर और दूसरा मौजूदा कृषि योग्य भूमि पर उत्पादकता में सुधार लाकर। कृषि उत्पादन में वृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अनुसंधान और नई तकनीकों का विकास हमेशा महत्वपूर्ण रहा है। इसी वजह से जैव प्रौद्योगिकी और अन्य उन्नत कृषि पद्धतियाँ जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण और अनुकूलन में एक संभावित भूमिका निभा सकती हैं। आधुनिक जीनोमिक्स की विधियों (आणविक प्रजनन, जेनेटिक इंजीनियरिंग और एकीकृत ब्रीडिंग) का प्रयोग कर जर्मप्लाज्म संग्रह, प्राकृतिक रूप से मौजूद सहिष्णु/प्रतिरोधी फसलों और जंगली प्रजातियों में से नए जीन, एलील या (क्यू टी एल) खोजे जा सकते हैं तथा अंततः इन्हें जैविक/अजैविक कारकों के प्रतिरोधी पौधे और संसोधित फसलों को विकसित करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

औद्योगिक कृषि और जलवायु परिवर्तन

इक्कीसवीं सदी में, जलवायु परिवर्तन आधुनिक दुनिया के समक्ष सबसे गंभीर और व्यापक चुनौतियों में से एक है व पर्यावरण संरक्षण एजेंसी (ईपीए) के अनुसार, यह मुख्य रूप से पृथ्वी के वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों की वृद्धि के कारण होता है। ग्रीनहाउस गैसें वातावरण के घटक (प्राकृतिक और मानवजनित) हैं जो कि स्पेक्ट्रम के भीतर विशिष्ट तरंग दैर्ध्य में विकिरणों को अवशोषित और अवरक्त करती हैं। पृथ्वी के वायुमंडल में प्रमुख ग्रीन हाउस गैसों में जल वाष्प (H_2O), कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O), मीथेन (CH_4), ओजोन (O_3) और हेलो कार्बन शामिल हैं। ग्रीन हाउस गैसों के स्तर में वृद्धि के

साथ वातावरण में इन्फ्रारेड अस्पष्टता बढ़ जाती है जिसके कारण पृथ्वी की क्षोभ मंडल सतह का तापमान बढ़ जाता है और इसी को ग्रीन हाउस प्रभाव कहा जाता है। समाज के आधुनिकीकरण के कारण वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों का स्तर बढ़ गया है जिसके परिणामस्वरूप जलवायु में परिवर्तन हुआ है। वैज्ञानिकों के अनुसार, ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में वृद्धि के कारण 2050 तक वैश्विक तापमान में 2–3 डिग्री सेल्सियस बढ़ोतरी हो सकती है जिसकी वजह से समुद्र का जल स्तर बढ़ेगा और परिणामस्वरूप वनस्पति और पशु प्रवास में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

कृषि दुनिया का सबसे बड़ा उद्योग है व इसके द्वारा मशीनरी और उर्वरक के रूप में औद्योगिक सामग्री का बड़े पैमाने पर उपयोग करने से ही इन ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन होता है जो कि जलवायु परिवर्तन में एक अहम् भूमिका निभाता है। इसलिए कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का परीक्षण करने से वर्तमान औद्योगिक कृषि प्रणाली और जलवायु परिवर्तन पर उसके प्रभाव को समझने की आवश्यकता है। 'औद्योगिक कृषि' के अंतर्गत हरित क्रांति के बाद प्रयोग की जाने वाली कृषि संबंधी तकनीकें आती हैं। 'हरित क्रांति' शब्द कृषि में वैज्ञानिक तकनीकों की शुरूआत की ओर संदर्भित करता है जिसमें विशेष रूप से संकर बीज, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और शाकनाशकों का इस्तेमाल किया गया है। हरित क्रांति ने दुनिया की खाद्य प्रणाली में क्रांति लाते हुए दुनिया में कृषि का परिदृश्य बदल दिया जिसके तहत प्राथमिक पारिस्थितिक प्रक्रिया से ऊपर उठकर तकनीकी विकास के प्रयोग पर बल दिया गया। अतः इस प्रणाली में वर्णीत कृषि और पारिस्थितिकी के बीच संबंध बहुत मजबूत हुये हैं और पारिस्थितिक प्रक्रिया पर किसानों की समझ ने फसलों के सफल उत्पादन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अंततः औद्योगिक क्रांति के उपरांत कृषि प्रणाली जल्द ही पारिस्थितिक तरीकों से हटकर मशीनी खेती की ओर स्थानांतरित हो गई।

इस प्रकार से जलवायु परिवर्तन का कृषि के क्षेत्र में तकनीकी उन्नति के प्रभाव को देखते हुए ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के सभी पहलुओं को सीमित करना जरूरी हो जाता है। जलवायु परिवर्तन में कृषि का पहलू मुख्य रूप से एक तकनीकी समस्या नहीं है, बल्कि राजनीतिक और सामाजिक कारक भी इसे प्रभावित करते हैं। हालांकि, राजनीतिक और सामाजिक सीमाओं के बावजूद मौजूदा कृषि प्रणाली में जैव प्रौद्योगिकी के तत्काल प्रभाव को एक सशक्त माध्यम के रूप में देखा जा सकता है। और इसी वजह से इस तकनीक को जलवायु परिवर्तन पर कृषि के तत्काल प्रभाव को कम करने और ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन की विकराल समस्या के समाधान के लिए सक्षम माना जा रहा है। हालांकि यह व्यवस्था कृषि परिवर्तन व इसकी बढ़ोतरी के लिए एक अच्छा विकल्प है परंतु औद्योगिक कृषि की वर्तमान व्यवस्था जो कि जलवायु परिवर्तन का एक अहम् कारण है, को तुरंत बदलने की आवश्यकता है। इसलिए औद्योगिक क्षेत्रों से बड़े पैमाने पर हुए ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन से तुरंत निपटने के लिए अनेक तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है तथा जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग ऐसा ही एक तत्काल समाधान है।

जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण और फसल अनुरूपण में जैव प्रौद्योगिकी की महत्ता

कृषि जैव प्रौद्योगिकी अनुरूपण तकनीकों व अन्य कृषि विधियों द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने व इससे जुड़ी समस्याओं के समाधान में एक सकारात्मक भूमिका निभाई जा सकती है। जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण मानव हस्तक्षेप स्रोतों को कम करने व जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों की तीव्रता को कम करने की ओर संदर्भित करता है। आम तौर पर जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण वायुमंडलीय ग्रीनहाउस गैसों के स्रोतों व इसके उत्सर्जन को कम करने की दिशा में कार्य करता है। जलवायु परिवर्तन के अनुरूपण के तहत जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के लिए प्राकृतिक और मानवीय प्रणालियों में कमी करके इनके सुधार की ओर ध्यान दिया जाता है।

कृषि के क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों, शाकनाशकों और कीटनाशकों के रूप में रासायनिक सामग्री का उपयोग करना दुनिया भर में एक आम बात है तथा ये विषाक्त पदार्थ जैव–भूगर्भीय रासायनिक चक्र को बदलकर पर्यावरण को वैश्विक स्तर पर प्रदूषित कर रहे हैं। एक तरफ जहाँ रसायनों के उपयोग से फसलों के विकास और पैदावार में तेजी से वृद्धि हो रही है वहीं दूसरी ओर ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से जलवायु परिवर्तन पर तेजी से बढ़ते प्रभाव को स्पष्ट समझ जा सकता है। जैव प्रौद्योगिकी रासायनिक सामग्री के उपयोग को कम करने पर जोर देती है और नई कृषि विधियों को अपनाकर जलवायु परिवर्तन को रोकने का प्रयास करती है।

जैव प्रौद्योगिकी पारंपरिक खेती में इस्तेमाल किए जाने वाले रासायनिक उर्वरकों की मात्रा को कम करने और फलस्वरूप वातावरण में जारी ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा में कमी लाते हुए एक मूल्यवान समाधान प्रदान करती है। यह सब आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के विकास और आनुवंशिक

रूप से संशोधित जीवों (जीएमओ) जैसी नई तकनीक के उपयोग, जिसमें कम उर्वरक इनपुट की आवश्यकता होती है, के द्वारा ही संभव हो पाया है। उदाहरणस्वरूप, आर्केडिया बायोसाइंसेज द्वारा आनुवंशिक रूप से विकसित (जीएम) चावल और कनोला अधिक कुशलता से नाइट्रोजन का उपयोग करते हैं जिसके परिणामस्वरूप उर्वरक की जरूरत घट गई है। यह तकनीक जो कि नाइट्रोजन उपयोग दक्षता (एन यू इ) के रूप में जानी जाती है, किसानों को नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग किए बिना ही परंपरागत कृषि के बराबर पैदावार प्राप्त करने व ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करने में मदद करती है। नाइट्रोजन उर्वरकों का कम प्रयोग जमीन और सतह के पानी में नाइट्रोजन के प्रदूषण को कम करता है।

जीएमओ और अन्य संबंधित तकनीकें जैसे जैविक खेती भी खेत ईंधन के उपयोग को कम करने, CO_2 उत्सर्जन में कमी करने और उर्वरकों, कीटनाशकों और शाकनाशकों के छिड़काव की आवृत्तियों को कम करने में सहायक हैं। इसके अतिरिक्त जैव प्रौद्योगिकी से विकसित जीएम फसलें कम उर्वरक खपत के माध्यम से ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में भी प्रभावी हैं। इसलिए, कृत्रिम उर्वरकों के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए पर्यावरण के अनुकूल जैव प्रौद्योगिकी आधारित उर्वरक (खाद धरण और जानवरों की खाद) के उपयोग पर बल दिया जाना चाहिए। परंपरागत जैव प्रौद्योगिकी विकल्पों के अंतर्गत जैविक खेती की कुछ तकनीकों जैसे भूमि प्रबंधन, फसल चक्र, मिश्रित खेती, फलीदार पौधों के साथ अंतराल सस्य, ज्ञात रासायनिक कीट और रोग नियंत्रण, पारंपरिक और स्वदेशी तरीकों को अपनाया जा सकता है जो कि अच्छी कृषि प्रणालियों में शामिल हैं। इस तरह बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करने में कृषि जैव प्रौद्योगिकी और अन्य उन्नत प्रजनन तकनीकें, सीमित भूमि और जल संसाधनों से ही अधिक पैदावार प्राप्त करने में मदद की जा सकती है।

जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण की कार्यविधियों के अलावा जलवायु परिवर्तन अनुरूपण के विभिन्न तरीकों भी पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है जिससे कि जलवायु पर होने वाले परिवर्तनों को रोका जा सके। जैव प्रौद्योगिकी और कृषि के क्षेत्र में उन्नत तकनीकों के इस्तेमाल से ऐसे पौधे तैयार किये जा सकते हैं जो बदली हुई जलवायु परिस्थितियों के अनुसार विकसित हो सके। खेती के लिए भूमि की सीमित मात्रा तथा लगातार बदलते हुए मौसम को देखते हुए यह विकल्प ही अधिक सुलभ लगता है।

अजैविक कारकों के लिए अनुरूपण

जलवायु परिवर्तन उपलब्ध कृषि भूमि और ताजा पानी के उपयोग के मामले में एक बड़ी समस्या बना हुआ है। अजैविक तनाव जैसे लवणता, सूखा, अत्याधिक तापमान, रासायनिक विषाक्तता और ऑक्सीडेटिव तनाव कृषि और प्राकृतिक पर्यावरण दोनों ही पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। समुद्र का बढ़ा हुआ स्तर पानी की लवणता को बढ़ाकर प्रवास में वृद्धि करता है जिससे जनसंख्या घनत्व बढ़ता है और परिणामस्वरूप कृषि योग्य भूमि सिंचाई के लिए ताजा पानी में गिरावट आती है। यह अनुमान लगाया गया है कि यदि लवणता में वृद्धि इस गति से जारी रही तो अगले 25 सालों में कृषि योग्य भूमि का 30% और वर्ष 2050 तक 50% नुकसान होने की संभावना है।

धरती पर उपलब्ध ताजा पानी का 70% कृषि क्षेत्र में प्रयोग हो रहा है जो जलवायु परिवर्तन के साथ तापमान में वृद्धि होने के कारण और अधिक बढ़ने की संभावना है। बढ़ती हुई कठोर परिस्थितियों की वजह से पौधों को विकसित होने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिससे पौधों द्वारा पानी का उपयोग बढ़ जाता है। यह समस्या बढ़ते समुद्र स्तर के साथ कृषि योग्य भूमि और ताजा पानी के स्रोतों में कमी आने पर और अधिक प्रबल हो जाती है। अतः इस परिस्थिति में ऐसी कृषि की आवश्यकता है जो वास्तविक रूप से पानी और भूमि संरक्षण कर पैदावार को बढ़ा सके ताकि बढ़ती हुई आबादी का भरण–पोषण किया जा सके।

जैव प्रौद्योगिकी को एक सुयोग्य कृषि प्रणाली हेतु उपयोग किया जा सकता है जो कि बड़े पैमाने पर आधुनिक तकनीकों को अपनाकर उत्पादन में वृद्धि कर सके। इस तकनीक द्वारा विभिन्न अजैविक कारकों जैसे सूखा, लवणता आदि के लिए प्रतिरोधी फसलों को विकसित किए जाने की जरूरत है। जबकि परंपरागत तरीके के अंतर्गत इन अजैविक कारकों के प्रभाव को कम करने के लिए चयनित तनाव प्रतिरोधी फसलों को सीमांत भूमि पर विषम परिस्थितियों में विकसित किया जाता है। उदाहरण के लिए कसावा, ज्वार, बाजरा और सूरजमुखी जैसी फसलों को तनाव प्रतिरोधी फसलें तैयार करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। अधिक उपज देने वाली प्रजातियों को तनाव सहिष्णु फसलों के साथ संकरित कर उत्तक संवर्धन तकनीक और पादप प्रजनन द्वारा भी तनाव सहिष्णु उच्च/उपज संकर पैदा किए जाते हैं। हालांकि जैव प्रौद्योगिकी आम तौर पर आणविक प्रजनन या जेनेटिक इंजीनियरिंग दृष्टिकोण पर केंद्रित है, परंतु एकीकृत जैव प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण का उपयोग कर विभिन्न प्रकार के तनावों की वजह से जटिल समस्याओं को समझने की जरूरत है। इस क्रम में फसलों के पूरे जीनोम अनुक्रम की तेजी से उपलब्धता,

शारीरिक नक्शे, आनुवंशिकी और कार्यात्मक जीनोमिक्स, आणविक प्रजनन और जेनेटिक इंजीनियरिंग जैसी विधियाँ एकीकृत दृष्टिकोण द्वारा तनाव प्रतिरोधी फसलों के सुधार एवं विकास के लिए नए अवसर प्रदान करती हैं।

इसलिए अजैविक तनाव के लिए प्रतिरोधी पौधा तैयार करने की प्रक्रिया में पारंपरिक पादप प्रजनन और जर्मप्लाज्म चयन, सहिष्णु और संवेदनशील जीनोटाइप के चयन में नियंत्रण तंत्र की पूरी व्याख्या, प्रजनन प्रक्रियाओं में जैव प्रौद्योगिकी संबंधित सुधार (कार्यात्मक विश्लेषण, मार्कर जांच और परिवर्तन में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट जीन), वर्तमान कृषि पद्धतियों में सुधार व अनुरूपण इत्यादि को शामिल करना चाहिए। अजैविक तनाव सहिष्णुता के लिए तनाव से संबंधित विशिष्ट जीन का सक्रिय होना व इसके नियंत्रण तंत्र का क्रियाशील होना बहुत आवश्यक है।

आनुवंशिक रूप से परिवर्तित पौधे विभिन्न प्रकार के तनाव तंत्रों जैसे उपापचय, नियामक नियंत्रण, आयन परिवहन, एंटीऑक्सिडेंट और विषहरण, भ्रूणीकरण में देरी, ताप प्रभावित प्रोटीन आदि पर आधारित हैं। अधिक उपज देने वाली व अजैविक तनाव सहिष्णुता पर आधारित जीएम फसलें जैसे तंबाकू, एराबिडोप्सिस, ब्रेसिका नेपस, टमाटर, चावल, मक्का, कपास, गेहूं और तिलहन आदि विकसित की जा चुकी हैं। अधिक पैदावार देने वाले पौधों को तैयार करने से कम भूमि से अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है जिससे बढ़ती आबादी और जलवायु से प्रभावित भूमि हानि को रोका जा सकता है। इस संदर्भ में जैव प्रौद्योगिकी विषम परिस्थितियों, कम पानी एवं कम भूमि में अधिक पौधे विकसित करने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य कर रही है।

जैविक कारकों के लिए अनुरूपण

जैविक तनाव के लिए प्रतिरोधी कीड़े, कवक, बैक्टीरिया और वायरस पारंपरिक परिदृश्य प्रबंधन व जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा विकसित किए गए हैं जो फसल अनुरूपण के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। उदाहरणस्वरुप, फसलों को कीटों के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए बेसिलस थूरिनजेनेसिस नामक बैक्टीरिया से बीटी जीन मक्का, कपास और अन्य फसलों में स्थानांतरित किया गया है जिससे कृषि की कीट नियंत्रण योजनाओं को लाभ मिला है। अतः बीटी फसलें नई कीट नियंत्रण योजनाओं के तहत किसानों और समन्वित कीट प्रबंधन कार्यक्रमों के लिए अत्याधिक लाभकारी साबित हुई हैं। उदाहरण के लिए, ट्रांसजेनिक कनोला (तिलहन) और सोयाबीन को संशोधित करके शाकनाशकों के लिए प्रतिरोधी फसल तैयार की गई है। इसके अलावा, जीएम कसावा, आलू, केले और अन्य फसलें जो कि कवक, जीवाणु और वायरस के लिए प्रतिरोधी हैं, का विकास किया गया है जिसमें से कुछ का वाणिज्यीकरण हो गया है व अन्य परीक्षण के दौर से गुजर रही हैं। 2002 और 2005 के बीच किए गए अध्ययन में पाया गया है कि जैविक तनाव प्रतिरोधी जीएम फसलों ने पारंपरिक फसलों की तुलना में कनोला और मक्का की औसत उपज में 11–12% की वृद्धि की है।

इस प्रकार पादप जैव प्रौद्योगिकी CO_2 उत्सर्जन व कार्बन जब्ती में कमी, कम ईधन उपयोग, पर्यावरण के अनुकूल ईधनों का प्रयोग, कृत्रिम उर्वरकों का कम उपयोग, मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए जैव ईधनों का प्रयोग और फसल अनुरूपणता के माध्यम से जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण और अनुकूलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इन प्रक्रियाओं द्वारा एक तरफ जहाँ कृषि उत्पादकता और खाद्य सुरक्षा में सुधार लाया जा सकता है वहीं दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव से हमारे पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है। वैज्ञानिकों का मत है कि जलवायु परिवर्तनशीलता प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मानवीय गतिविधियों का ही एक परिणाम है। अतः पारंपरिक और आधुनिक कृषि जैव प्रौद्योगिकी के एकीकृत दृष्टिकोण से न केवल उपज में वृद्धि कर खाद्य सुरक्षा बढ़ाई जा सकती है बल्कि यह जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन और न्यूनीकरण के लिए एक अहम् योगदान दे सकती है।

फाइटोरिमिडियेशन प्रौघोगिकी : एक अवलोकन

यदुनन्दन सेन, दीपिका शर्मा, लाल सिंह, कुँवर हरेन्द्र सिंह, अजय कुमार ठाकुर एवं महेश कुमार ठाकुर
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

फाइटोरिमिडिएशन तकनीक ने पिछले कुछ वर्षों में खतरनाक एवं विषाक्त प्रदूषकों की एक विस्तृत श्रृंखला के निवारण के लिए वैकल्पिक पारम्परिक निदान तकनीकों की तुलना में एक प्रभावी एवं सस्ती तकनीक के रूप में ध्यान आकर्षित किया है। यह विषैले भारी धातुओं जैसे कि केडमियम, क्रोमियम, निकल, पारा, आर्सेनिक आदि के उन्मूलन के लिए पौधों की अंतर्निहित क्षमता का इस्तेमाल करता है। भारी धातुऐं कार्बनिक प्रदूषकों की तरह सूक्ष्म जीवों द्वारा विघटित नहीं हो सकती हैं। अतः जीवों पर गंभीर विषाक्त प्रभाव डालती हैं व मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव समुदाय की वृद्धि को रोक कर बायोरीमिडिएशन प्रक्रिया को बाधित करती हैं। इसलिए भारी धातुओं का प्रदूषित स्थानों से पादपों द्वारा उन्मूलन एक उचित उपाय है। अब तक हुए शोध के आधार पर यह कहा जा सकता है कि फाइटोरिमिडियेशन के अध्ययन के लिए भारतीय सरसों का सर्वाधिक उपयोग किया गया है। फाइटोरिमिडिएशन में इसका उपयोग खतरनाक दूषित स्थलों से विषाक्त भारी धातुओं को हटाने के लिए किया जाता है क्योंकि इस पादप की कोशिका में भारी धातुओं को उच्च सांन्द्रता में संग्रहित करने की विशिष्ट क्षमता होती है। इसके अलावा प्रभावी फाइटोरिमिडियेशन के लिए जेनेटिक इंजिनियरिंग के उपयोग द्वारा उच्च विकास दर, उच्च जैवभार, धातु अवशोषण क्षमता में सुधार एवं उच्च तनाव सहिष्णुता युक्त पौधों को विकसित करने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है।

तीव्र औद्योगीकरण और बढ़ती हुई वैश्विक जनसंख्या के कारण वातावरण में बढ़ता हुआ खतरनाक और विषाक्त प्रदूषण 21वीं सदी के लिए एक मुख्य चुनौती बन गया है। सभी प्रकार के प्रदूषक मानव स्वास्थ्य एवं प्राकृतिक पर्यावरण को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। अतः पर्यावरण प्रदूषण की व्यापक समस्याओं पर वर्तमान परिदृश्य में स्वच्छ, हरे और सुरक्षित वातावरण के लिए इन विषाक्त और खतरनाक प्रदूषकों के निराविषिकरण पर तत्काल ध्यान देने की आवश्कता है। ऐसी पर्यावरण अनुकूल प्रदूषण निवारण तकनीकों पर गंभीरता से प्रयास किये जाने चाहिए जो कि सस्ती एवं अधिक प्रभावी हों। इस संदर्भ में फाइटोरिमिडिएशन तकनीक ने पिछले कुछ वर्षों में खतरनाक एवं विषाक्त प्रदूषकों की एक विस्तृत श्रृंखला के निवारण के लिए वैकल्पिक पारम्परिक निदान तकनीकों की तुलना में एक प्रभावी एवं सस्ती तकनीक के रूप में ध्यान आकर्षित किया है।

शब्द 'फाइटोरिमिडिएशन' ग्रीक शब्द 'फाइटो' जिसका अर्थ पादप और लैटिन शब्द 'रीमिडियम' से मिलाकर बना है। फाइटोरिमिडिएशन से तात्पर्य पादपों एवं सूक्ष्म जीवों द्वारा मृदा एवं जल में उपस्थित पर्यावरणीय प्रदूषकों को हटाना है। पारम्परिक स्वच्छता तकनीकें जिनमें उच्च–पूँजी निवेश, श्रम व ऊर्जा व्यय की आवश्यकता होती है। उनके लिए फाइटोरिमिडिएशन तुलनात्मक रूप से उपयुक्त विकल्प है। यह विषैले भारी धातुओं जैसे कि केडमियम, क्रोमियम, निकल, पारा, आर्सेनिक आदि के उन्मूलन के लिए पौधों की अंतर्निहित क्षमता का इस्तेमाल करता है। भारी धातुऐं कार्बनिक प्रदूषकों की तरह सूक्ष्म जीवों द्वारा विघटित नहीं हो सकती हैं, अतः जीवों पर गंभीर विषाक्त प्रभाव डालती हैं व मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव समुदाय की वृद्धि को रोक कर बायोरीमिडिएशन प्रक्रिया को बाधित करती हैं। इसलिए भारी धातुओं का प्रदूषित स्थानों से पादपों द्वारा उन्मूलन एक उचित उपाय है।

प्राकृतिक एवं मानवीय गतिविधियां दोनों ही भारी धातू प्रदूषण के प्रमुख स्त्रोत हैं। मानवजनित स्त्रोतों में औद्योगिक अपशिष्ट जल, जीवाश्म ईधन का जलना, खनन गतिविधियाँ, सैन्य अभियान, कृषि रसायनों के उपयोग, लघु उद्योग (बैटरी उत्पादन, धातु उत्पादन, धातु गलन प्रक्रियाऐं), ईट भट्टे व कोयला दहन प्लांट आदि शामिल हैं। पौधे मिट्टी एवं पानी से चुनिंदा पोषक तत्वों और प्रदूषकों को ग्रहण करने के लिए विशिष्ट चयापचय अवशोषण क्षमता के साथ ही उत्कृष्ट संवहन तंत्र से

अनुकूलित होते हैं। फाइटोरिमिडिएशन की सफलता उन पादपों पर निर्भर करती है जो विशेष लक्षण दिखाए बिना अपने वायवीय भागों में (100 से 1000 गुना अधिक मात्रा में) भारी धातुओं को संग्रहित कर सकें, इन्हें "हाइपरएक्युमुलेटर" और इस घटना को "हाईपरएक्युमुलेशन" कहते हैं। फाइटोरिमिडिएशन के लिए आदर्श पादप में लवण की उच्च सान्द्रता को सहन करने की क्षमता, उच्च वृद्धि दर, उच्च जैव भार उत्पादन क्षमता के साथ ही कुशलतापूर्वक भारी धातुओं के अवशोषण एवं उन्हें वायवीय भागों में स्थानांतरित करने की क्षमता होनी चाहिए। फाइटोरिमिडिएशन के लिए पौधों की प्रजातियों का चयन एक प्रमुख और अत्यन्त कठिन कार्य है। हालांकि फाइटोरिमिडिएशन के लिए देशी पादपों की प्रजातियों के उपयोग की सिफारिश की गयी है क्योंकि वे स्थानीय परिस्थितियों के तहत कम प्रतियोगी होती हैं एवं बढ़ी हुई धातु की मात्रा को पर्यावरण के अनुकूल स्तर तक कम करने की क्षमता रखती हैं।

फाइटोरिमिडियेशन प्रौद्योगिकी के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं :

1. **फाइटोएक्सट्रेक्शन :** इसमें प्रदूषक संग्रहण पादपों का उपयोग करते हुए जड़ अवशोषण के द्वारा मृदा से विषाक्त धातुओं को हटाकर पौधों के वायवीय भागों में एकत्र किया जाता है। इस तकनीक में धातु अवशोषित पादप का निपटान एवं पुर्नचक्रण आवश्यक है।

2. **फाइटोडिग्रेडेशन/ट्रांसफोरमेशन :** इसमें पादप ऊतकों से स्त्रावित एजांइमों द्वारा विषैले कार्बनिक और अकार्बनिक विषाक्त धातु प्रदूषकों का कम विषाक्त रूपों में विभक्तिकरण या रूपान्तरण शामिल हैं।

3. **फाइटोस्टीमुलेशन :** राइजोस्फीयर में पादपों द्वारा स्त्रावित एजांइमों द्वारा सूक्ष्मजीवीय अपघटन होता है। ये अपघटित उत्पाद या तो सूक्ष्मजीवों द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं अथवा मृदा में मिला दिये जाते हैं।

4. **फाइटोवोलेटीलाईजेशन :** इसके अर्न्तगत पादप कम मात्रा में विषाक्त धातु प्रदूषकों को ग्रहण कर उन्हें वाष्पोत्सर्जित करते हैं। इस प्रकार जल में घुलनशील प्रदूषक जडों द्वारा अवशोषित किये जाते है। इनमें कुछ संरचनात्मक बदलाव कर पत्तियों में उपस्थित रन्ध्रों द्वारा वातावरण में भेज दिया जाता है।

5. **राइजोफिल्ट्रेशन :** स्थलीय एवं जलीय दोनों प्रकार के पादपों की जड़ों द्वारा प्रदूषकों की कम मात्रा को अवशोषित, संघटित एवं निक्षेपित किया जाता है। इसका उपयोग प्रदूषित सतही जल, अपशिष्ट जल जैसे औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि अपवाह, खदानों का अम्लीय जल निकास या जड़ों पर धातुओं के निक्षेपण में किया जाता है।

6. **फाइटोस्टेबिलाइजेशन :** यह तकनीक मुख्य रूप से मिट्टी, तलछट और कीचड़ आदि स्थानों से प्रदूषण निवारण में उपयोगी है। इसमें विभिन्न प्रदूषण पादप जड़ों द्वारा यथास्थान निष्क्रिय हो जाते हैं। यह प्रदूषकों की गतिशीलता कम करते हुए भू–जल एवं मृदा में इनकी उपलब्धता को कम करता है। जड़ों द्वारा प्रदूषकों के अवशोषण एवं राइजोस्फीयर में इनके निक्षेपण द्वारा यह खाद्य श्रृंखला में इनको मिलने से रोकते हैं।

फाइटोरिमिडिएशन में भारतीय सरसों की भूमिका :

भारतीय सरसों तिलहन वर्गीय फसलों की एक मुख्य फसल है जो कि क्रूसीफेरी कुल के अर्न्तगत आती है। इसका उपयोग खाद्य तेल एवं मसाले के रूप में वैश्विक स्तर पर किया जाता है, इसके साथ ही यह एक हाइपरएक्युमुलेटर पादप भी है। फाइटोरिमिडिएशन में इसका उपयोग खतरनाक दूषित स्थलों से विषाक्त भारी धातुओं को हटाने के लिए किया जाता है क्योंकि इस पादप की कोशिका में भारी धातुओं को उच्च सान्द्रता में संग्रहित करने की विशिष्ट क्षमता होती है।

अब तक हुए शोधों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि फाइटोरिमिडियेशन के अध्ययन के लिए भारतीय सरसों का सर्वाधिक उपयोग किया गया है। शोध में पाया गया है कि इसके तनों में कैडमियम को संग्रहित करने की अत्यधिक क्षमता होती है जो कि इसके शुष्क भार का 1450 माइक्रोग्राम/ग्राम होता है। इसके अलावा भारतीय सरसों दूषित स्थलों से सीसा (लेड) (80 प्रतिशत) और सिलेनियम (13–48 प्रतिशत) को कम करने में भी सक्षम है। यह मृदा से जिंक को एल्पाइन पैनीक्रीस की तुलना में अधिक प्रभावी रूप से हटाता है जो कि जिंक का एक ज्ञात हाइपरएक्युमुलेटर है। कुछ प्रयोगशाला शोधों में राइजोफिल्ट्रेशन तकनीक का उपयोग करते हुए पारे की विभिन्न सान्द्रता (0, 0.05, 0.5, 1, 2.5, 5, 10 मि.ग्रा/लीटर) वाले विलयन में उगाये गये भारतीय सरसों के पादपों की जड़ों में विलयन की प्रारभिंक सान्द्रता की तुलना में 100–270 गुना (शुष्क भार का) पारा अधिक मात्रा में पाया गया जो कि इसके पारे के लिए हाइपरएक्युमुलेटर होने की पुष्टि करता है।

फाइटोरिमिडिएशन की उपयोगिता :

फाइटोरिमिडियेशन सार्वजनिक रूप से स्वीकार्य तकनीक है जिसका उपयोग प्रदूषित स्थलों के निराविषीकरण में किया जा रहा है। यह भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रियाओं वाली वर्तमान तकनीकों की तुलना में कम हानिकारक है। इसके द्वारा भारी धातुओं को अत्यन्त निम्न सान्द्रता

तक कम किया जा सकता है। यह संभवतः सबसे सस्ती एवं स्वच्छ तकनीक है जिसकी लागत पारम्परिक भौतिक रासायनिक तकनीकों की तुलना में 60–80 प्रतिशत तक कम आती है क्योंकि इसमें किसी मंहगे उपकरण या अति विशिष्ट कर्मियों की आवश्यकता नहीं होती है। यह कार्बनिक एवं अकार्बनिक पर्यावरणीय प्रदूषकों सहित विषाक्त धातुओं की एक विस्तृत श्रंखला के निराकरण के लिए उपयोगी है। यह एक पर्यावरण हितैषी पद्यति के रूप में कार्य करती है जिसमें प्रदूषित मृदा से विषाक्त भारी धातुओं को स्व–स्थाने प्रक्रिया के द्वारा हटाया जाता है। स्व–स्थाने प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि पर्यावरण क्षति न्यूनतम हो व सतही संरक्षित रहे।

फाइटोरिमिडियेशन तकनीक जलाये जाने (इनसिनरेशन) तापीय वाष्पीकरण जैसी अधिक रूक्ष निराकरण तकनीकों का एक अधिक उचित विकल्प है, क्योंकि यह मृदा के जैविक घटकों को नष्ट नहीं करती है और उसके भौतिक–रासायनिक गुणों को बनाये रखती है। इसके अलावा यह तकनीक मृदा स्थिरीकरण में सहायक होने के साथ ही जल लीचिंग को कम करती है। पुर्नचक्रित होने वाले उच्च धात्विक पादप अवशेषों का निर्माण करती है। हालांकि इसमें कुछ निम्न कमियां भी पाई गई हैं :

1. प्रदूषक निवारण के लिए काफी लम्बे समय की आवश्यकता।
2. काटा गया पादप जैव भार एक खतरनाक अपशिष्ट के रूप में होता है जिसके उचित निपटान की आवश्यकता होती है।
3. जलवायु परिस्थितियां प्रदूषण निस्तारण पादपों के विकास को सीमित कर देती है।
4. प्रवासी प्रजातियों को उगाने से स्थानीय जैव विविधता पर प्रतिकूल विदेशी प्रभाव पड़ता है।
5. धातू प्रदूषित पादप जैवभार का उपयोग प्रमुख चिंता का विषय है।
6. प्रदूषकों युक्त पादपों को जानवरों द्वारा खाने पर दूषित पदार्थ खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर सकता है।
7. यह केवल उथले संदूषित स्थानों तक ही सीमित है।

फाइटोरिमिडिएशन प्रौद्योगिकी की संभावित कमियों को दूर करने के लिए जेनेटिक इंजिनियरिंग एक उपयुक्त दृष्टिकोण हो सकता है। प्रदूषकों के निवारण के लिए जेनेटिक इंजीनियरिंग तकनीक द्वारा पादपों की दक्षता में सुधार किया जा सकता है। जेनेटिक इंजनियरिंग पादपों को अजैविक घटकों के प्रति प्रतिरोधी बनाने के साथ ही विषाक्त धातुओं की उच्च सान्द्रता से मुकाबला करने की क्षमता विकसित करती है। वर्तमान में अधिकांश अनुसंधान कुछ पादपों के प्रदूषकों को संशोधित करने या उनके निवारण की क्षमता के पीछे की जीनोमिक्स को समझने के लिए किया जा रहा है। धातु प्रदूषक स्थलों से प्रदूषकों के बेहतर निस्तारण के लिए आनुवांशिक रूप से संशोधित पादप को विकसित करने के लिए निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं।

वर्तमान में हुए शोध के अर्न्तगत पादपों को हाईड्रोपोनिक्स परिस्थिति में उगा कर उन्हें भारी धातुओं से पोषित किया जा रहा है। इनके परिणाम काफी उत्साहवर्धक हैं तथा वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि विलयन माध्यम में पोषण मृदा से काफी भिन्न हैं क्योंकि मृदा में अधिकांश धातु अघुलनशील अवस्था में होती है और पादपों को कम उपलब्ध हो पाती है। कई तकनीकी बाधाओं को भी दूर करने की आवश्यकता है। कई नये हाइपरएक्यूमुलेटर पादपों की खोज अभी बाकी है और उनकी पर्यावरण शारीरिकी को भी समझने की आवश्यकता है। इसके अलावा प्रभावी फाइटोरिमिडियेशन के लिए जेनेटिक इंजिनियरिंग के उपयोग द्वारा उच्च विकास दर, उच्च जैवभार, धातु अवशोषण क्षमता में सुधार एवं उच्च तनाव सहिष्णुता युक्त पौधों को विकसित करने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है।

परंपरागत कृषि विधियां अपनाकर करें फसल सुरक्षा

स्वर्णिम कुलश्रेष्ठ, हरि सिंह मीना, अरूण कुमार एवं सतेन्द्र सिंह
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ देश की आधी से भी अधिक आबादी कृषि पर निर्भर है। वर्ष 1960 के दशक में हरित क्रांति के समय से ही उन्नत किस्मों के बीजों, रासायनिक खादों व आधुनिक कृषि तकनीको के साथ ही फसल सुरक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के रसायनों का इस्तेमाल भी शुरू हुआ जो समय के साथ बढ़ता हुआ चला जा रहा है। परंतु अधिक उत्पादन के लालच में कीटनाशकों व रसायनों का अनावश्यक मात्रा में अत्यधिक प्रयोग भूमि व पर्यावरण दोनों को दूषित बना रहा है। इसके दूरगामी हानिकारक परिणामों व रासायनिक कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से बचने हेतु किसानों को फसल सुरक्षा के लिए परंपरागत कृषि के वैकल्पिक तरीकों को अपनाने पर अधिक जोर देने की आवश्यकता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ देश की आधी से भी अधिक आबादी कृषि पर निर्भर है। देश के कुल 329 मिलियन हैक्टेयर भौगोलिक क्षेत्रफल में से लगभग 141 मिलियन हेक्टेयर शुद्ध बुवाई क्षेत्र है एवं 138.7 प्रतिशत फसल सघनता के साथ करीब 195 मिलियन हेक्टेयर सकल बुवाई क्षेत्र है। वर्ष 1960 के दशक के दौरान भारत में हरित क्रांति का आगाज हुआ, जिसके फलस्वरूप हम खाद्यान्नों के मामलों में आत्मनिर्भर वन पाये व कृषक वर्ग की आय में भी आशापूर्ण वृद्धि हुई। उस वक्त देश में हरित क्रांति का मुख्य उद्देश्य भारत को खाद्यान्नों के मामलों में आत्मनिर्भर बनाना था। अतः उन्नत किस्मों के बीजों, रासायनिक खादों व वैज्ञानिक तकनिको के साथ ही फसल सुरक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के रसायनों का इस्तेमाल भी शुरू हुआ। परंतु इस बात की आंशका किसी को भी नहीं थी कि कीटनाशकों का अंधाधुंध इस्तेमाल किया जायेगा जो न केवल फसलों व कृषि भूमि पर विपरीत असर डालेगा, बल्कि पर्यावरण को भी भारी क्षति पहुंचाएगा। वर्तमान में देश के ज्यादतर कृषक परंपरागत कृषि से विमुख होते जा रहे है एवं अधिक उत्पादन के लालच में विभिन्न प्रकार के कीटनाशक रसायनों के अत्यधिक व अनावश्यक मात्रा में प्रयोग कर भूमि को दूषित बना रहे है। इसके दूरगामी हानिकारक परिणामों को देखते हुए सरकार ने किसानों के हित में परंपरागत कृषि की तरफ लौटने हेतु परंपरागत कृषि विकास योजना का शुभारंभ किया है।

कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से बचने पारंपरिक उपाय

रासायनिक कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से बचने के लिए किसान फसल सुरक्षा हेतु निम्नलिखित तरीके अपनाकर कीटनाशकों के उपयोग से बच सकते है।

पक्षियों से कीट नियंत्रण : मित्र पक्षियों जैसें मैना, किंग–क्रो, बटेर, बगुले आदि को आकर्षित करने के लिए खेत की मेड़ों पर लकडी की खप्पचियाँ लगाएं। जिस पर बैठकर पक्षी आकर्षित होकर फसलों में लगे कीड़ों एवं लटों को चुन–चुन कर खा जाते हैं। इस तरह अनेक प्रकार के हानिकारक कीटों की संख्या में काफी कमी लाई जा सकती है।

परभक्षी एवं परजीवी कीटों द्वारा कीट नियंत्रण : किसान लाभदायक मित्र कीट एवं जीवों का संरक्षण कर व इनको प्रोत्साहन देकर तथा इनके लार्वा का खेत में प्रयोग करके हानिकारक कीटों का बिना किसी कीटनाशकों के नियंत्रण किया जा सकता है। इनमें मेन्टिस, लेडी बर्ड बीटल, कोटेसिया, क्राइसोपरला, ट्राईकोरामा कीट, मकड़ी झींगुर, चींटियां, ततैया, रोवर–फ्लाई, रिडूविड, मड–वेस्प, ड्रेगन–फ्लाई, एवं सिरफिड–फ्लाई आदि शामिल है।

नीम का दवाई के रूप में प्रयोग : नीम के सभी भागों में कीटनाशी तत्व पाये जाते है। 5 किलों नीम की निबोली को अच्छी तरह सुखाकर बारीक कूट ले और 5 लीटर पानी में इस पाउडर को 12 घंटे तक भिगों दें। इस घोल को मोटे कपड़े से छान लें। इस घोल में 100 लीटर पानी प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। इनका प्रयोग अनेक फसलों को हानि पहुँचाने वाले माहू,

सफेद मक्खी, फुदका, कटुआ सुंडी तथा फल छेदक सुंडी पर प्रभावी होता है।

अरण्डी व नीम से दीमक का नियत्रंण : अरण्डी की खली व नीम के तेल में कीटनाशक गुण पाये जाते है। अतः फसल बुबाई के एक माह पूर्व अरंडी की खली 500 किलों प्रति हैक्टेयर का उपयोग कर या नीम का तेल 4 लीटर सिंचाई के पानी के साथ देकर दीमक को नष्ट किया जा सकता हैं।

ट्राईकोग्रामा कीट : यह बहुत छोटा अंड परजीवी कीट है जो तितलियों व कीट पतंगों के अंडों को नुकसान पहुचाता है। ट्राईकोग्रामा परजीवी प्रकृति में पाये जाने वाले लगभग 200 प्रकार के कीट पतंगों के अंडों को नष्ट कर देता है। ये एक बहुत ही प्रभावी जैविक नियंत्रण है क्योंकि यह फसल को नुकसान पहुचाँये जाने से पहले ही हानिकारक कीटों को नष्ट कर देता है तथा यह कीट फसलों को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुचाता है। ट्राईकोग्रामा के 5,000 कीटों को 5000 वर्ग फिट में प्रत्येक सप्ताह या एक सप्ताह के अन्तराल पर 3 से 6 सप्ताह तक छोड़ने पर कई प्रकार के हानिकारक कीटों पर नियत्रंण पाया जा सकता है।

फेरोमोन ट्रेप : खेत में 8 से 10 फेरोमोन ट्रेप एक–डेढ़ फीट ऊपर लगाएं। ये ट्रेप नर–मादा अथवा दोनों को अपनी तरफ आकर्षित करते है जहॉ पर उपयुक्त विधि अपनाकर उन्हे नष्ट किया जा सकता है।

लाइट ट्रेप/प्रकाश पाश : कीटों को प्रकाश की ओर आकर्शित करने के लिए खेत की मेड़ों पर प्रकाश पाश या बल्ब अथवा पैट्रोमैक्स लैंप लगाकर जलाएं। उसके नीचे केरोसिन मिले 5 प्रतिशत पानी की परात रखें, ताकि रोशनी पर आकर्षित कीट मिट्टी के तेल मिले पानी में गिरकर नष्ट हो जाएं। इसे बारिश के मौसम में सितम्बर अंत तक जारी रखें।

ट्रेप फसल या रक्षक फसल : कीड़े अंडे देने व खाने के लिए कुछ पौधे/फसल (हजारा आदि) की तरफ आकर्षित होते हैं। इन्हीं फसल/पौधों को ट्रेप फसल कहते है। टमाटर की फसल के चारों तरफ हजारा के पौधे लगाने से हरी सुंडी पहले पहले हजारे के पौधों पर दिखाई देती है। तुरंत हजारे पर कीटनाशक का छिड़काव कर हरी सुंडी को खत्म करें। खेत में सरसों की बुबाई के एक–दो सप्ताह पहले किसी एक कोने में कुछ सरसों उगालें, इससे आकर्षित होकर पेन्टेड बग या बगराडा (चितकबरा कीट) सबसे पहले इसी स्थान पर बहुतायत संख्या में जमा होने लगते है जहॉ कीटनाशक का छिड़काव कर उसे आसानी से नष्ट किया जा सकता है।

एनपीवी छिड़काव : हरी सुंडी (लट) के नियंत्रण के लिए एक हैक्टेयर में 250 एल.ई.एन.पी.वी (न्यूक्लियर पॉली हैड्रोसिस वायरस) का घोल छिड़कने से लटें 3–4 दिन में पौधों पर उल्टी लटक कर मर जाती है। किसान ऐसी लटो को इकठ्ठा करके खुद एनपीवी तैयार कर सकता है।

बीटी छिड़काव : तरल बीटी बेसीलस थूरिन्जेन्सिस 'एक लीटर को 500–600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर छिड़काव करने से फली छेदक लटें 1–3 दिन में मरने लग जाती है।

ट्राईकोडर्मा : ट्राईकोडर्मा कल्चर 6 से 10 ग्राम प्रति किलो बीज को उपचारित कर बोने से कवक जनित रोगों से फसलों को बचाया जा सकता है। सरसों में मृदाजनित रोगों की रोकथाम के लिए बीज को ट्राईकोडर्मा नामक फफूँद से 6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

कृषि एवं कषक कल्याण योजनाएँ

नीरज गुर्जर एवं पी.के. राय
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारत जैसे कृषि प्रधान और जनसंख्या बहुल्य राष्ट्र में उचित कृषि प्रबंधन और कृषि क्षेत्र में विकास का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। किंतु नीति की अव्यावहारिकता, मृदा उवर्रता, कीट रोग और प्राकृतिक आपदाओं के कारण भारतीय कृषि अनेक समस्याओं से ग्रसित है, इसलिए सरकार का दायित्व है कि संगठनों, कार्यक्रमों और योजनाओं को कृषि क्षेत्र से जोड़ा जाएँ और कृषि क्षेत्र की अनिश्चिताओं का हल करने के लिए किसानों को महत्वपूर्ण परामर्श एवं सुझाव दिये जाएँ। जिससे देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत अधार मिलें।

भारतीय अर्थव्यवस्था को कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था कहा जाता है क्योंकि भारत की लगभग 71 प्रतिशत जनसंख्या कृषि आधारित उद्योगों से अपना जीवन यापन करती है। कृषि प्रधान होने के कारण भारत सरकार ने समय–समय पर कृषि के विकास के लिए अनेक योजनाओं को शुरू किया जैसे– गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (1964–65), हरित क्रांति (1966–67), सूखा प्रवण क्षेत्र कर्यक्रम (1993) आदि।

जिसमें हरित क्रांति (1966–67) किसानों की फसल के लिए सबसे बड़ी योजना थी। जिसने कृषि के क्षेत्र में नई क्रांति को जन्म दिया और भारत में गिरती हुई कृषि की अवस्था में सुधार किया। लेकिन इन सभी योजनाओं के प्रयास के बाद भी कृषि क्षेत्र की अनिश्चिताओं का हल नहीं हुआ, जिससे आज भी किसान अपनी फसल को लेकर परेशान है। सरकार ने प्रत्येक क्षेत्र में विकास के लिए इस बार अनेक कार्य किये हैं। जिसमें किसानों की समस्याओं और कृषि की अनिश्चिताओं को दूर करने के लिए भी कई योजनाएँ शुरू की है।

1. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना :

13 जनवरी, 2016 लोहड़ी (किसानों का त्योहार) के शुभ अवसर पर शुरू की गई प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसानों की फसल को प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुई हानि को किसानों के प्रीमियम का भुगतान देकर कम कराने की योजना है। इसमें बीमा की किस्तों को बहुत नीचा रखा गया हैं। जिससे प्रत्येक स्तर का किसान आसानी से भुगतान कर सके।

प्रमुख तथ्य:

प्राकृतिक आपदा से फसल को नुकसान होने पर बीमा के लिए वसूल किये जाने वाला प्रीमियम कम होगा। इस योजना के अन्तर्गत सभी प्रकार की फसलों को शामिल किया गया है।

खरीफ (धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, गन्ना आदि) की फसलों के लिए 2% प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा।

रबी (गेहूँ, जौ, चना, सरसों, मसूर आदि) की फसल के लिए 1.5% प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा।

वार्षिक वाणिज्यिक फसलों और बागवानी फसलों के लिए 5% प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा।

तिलहन फसलों पर 1.5% प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा।

सरकारी सब्सिडी पर कोई ऊपरी सीमा नहीं है। यदि बचा हुआ प्रीमियम 90% होता है तो सरकार द्वारा वहन किया जायेगा।

इस योजना में 8% केन्द्र और 8% राज्य सरकार द्वारा अनुदान दिया जायेगा। जबकि 2% राशि प्रीमियम के तौर पर किसान द्वारा जमा की जायेगी।

इस योजना से फसलों का उत्पादन गिरने या बाजार में उपज की दर कम होने पर भी किसान को न्यूनतम आय प्राप्त हो सकेगी।

इस योजना के तहत जब कोई किसान प्राकृतिक आपदा के कारण अपनी फसल को खो देता है। तब 25% भुगतान तत्काल किसान को दिया जायेगा।

बचा हुआ नुकसान स्थिति के अवलोकन के बाद दिया जायेगा।

नुकसान का आंकलन सरल टेक्नोलॉजी जैसे मोबाइल का उपयोग कर साथ–साथ रिमोट सेंसिग तकनीकि और ड्रोन से इमेज लेकर किया जायेगा। ताकि निश्चित समय सीमा में पूरे दावे को भुगतान किया जायेगा।

इस बीमा में कीट रोग, सूखा, बाढ़, जलभराव और फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान जैसी आपदाओं को सम्मलित किया गया है।

इस योजना के तहत कोई भी किसान बीमा करवा सकता है। यहाँ तक की बटाई अथवा खोट से खेती करने वाला किसान भी इस योजना के तहत अपनी फसल का बीमा करा सकता है।

पहले शुरू की गई बीमा योजनाओं में बहुत अधिक प्रीमियम भरना पड़ता था इस योजना के अर्न्तगत 25 से 50% की प्रीमियम में किसानों को राहत दी गई हैं।

बीमा योजना को मात्र एक कंपनी भारतीय कृषि बीमा कंपनी द्वारा नियंत्रित किया जायेगा।

बीमा भुगतान बैंक में न होकर सीधे किसानो के खाते में होगा।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, 'एक राट्र एक योजना' विषय पर आधारित है। ये पुरानी योजनाओं की सभी अच्छाईयों को धारण करते हुए उन योजनाओं की कमियों और बुराइयों की दूर करता है।

यह योजना पूरे देश के किसानों को लाभान्वित करेगी।

2. प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना :

विगत कई दशकों के प्रयास के बावजूद कृषि योग्य भूमि का अधिकांश भाग वर्षा पर आधारित है। 2014–15 में खराब मौसम के कारण खाद्यान्न उत्पादन में 5.3% की कमी हुई और कृषि विकास दर में 0.2% की कमी आई। जिससे कृषि संकट की स्थिति पैदा हो गयी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य फसल की उत्पादकता में सुधार और जल संसाधन के सही तरीके से उपयोग से है। हमारे देश में 14.2 करोड़ हेक्टैयर कृषि योग्य भूमि है जिसमें से 65% में सिंचाई सुविधा उपलब्ध नहीं है। इस लिहाज से इस योजना का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है।

प्रमुख तथ्य :

वर्षा के अभाव के कारण किसानों को विषम परिस्थियितों का सामना करना पड़ रहा है। इसी समस्या को ध्यान में रखकर प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना की शुरूआत की गई।

इस योजना का उद्देश्य देश के हर खेत में किसी न किसी माध्यम से सिंचाई सुविधा सुनिश्चित करना है। ताकि हर बूंद अधिक फसल ली जा सके।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य उपजिला/जिला तथा राज्य स्तरपर सिंचाई योजना तैयार कर खेतों तक जल पहुँचना है, तथा कृषि योग्य भूमि का विस्तार करना है।

सुनिश्चित सिंचाई का प्रबंधन, जलाशय पुर्नभरण, सतत जल संरक्षण प्रणाली जैसे छोटे–छोटे तालाब, छोटे बाँध तथा सामान्य मेढ़ निर्माण अर्थात पानी के बहाब को संभालकर उपयोग करना।

जल उपलब्धि के अनुसार फसलों को चयन करना।

आधुनिक सिंचाई प्रणाली, ड्रिप एवं स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई।

इस योजना में 75% केन्द्र और 25% राज्य सरकार अनुदान देगी। पूर्वोत्तर क्षेत्र और पर्वतीय क्षेत्र में केन्द्र का अनुदान 90% तक होगा।

मानसून पर खेती की निर्भरता कम करने के उद्देश्य से सरकार ने हर खेत को पानी पहुँचाने के लिए इस योजना को स्वीकृति दी गई।

3. मृदा स्वस्थ्य कार्ड योजना :

कृषि सीधे तौर पर मिट्टी से जुड़ी हुई है। यदि मिट्टी स्वस्थ्य तो किसान स्वस्थ्य। इसी सोच पर बनाया गया है मृदा स्वास्थ्य कार्ड। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के जरिये किसानों को खेतों के लिए आवश्यक पोषक तत्व और उर्वरकों की मात्रा की उचित सलाह फसल के अनुसार दी जाती है।

प्रमुख तथ्य :

इस योजना में खेत की मिट्टी में पौधों के संतुलित वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्राओं का रासायनिक परीक्षणों द्वारा आंकलन करना। इस योजना के तहत किसान अपने खेत की जमीन की मिट्टी की परीक्षण करा सकेगे तथा परीक्षण के बाद यह मृदा स्वास्थ्य कार्ड दिया जायेगा।

मृदा की लवणीयता, क्षारीयता एवं अम्लीयता की पहचान कर मृदा सुधारकों की मात्रा व प्रकार की सिफारिश कर जमीनों को कृषि योग्य बनाने हेतु किसानों को महत्वपूर्ण परामर्श एवं सुझाव देना।

किसान आमतौर पर सल्फर, जिंक और बोरॉन जैसे पोषक तत्वों की कमी से जूझते है। क्योंकि इनकी कमी से खाद्य उत्पादकता घटती है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना इन सभी समस्याओं का समाधान करेगा।

मिट्टी में पोषक तत्वों के स्तर की जाँच करके फसल एवं किस्म के अनुसार तत्वों की संतुलित मात्रा को निर्धारण कर खेत में खाद एवं उर्वरकों की मात्रा की सिफारिश करना।

मृदा कार्ड की मदद से संपूर्ण खेती प्रक्रिया की लागत में कमी आयेगी। किसान कम पैसा लगाकर ज्यादा अनाज प्राप्त कर सकेंगा। जिससे किसानों को वित्तीय लाभ मिलेगा।

4. मेरा गाँव मेरा गौरव (वैज्ञानिक कृषि सम्पर्क की अनूठी पहल)

किसानों तक वैज्ञानिक अनुसंधानों की सीधी पहुँच के लिए मेरा गाँव मेरा गौरव नामक योजना तैयार की गई है। जिससे प्रयोगशाला से खेत प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए किसानों के साथ वैज्ञानिकों के सम्पर्क को बढ़ाया जा सके। इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक वैज्ञानिक द्वारा एक गाँव की पहचान कर किसानों को नियमित रूप से सूचना, ज्ञान परामर्श सुविधा प्रदान कर प्रोत्साहित करना है।

प्रमुख तथ्य :

प्रत्येक विश्वविद्यालय/संस्थान स्तर पर भिन्न विषयों के चार वैज्ञानिकों के समूह बनाये गये हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक समूह द्वारा पाँच–पॉच गांव अंगीकृत या गोद लिये गये है। जिससे किसानों से सीधे संवाद हो सके।

वैज्ञानिक समूह द्वारा अपने नियुक्ति स्थल के 50 से 100 किलोमीटर के दायरे में स्थित गांव का चयन कर तकनीकि प्रसार करना हैं।

किसानों को कृषि निवेश, ऋण, बीज, उर्वरक, रसायन, कृषि यंत्र, कृषि जलवायु, बाजार आदि से सबंधित जानकारियाँ उपलब्ध कराना।

राष्ट्रीय संवेदनशील महत्व विषय जैस–स्वच्छ भारत अभियान, जलवायु परिवर्तन, जलसंरक्षण, मृदा उवर्रता आदि विषयों पर किसानों को समय–समय पर जागरूक करना।

स्थनीय स्तर पर किसानों के लिए कार्यरत संगठनों एवं संस्थाओं जैसे स्वंयसेवी संस्थाओं, कृषक संगठन, आत्मा और अन्य सरकारी विभागों व उनके कार्यक्रमों के बारे में किसानों को अवगत कराना।

कृषि वैज्ञानिकों द्वारा समाचार पत्रों, सामुदायिक रेडियों आदि के माध्यम से क्षेत्र विशेष में किसानों को जागरूक करना।

किसानों को सामायिक रूप से फोन एवं मोबाइल संदेश द्वारा कृषि क्रियाओं की जानकारी पहुँचाना।

गाँव से सम्बंधी तकनीकि, सामायिक व आर्थिक आंकड़े सृजित करना व किये गये कार्यो की तिमाही रिपोर्ट प्रस्तुत करना।

5. राष्ट्रीय कृषि विकास योजना :

कृषि एवं संबेद्ध क्षेत्रों के आर्थिक समग्र एवं समेकित विकास को सुनिश्चित करने के लिए एवं गहन कृषि विकास के लिए इस योजना की शुरूआत की गई। इस योजना का उद्देश्य कृषि एवं संबंद्ध क्षेत्रों में किसानों को अधिकतम लाभ प्रदान करना है।

प्रमुख तथ्य :

राज्यों को प्रोत्साहित करना ताकि कृषि एवं संबंद्ध क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश को बढ़ाया जा सके।

कृषि जलवायु स्थितियाँ, प्रौद्योगिकी एवं प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर एवं राज्यों हेतु कार्य को सुनिश्चित करना।

इसके साथ–साथ गहरे ट्यूब बेल, ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई, डग बेल आदि पर भी सरकार द्वारा व्यय किया जायेगा।

इस योजना के माध्यम से महत्वपूर्ण फसलों में उपज अंतर को कम करने का लक्ष्य है।

इस योजना में संबंध क्षेत्र जैसे बागवानी, पशुपालन, मत्स्यकीय, डेयरी विकास, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा, वानिकी, कृषि विपणन, खाद्य भंडारण, मृदा एवंज ल संरक्षण आदि अन्य समस्यां का दायित्व लिया गया है।

भारत में जलवायु अनुरूप कृषि अनुसंधान की चुनौतियाँ एवं संभावनाऐं

यदुनन्दन सेन[1], दीपिका शर्मा[1], लाल सिंह[1], कुँवर हरेन्द्र सिंह[1], अजय ठाकुर[1], जोगी नन्जुन्दन[2] एवं महेश कुमार[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

[2]भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान-क्षेत्रीय केन्द्र, वैलिंगटन (तमिलनाडु)

जलवायु अनुरूप कृषि (सीआरए) से तात्पर्य अनुकूलन, शमन एवं अन्य कृषिगत पद्धतियों के द्वारा विभिन्न जलवायु परिवर्तन संबधी आपदाओं से बचाव की क्षमता विकसित करना है। इन आपदाओं में सूखा, बाढ़, गर्मी, शीत लहर, कीट प्रकोप व अन्य जलवायु परिवर्तनों से होने वाले खतरे शामिल हैं। अनुकूलित उपायों के रूप में वैकल्पिक कृषि पद्धतियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। एनआइसीआरए, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा फरवरी, 2011 में शुरू की गयी एक देशव्यापी परियोजना है। परियोजना का उद्देश्य दीर्घकालीन अनुसंधान के द्वारा भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के अध्ययन के साथ ही वर्तमान जलवायु परिवर्तनशीलता से किसानों के बचाव के लिए विद्यमान श्रेष्ठ कृषिगत प्रथाओं का प्रदर्शन करना भी है। जलवायु अनुरूप कृषि (सीआरए) में निवेश को बढ़ाने हेतु सार्वजनिक और निजी धन को आकर्षित करने के लिए अनुकूल माहौल बनाने की आवश्यकता है। व्यावसायिक जिम्मेदारियों के तहत देश के अग्रणी निजी व्यावसायिक घरानों को अति संवेदनशील क्षेत्रों में जलवायु अनुरूप कृषि को बढ़ावा देने के लिए निवेश करना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन भारतीय कृषि क्षेत्र में प्रमुख चुनौती बनकर उभर रहा है। मौसम चक्रों का दीर्घकालीन परिवर्तन ही जलवायु परिवर्तन का कारण है जो कि कृषि उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। उच्च तापमान कई फसलों की पैदावार को कम करता है और कीटों व खरपतवार के प्रसार को प्रोत्साहित करता है। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादों एवं खाद्य आपूर्ति की कीमत में वृद्धि होती है जिसका प्रभाव पशुधन उत्पादों तथा दूध और माँस पर पड़ता है। चौथी आईपीसीसी रिपोर्ट जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि, जल संसाधन, प्राकृतिक पर्यावरण और खाद्य सुरक्षा पर हुए वैश्विक एवं क्षेत्रीय प्रभाव को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। हालांकि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव दुनियाभर में देखा जा रहा है। फिर भी भारत जैसे देश में जहाँ जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि पर निर्भर है, वहीं इसके प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता भी है। कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय गिरावट का मुख्य कारण फसल के वृद्धि काल का छोटा होना है जो कि ऊष्मागत तनाव व जल उपलब्धता की कमी के कारण प्रजनन एवं दाना बनने की अवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

जलवायु अनुरूप कृषि (सीआरए) से तात्पर्य अनुकूलन, शमन एवं अन्य कृषिगत पद्धतियों के द्वारा विभिन्न जलवायु परिवर्तन संबधी आपदाओं से बचाव की क्षमता विकसित करना है। इन आपदाओं में सूखा, बाढ़, गर्मी, शीत लहर, कीट प्रकोप व अन्य जलवायु परिवर्तनों से होने वाले खतरे शामिल हैं। अतः सीआरए बेहतर प्रथाओं के क्रियान्वयन द्वारा प्राकृतिक संसाधनों यथा भूमि, पानी, मृदा एवं आनुवांशिक संसाधनों के विवेकपूर्ण एवं बेहतर प्रबंधन के लिए आवश्यक है। भारत जैसे देश में जहाँ कुल भूमि एवं जल संसाधन का प्रतिशत क्रमशः 2.4 एवं 4% ही हो, वहाँ अपनी कृषि उत्पादन प्रणाली से कुल वैश्विक आबादी के 17.5 प्रतिशत लोगों को भोजन उपलब्ध कराना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। प्राकृतिक संसाधनों का लगातार उपभोग एवं वैश्विक तपन और इससे जुड़े जलवायु परिवर्तनों के कारण विकट प्राकृतिक आपदाओं की तीव्रता एवं आवृत्ति बढ़ रही है। मौजूदा लचर व लालफीताशाही व्यवस्था से इतनी बड़ी जनसंख्या को पर्यावरणीय एवं खाद्य सुरक्षा मुहैया कराना, जिसमें कम कार्बन फुट प्रिन्ट के साथ अधिकतम उत्पादन हो, अत्यन्त चुनौतीपूर्ण है। उपरोक्त पृष्ठभूमि के साथ जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए कृषि तंत्र में बदलाव आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव व संभव नीतिगत विकल्पों के क्रियान्वयन के लिए चयनित विशेषज्ञों के समूह के मध्य एनएएएस में अप्रैल 2012 को चर्चा की गई।

जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर प्रभाव :–

जलवायु परिवर्तन कृषि को प्रत्यक्ष एवं

अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। कृषि पर इसका प्रभाव उत्पादन प्रणाली, भौगोलिक क्षेत्र और जलवायु परिवर्तन के स्तर पर निर्भर करता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का आंकलन नियंत्रित प्रयोगों और सिमुलेशन मॉडलिंग के माध्यम से किया जाता है एवं प्राप्त प्रयोगात्मक परिणामों को विभिन्न परिदृश्यों में जलवायु परिवर्तन के संबंध में क्षेत्रीय आधार पर संदर्भित करते हैं। जलवायु परिवर्तन के कृषि पर होने वाले मुख्य प्रभाव निम्नलिखित हैं :–

फसलों की मात्रा एवं गुणवत्ता के संदर्भ में उत्पादकता में परिवर्तन

जल, उर्वरक, कीटनाशी एवं खरपतवारनाशियों के प्रयोग जैसी कृषिगत पद्धतियों में परिवर्तन

पर्यावरणीय प्रभाव विशेष रूप से मृदा जल निकास की आवृत्ति एवं तीव्रता, जो लीचिंग और मृदा अपरदन द्वारा नाइट्रोजन की कमी व फसल विविधता में कमी के लिए जिम्मेदार है।

फसलों पर प्रभाव :

पर्यावरणीय परिवर्तनों का फसलों पर प्रमुख प्रभाव फसल की अवधि में कमी होना है। तापमान में वृद्धि से फसल जल्दी परिपक्व हो जाती है। वार्षिक फसलों में पकने की अवधि में 2–3 सप्ताह की कमी आती है, जो उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। तापमान के प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता होने के कारण चावल, गेहूँ, सूरजमुखी आदि फसलों में प्रजनन, परागण और निषेचन प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण जल उपलब्धता में परिवर्तन एवं कीटों और पादप व्याधि में तापमान में वृद्धि का प्रभाव आदि अप्रत्यक्ष प्रभावों के अन्तर्गत आते हैं। अध्ययन बताते हैं कि जलवायु परिवर्तन के कारण मुख्य फसलों जैसे गेहूँ, चावल, मक्का आदि की उत्पादकता में कमी आती है और दूसरी तरफ मूँगफली, सोयाबीन और चना जैसी फसलों पर प्रभाव सकारात्मक या उदासीन हो सकते हैं। कुछ फसलों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव निम्नलिखित हैं :

चावल :

भारत में कुछ समय से मानसून के सम्बंध में अनिश्चितता बढ़ी है। पिछले 50 वर्षों में सघन वर्षा की घटनाओं के साथ–साथ वर्षाकाल की अवधि में भी कमी दर्ज की गई है। परिणामस्वरूप सूखा एवं बाढ़ इस खरीफ फसल के लिए खतरा बढ़ा रहे हैं। राज्य स्तरीय सांख्यिकी आँकड़ों का विश्लेषण पुष्टि करता है कि अतिवृष्टि व सूखे के कारण मुख्य रूप से वर्षा आधारित सिंचित क्षेत्रों में 1966–2002 के मध्य धान की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अतिवृष्टि की तुलना में सूखे का उत्पादन पर अधिक प्रभाव देखा गया है। एक सामूहिक पैमाने पर सभी उत्सर्जन परिदृश्यों से संकेत मिलता है कि जलवायु परिवर्तन के द्वारा सिंचित धान की उपज में 2020 में लगभग 4 प्रतिशत, 2050 में लगभग 7 प्रतिशत और 2080 में लगभग 10 प्रतिशत कमी होने की संभावना है।

गेहूँ :

गेहूँ के प्रारंभिक मॉडलिंग अध्ययन के अनुसार भारत में औसत तापमान में एक डिग्री की बढ़ोतरी से गेहूँ के उत्पादन में 4–5 मिलियन टन की कमी आ सकती है (अग्रवाल, 2008)। एक अनुमान के मुताबिक 2050 तक कुल गेहूँ के उत्पादन का 15% सिन्धु–गंगा के मैदानी इलाकों से हो सकता है। इसके आधे से अधिक (51%) क्षेत्र को ऊष्मागत तनाव, सिंचित, लघु अवधि उत्पादन के रूप में पुनः वर्गीकृत किया गया है। इस परिवर्तन द्वारा गेहूँ की उपज में होने वाली कमी को रोकने के लिए किसानों को उचित किस्मों व फसल प्रबधंन को अपनाना होगा। नवीन अनुसंधान यह बताते हैं कि गेहूँ के लिए वैश्विक तपन, पहले हुए अध्ययन के मुकाबले कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण है। वैश्विक तपन के प्रति इसकी प्रभावी अनुकूलनशीलता इस बात पर निर्भर करेगी कि उच्च तापमान के लिए फसल संवेदनशीलता को किस प्रकार कम किया जाये।

मक्का :

भारत के मैदानी और दक्षिणी पठारी इलाकों में तापमान में बढ़ोतरी के कारण सर्दी (रबी) की ऋतु में बोई जाने वाली मक्का की उपज में कमी होने का अनुमान है। विशेष रूप से दक्षिणी पठारी भू–भाग में मानसून ऋतु की उपज (35%तक) और मध्य मैदानी इलाकों में सर्दी की उपज (55% तक) कम होने की संभावना है। वर्तमान परिस्थितियों में मौजूदा किस्मों के समान बदली हुई जलवायु परिस्थितियों में नयी किस्मों का विकास भारत में मक्का उत्पादन के जोखिमों को कम करने के लिए एक अनुकूल रणनीति हो सकती है।

अन्य फसलें :

इनफोक्रॉप कपास मॉडल का उपयोग करते हुए सिमुलेशन परिणाम दर्शाते हैं कि बीज कपास की उपज अ–2 परिदृश्य के लिए 477 कि.ग्रा./हे. और ब–2 परिदृश्य के लिए 268 कि.ग्रा./हे. कम हुई है। जलवायु परिवर्तन की वजह से अनुकूलन रणनीतियों के विभिन्न संयोजनों के द्वारा ही मूँगफली की उपज में वृद्धि को बनाये रखा जा सकता है।

उद्यानिकी पर प्रभाव :

जलवायु परिवर्तन के द्वारा अ–1ब परिदृश्य 2030 में पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी व मध्य उ.प्र. में आलू उत्पादन में 3% से 7% की वृद्धि संभव है परन्तु भारत के विशेषत: प. बंगाल दक्षिणी पठारी क्षेत्र में उत्पादन 4–16% तक कम हो सकता है। कंद विकास के दौरान औसत न्यूनतम तापमान में वृद्विके कारण महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश के कई इलाकों में कटाई–सूचकांक कम हो सकता है। जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन द्वारा विभिन्न परिदृश्यों में उपज को 13–19% तक बढ़ाया जा सकता है। पश्चिमी तटों पर 1982–83 और 2003–04 में ग्रीष्म ऋतु में पड़े भीषण सूखे के कारण कोको, काली मिर्च, नारियल, कॉफी, चाय, इलायची जैसी फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अँगूर और इसके मूल्य–वर्धित उत्पाद भी जलवायु परिर्वतन से प्रभावित हुए हैं। काजू की फसल जो कि पारिस्थितिकीय संवेनशील क्षेत्रों जैसे तटीय इलाकों, पर्वतीय प्रदेश, उच्च वर्षा व नमी वाले इलाकों में की जाती है, मौसम परिवर्तन से प्रभावित हुई है जिसके कारण देश का काजू निर्यात राजस्व कम हुआ है।

मत्स्य पालन पर प्रभाव :

पिछले 45 वर्षों में भारतीय तटों के समुद्र सतही तपमान में 0.2–0.3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है और 2099 तक इसके 2.0 से 3.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ने की सभांवना व्यक्त की गई है। 50 वर्षों में समुद्र का जल स्तर 30 सेमी. तक बढ़ने की आशंका है। जलवायु परिवर्तन के मत्स्य पालन पर नकारात्मक प्रभावों के बावजूद जलवायु सम्बंधी प्रभावों के जोखिमों को कम करने के पर्याप्त अवसर हैं। सर्वप्रथम मछलियों के वितरण व उन्हें पकड़ने के लिए उचित प्रबंधन विकसित किये जाने की योजना की जरूरत है। निम्नलिखित उपायों के द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से मुकाबला कर सकते हैं –

- महत्वपूर्ण एवं उपयोगी मत्स्य समूहों की अनुकूलन क्षमता का मूल्यांकन
- मछली उत्पादन एवं उसकी गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए अनुकूलित मछली पकड़ने की क्षमता का विकास करना
- जलीय शैवालों का उत्पादन करना जो कि जलवायु परिवर्तन के प्रभावी सूचक तो हैं ही, साथ में भोजन, दवाईयाँ बनाने एवं बायोडीजल उत्पादन में भी उपयोगी हैं
- मछुआरों के मध्य जलवायु परिवर्तन सम्बंधी ज्ञान को बढ़ाना
- मौसम निगरानी समूहों को बढ़ाना
- प्रभावी तट संरक्षण संरचनाओं का निर्माण
- मत्स्य उत्पादन प्रणालियों के लिए निर्णय समर्थन प्रणाली (डीएसएस) को विकसित करना

कृषि पर जलवायु परिवर्तन का सकारात्मक प्रभाव :

वातावरण में CO_2 की मात्रा में अधिकता विशिष्ट क्षेत्रों में फसलों के विकास को बढ़ाती है, हालांकि यह मौसम संबंधी कारक जैसे तापमान, वर्षा, पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं जलीयगत तनाव पर निर्भर करती है। अधिक CO_2 सान्द्रता में उगाई जाने वाली फसलें विकास व उत्पादन में वृद्धि प्रदर्शित करती हैं। बढ़ी हुई CO_2 की मात्रा फसल विकास को प्रभावित करती है और प्रकाश संश्लेषण तथा जल उपभोग क्षमता को बढ़ाती है। C_3 और C_4 पादपों की शारीरिकी में विभिन्नता होने के कारण ही बढ़ी हुई CO_2 की मात्रा में C_4 पादप में प्रकाश संश्लेषण की दर अधिक होती है। CO_2 के प्रत्यक्ष प्रभाव में 2080 के अ–2 व ब–2 उर्त्सजन परिदृश्यों में वर्षा आधारित फसलों में उपज में वृद्धि की संभावना है। अ–2 परिदृश्य के अंतर्गत वर्षा आधारित मक्का का उत्पादन अधिकतम है क्योंकि संभवत: देश के कुछ इलाकों में उच्च CO_2 मात्रा वर्तमान में अल्प पानी उपलब्धता में वर्षा आधारित मक्का के उत्पादन में सहायक है। मॉडल फसल में मक्का की उपज में थोडी बढ़ोतरी देखी गयी है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन से 2030 परिदृश्य में पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी और मध्य उत्तर प्रदेश में आलू की उपज 3.46–7.11% तक बढ़ सकती है। सिमुलेशन परिणाम दर्शाते हैं कि भविष्य में जलवायु परिवर्तन से देश में वर्षा आधारित सोयाबीन की फसल पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

अन्य सकारात्मक प्रभावों के अन्तर्गत कुछ फसलों के कृषि क्षेत्रों में भी परिवर्तन हो सकता है जिससे नवीन आर्थिक और बाजार क्षेत्रों का निर्माण होगा जो स्थानीय लोगों के लिए फायदेमंद होगा। ऐसा कुछ समशीतोष्ण क्षेत्रों में बागवानी की फसल के लिए देखा गया है। उदाहरण के लिए सेब की फसल का कम ऊँचाई वाले इलाकों से अधिक ऊँचाई वाले इलाकों में स्थानान्तरित हो जाने के कारण कम ऊँचाई पर बसे किसान अन्य फलदार वृक्षों (अनार, कीवी), सब्जियों व फूलों का वाणिज्यिक स्तर पर सफलतापूर्वक उत्पादन कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन का एक अन्य सकारात्मक प्रभाव बागवानी फसलों की संरक्षित खेती में देखा जा सकता है, जो नयी संभावनायें पैदा कर रहा है।

जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों का प्रबधंन :

तूफान चेतावनी प्रणाली, जल संग्रहण व

निकास, आधारभूत ढाँचा विकास, तनावरोधी किस्मों जैसे विकल्पों को प्राथमिकता से आगे बढ़ाना होगा। अनुकूलित उपायों के रूप में वैकल्पिक कृषि पद्धतियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उच्च उत्पादकता व जीएचजी उत्सर्जन कम करने के लिए फसल एवं पशुपालन दिशा निर्देशों का दृढ़ता के साथ पालन करना होगा। स्थानीय वैज्ञानिक प्रयोगों के परिणाम जलवायु परिवर्तनशीलता के विरूद्ध महत्वपूर्ण अनुकूलन रणनीति होगी। हमारा ध्यान गतिशीलता एवं विविधता अनुकूलनों के लचीलेपन पर होना चाहिए जो बदलते आर्थिक, तकनीकी व सस्थागत परिदृश्यों में अवसरों का दोहन कर सके। कृषि के अनुकूल उपायों को अधिकतम करने के लिए तकनीकि नवीनता में निवेश की जरूरत है। कृषिगत दक्षता में वृद्धि, सृजन और निगरानी प्रणाली का विकास छोटे एवं सीमांत किसान के लिए करना होगा ।

जलवायु मॉडलिंग का सामाजिक एवं आर्थिक परिदृश्य के साथ संयोजन जलवायु परिवर्तन के दीर्घकालीन परिणामों को प्राप्त करने में एक उपयोगी उपकरण साबित होगा। इस दृष्टिकोण को अपनाने से उपलब्ध प्रतिक्रिया विकल्पों के मूल्यांकन में भी मदद मिलेगी। सामाजिक–आर्थिक आधारित ये मॉडल ही अनुकूलन एवं शमन के विकल्प को आर्थिक व्यवहारिता के साथ लागू कर सकते हैं। क्योंकि अनुकूलन एवं शमन की लागत ही इसकी सफलता को तय करेगी। भविष्य में ये मॉडल कहीं अधिक परिष्कृत होंगे जिनमें जोखिमों के प्रति जागरूकता, सामाजिक नेटवर्क, श्रम बाजार आदि कारकों को समझने की क्षमता को बढ़ाया जायेगा। पिछले एक दशक के दौरान कई अनुकूल उपाय राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली (एनएआरएस) द्वारा विकसित किये गये हैं जिनमें राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परिषद्, राज्य कृषि विश्वविद्यालय एवं डीम्ड विश्वविद्यालय शामिल थे। इसका लक्ष्य मौजूदा तकनीक एवं उपलब्ध जल द्वारा पैदावार बढ़ाना था। स्थानीय एवं सामयिक परिणामों से जुड़ी अनिश्चितताओं के कारण जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के लिए विशेष रूप से अनुकूल रणनीतियों का विकास जोखिमों भरा हो सकता है।

संरक्षण कृषि खाद्य सुरक्षा बढ़ाने, गरीबी कम करने, जैव विविधता संरक्षण और परिस्थितिकी तंत्र को सुरक्षित रखने का एक नवीन कृषिगत दृष्टिकोण है। यह जलवायु परिवर्तन के प्रति कृषि को अधिक अनुरूप बनाने में योगदान दे सकती है। कई मामलों में देखा गया है कि संरक्षण कृषि खेती प्रणाली में हरितग्रह प्रभाव द्वारा उत्सर्जित गैसों के उत्सर्जन को कम करने में उपयोगी हुई है। संरक्षण कृषि सूखे के जोखिम को कम करते हुए प्राकृतिक संसाधनों को समृद्ध करती है। यह जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन करके छोटे किसानों की क्षमता को बढ़ा सकती हैं। वैज्ञानिक कृषि वानिकी का विकास भी जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई में एक महत्वपूर्ण घटक है। कृषि–वानिकी कार्बन उत्सर्जन को कम करते हुए आर्थिक पर्यावरणीय एवं सामाजिक आर्थिक लाभ की एक श्रृंखला उत्पादित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए कृषि वानिकी पेड़ों के कटाव पर नियंत्रण, मृदा के कार्बनिक पदार्थ एवं भौतिक गुणों का रखरखाव, नाइट्रोजन उपलब्धता में वृद्धि अधिक गहराई से पोषक तत्वों का निकास एवं पोषण चक्रों के उन्नयन के द्वारा मृदा उर्वरता में सुधार करती है।

जलवायु अनुरूप कृषि पर राष्ट्रीय पहल (एनआईसीआरए) :

एनआइसीआरए, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा फरवरी, 2011 में शुरू की गयी एक देशव्यापी परियोजना है। परियोजना का उद्देश्य दीर्घकालीन अनुसंधान के द्वारा भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के अध्ययन के साथ ही वर्तमान जलवायु परिवर्तनशीलता से किसानों के बचाव के लिए विद्यमान श्रेष्ठ कृषिगत प्रथाओं का प्रदर्शन करना भी है। नीतिगत अनुसंधान द्वारा जलवायु जनित तनावों जैसे सूखा, ऊष्मागत तनाव आदि के विरूद्ध गेहूँ, चावल, मक्का एवं दालों के जर्मप्लाज्म का संग्रह कर चुनी गयी किस्मों के द्वारा तनावरोधी उच्च गुणवत्तापूर्ण किस्म का विकास करना है। इसके अलावा मौसम विभिन्नता के सम्बंध में व्यापक कीट निगरानी प्रोग्राम, फसल सिमुलेशन मॉडलिंग जिसमें विभिन्न प्रभावों की अध्ययन सुविधा एवं अनुकूल डिजाइन प्रणाली मौजूद हों, दुधारू पशुओं पर ऊष्मागत तनाव को कम करने के लिए पोषण एवं आनुवांशिकी योजना का विकास किया गया है।

भारत में जिला स्तरीय संवेदनशील क्षेत्रों का चयन कर प्राथमिकता से उन क्षेत्रों में निवेश को बढ़ाया गया है। 100 चयनित संवेदनशील जिलों में तनावरोधी, जल संचयन, संरक्षण कृषि, कृषि उपकरण के रूप में सर्वाधिक प्रभावी कृषि साधनों का प्रदर्शन किया गया है। ग्रामीण जलवायु जोखिम प्रबंधन समितियों और स्मार्ट ग्रामीण जलवायु प्रोग्राम के द्वारा पानी, ऊर्जा, पोषक तत्वों आदि में नवीन प्रौद्योगिकी को शामिल कर अनुभवों को विवेकपूर्ण तरीके से और आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

नीतिगत विकल्प एवं क्रियान्वयन :

उपकरण, प्रौद्योगिकी एवं बुनियादी ढांचे :

जोखिम मूल्यांकन जलवायु अनुरूप

कृषि के लिए मानक तरीके का विकास, नई मौसम वेधशालाओं का निर्माण, ब्लॉक–स्तर पर वर्षा जल भंडारण की व्यवस्था करना, रिमोट सेंसिंग जैसे आधुनिक उपकरणों द्वारा मौसम संबंधी जानकारी का उपयोग करना एवं इसके कुशल प्रबंधन की क्षमता का विकास करना।

सूक्ष्म स्तर पर सूचनाओं (जलवायु, कृषि, सामाजिक–आर्थिक, प्राकृतिक संसाधन आदि) को एकत्र करने के लिए संस्थागत तंत्र का विकास करना व उपलब्ध डाटाबेस का उपयोग कर वृहत स्तर पर नीतियों का निर्माण करना।

शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों के अधिक जोखिमों को देखते हुए स्थानीय स्तर पर अनुकूल फसलों, प्रबंधन तरीकों, निर्णय .समर्थन प्रणाली (डीएसएस) एवं जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के अध्ययन एवं शमन नीतियों हेतु मॉडल विकास के लिए अनुसंधान एवं विकास में निवेश को बढ़ावा देना।

सूखा रोधी एवं ऊष्मागत तनाव रोधी किस्मों का विकास एवं प्रसार।

जल, पोषण एवं ऊर्जा संरक्षण के लिए उन्नत तकनीकों का विकास।

कृषि में जल के कुशल प्रबंधन के लिए स्थानीय संरक्षण तकनीकों (जैसे स्वस्थान जल संरक्षण, वर्षा जल संचयन, भू–जल पुनर्भरण, स्थनीय रूप से अनुकूलित फसल प्रणाली आदि) को बढ़ावा देना और इन तकनीकों को किसानों के मध्य प्रदर्शित करना।

किसानों के प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन व मौसम प्रबंधन तरीकों के पारंपरिक एवं स्वदेशी ज्ञान का आधुनिक तकनीकों के साथ संयोजन करना।

मौसम आधारित कृषि परामर्श एवं वहनीय बीमा उत्पादों के माध्यमों से जलवायु जोखिम को कम करना, सरकार को जलवायु परिवर्तन से हुए नुकसान से निपटने के लिए राहत सहायता देने के स्थान पर फसल बीमा को बढ़ावा देना चाहिए।

प्राथमिकता एवं कार्यक्रमों का अभिसरण :

शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों व जलवायु परिवर्तन की चपेट में आये क्षेत्रों पर प्राथमिकता से ध्यान देना और जिलेवार कृषि और आजीविका की व्यापक योजना को तैयार एवं लागू करना।

एकीकृत जलवायु परिवर्तन पहल जैसे आईएनसीसीए, एनएपीए, एनएमएसए, एनआईसीआरए, एनडीएमए आदि के साथ राष्ट्रीय कृषि नीतियों, खाद्य सुरक्षा, आपदा प्रबंधन एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण आजीविका वृद्धि कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण समुदाय को लाभान्वित करना।

गैर–कृषि आजीविका साधनों के माध्यम से ग्रामीण आय के साधनों में विविधता को प्रोत्साहित करना। सरकार द्वारा शुरू की गई नई राष्ट्रीयता आजीविका मिशन में जलवायु परिवर्तन के अनुकूलनों के लिए पर्याप्त हिस्सेदारी का निर्माण करना।

सरकार द्वारा समर्थित राहत कार्यक्रम जैसे खाद्य सुरक्षा, कृषि सब्सिडी, ग्रामीण वित्त, गरीबी हटाओ कार्यक्रम, तकनीकी हस्तांतरण आदि में समाज के निम्नतम तबके की पहुँच को सुगम बनाना।

भागीदारी एवं क्षमता निर्माण :

जलवायु अनुरूप कृषि (सीआरए) में निवेश को बढ़ाने हेतु सार्वजनिक और निजी धन को आकर्षित करने के लिए अनुकूल माहौल बनाने की आवश्यकता है। व्यावसायिक जिम्मेदारियों के तहत देश के अग्रणी निजी व्यावसायिक घरानों को अति संवेदनशील क्षेत्रों में जलवायु अनुरूप कृषि को बढ़ावा देने के लिए निवेश करना चाहिए।

अधिकारियों, विस्तार कार्यकर्ताओं और किसानों के मध्य जागरूकता व प्रशिक्षण के द्वारा मानव संसाधन विकास एवं क्षमता निर्माण में सुनियोजित निवेश, प्राकृतिक संसाधन संरक्षण तकनीकों को अपनाने के लिए किसानों को प्रोत्साहित करना एवं मौजूदा स्वदेशी प्रौद्योगिकी का विकास करना जो कि पर्यावरण हितैषी और लम्बे समय तक चलने वाली हों।

संस्थागत शैक्षणिक एवं अनुसंधान प्रयोगशालाओं एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में बुनियादी संशोधन करके ऐसे स्नातक और स्नातकोत्तर बनाना जो पर्यावरण परिवर्तन प्रबधंन में प्रशिक्षित हों।

स्थानीय समुदाय के बीच अनुकूलन तैयारियों को बढ़ाने के लिए गैर–सरकारी संगठनों, सिविल सोसायटी लोक और परोपकारी संगठनों की भूमिका को प्रोत्साहित करना।

जलवायु अनुरूप कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए छोटे ओर सीमान्त किसानों के लिए रियायत राशि बढ़ाई जाये।

किसानों की महत्वपूर्ण जरूरतों जैसे विपणन, कुशल प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन को जुटाने आदि के लिए कुशल सहकारिता सामुदायिक संगठनों और संघ समूहों को स्थापित करना।

चक्रवात, बाढ़ जैसी आपदाओं से कृषि, बागवानी एवं पशुधन बचाने के लिए आपदा प्रबंधन पर राष्ट्रीय नीति विकसित करना।

राष्ट्रीय कृषि जोखिम प्रबंधन कोष और आवश्यकताओं के समय पर वितरण के लिए राष्ट्रीय किसान आयोग (एनसीएफ) की सिफारिशों को लागू करना।

जलवायु परिवर्तन के प्रबंधन में सबसे सफल कहानियों की पहचान करें और उन्हें प्रचारित कर वृहद स्तर पर इन्हें प्रदर्शित करें।

योजना निर्माण में जलवायु अनुरूप कृषि (सीआरए) :

पर्यावरणीय तंत्र की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए बड़े पैमाने पर मिट्टी और जल संरक्षण प्रथाओं को अपनाना चाहिए।

किसानों को जलवायु अनुरूप कृषि अपनाने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

अतिसंवेदनशील क्षेत्रों में कृषि के अलावा अन्य गैर कृषि एवं कृषि संबध क्षेत्रों को बढ़ावा देने के लिए बुनियादी ढांचे का विकास करना चाहिए।

भारत सरकार जलवायु अनुरूप कृषि की मुहिम को सम्पूर्ण देश में लागू करने को कटिबद्ध है। सरकार अपने अधीन मंत्रालयों व सरकारी एजेंसियों के द्वारा वित्त प्रदान कर परियोजना को सफल बनाने हेतु प्रयासरत है। तथापि योजनाओं कैं लागू करने के लिए उचित तालमेल के साथ उनकी निगरानी की भी आवश्यकता है, तब जाकर भारत में जलवायु अनुरूप कृषि का सपना साकार होगा।

सरसों में आधुनिक विधियाँ द्वारा खरपतवार प्रबंधन

बजरंग लाल ओला, अरबिन्द कुमार वर्मा, बी. एस. राठौड़, पंकज शर्मा[1] एवं धीरज सिंह[1]

कृषि विज्ञान केन्द्र, गूंता, बानसूर (राज.)

[1]भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

सरसों रबी मौसम में उगाई जाने वाली तिलहनी फसलों में महत्वपूर्ण फसल है। सरसों में खरपतवारों की बडी समस्या है जो किसानों को अपनी फसल का पूर्ण लाभ नही उठाने देती, ये फसल को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से हानि पहुंचाते है। सरसों का अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिय उन्नतशील साधनों को अपनाने के साथ–साथ खरपतवारों का समय पर नियंत्रण करना आव यक है। क्योकि सरसों में खरपतवारों द्वारा उपज में औसतन 15–30 प्रतिशत तक नुकसान होता हैं। अतः खरपतवारों का क्रान्तिक अवस्थों पर (बुवाई के 15–40 दिन तक) आधुनिक विधियाँ द्वारा नियंत्रण करने से अधिक पैदावार के साथ लागत में कटौती की जा सकती है।

खरपतवार (Weed) अवांच्छनीय अनुपयोगी शीघ्र फैलने वाले, हानिकारक, कृषि कार्य मे बाधा डालने वाले, खर्च बढाने वाले, बिना बाये ही खेतो मे उग जाने वाले पौधो को खरपतवार कहते हैं।

सरसों फसल के प्रमुख खरपतवार :

आमतौर पर सरसों की फसल में चौड़ी एवं संकरी पत्ती वाले लगभग 15–20 प्रकार के खरपतवारों की समस्या होती है। लेकिन फसल को सबसे अधिक नुकसान ओरोबैंकी नामक खरपतवार से ही होता है जिसको कई नाम जैसे–सरसों का मामा, मरगोजा एवं भूमीफोड इत्यादि से जाना जाता है। सरसों में ओरोबैंकी खरपतवार द्वारा उपज में 28% तक नुकसान होता हैं। सरसों फसल के प्रमुख

ओरोबैंकी

प्याजी

बथुआ

खरपतवार जैसे– बथुवा, पीली एवं सफेद सैजी, प्याजी, कृष्णनील, चटरीमटरी, कासनी, गजरी, दूब, हिरनखुरी, कटेली एवं सत्यानाशी आदि हैं।

खरपतवारों से हानियाँ

सरसों की फसल में ठीक से खरपतवार नियंत्रण न होने की दशा में फसल को दी गई पोषक तत्वों की खुराक खरपतवार ले लेते हैं, साथ ही नमी, प्रकाश एवं स्थान आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करके फसल की बढ़वार, उपज एवं गुणवत्ता में कमी कर देते हैं। साथ ही फसल में खरपतवार अधिक होने से फसलों में लगने वाले रोगों के जीवाणुओं एवं कीट व्याधियों को भी आश्रय देते हैं। सरसों में खरपतवारों की अधिकता होने पर फसल दब जाती है तथा अच्छी उपज प्राप्त नहीं हो पाती है।

खरपतवार नियन्त्रण की आधुनिक विधियाँ

खरपतवार नियंत्रण की आधुनिक विधियों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार है – निरोधी उपाय, यांत्रिकी विधि, शस्य विधियों द्वारा तथा शाकनाशीयों द्वारा खरपतवार नियंत्रण।

निरोधी उपाय –

निरोधी उपाय का अर्थ खरपतवार की विषेश प्रजातियों को फसल क्षेत्र में फेलने से पहले रोकना होता है। क्योकि निरोधी उपाय के बिना खरपतवारों नियंत्रण सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। अतः

खरपतवारों को सरसों फसल क्षैत्र में निम्न उपायों द्वारा रोका जा सकता है–

- खरपतवार बीज रहित सरसों के प्रमाणित बीज का प्रयोग करें
- अच्छी सड़ी गोबर एवं कम्पोस्ट खाद का प्रयोग
- बुवाई यंत्रों की प्रयोग से पूर्व अच्छी तरह से साफ–सफाई करें
- मेढ़ों तथा पानी की नालियों को साफ रखें
- जल्दी पानी लगाकर खरपतवारों को उगने दें तथा फिर दवाई या खेत को जोत कर इसे खत्म करने के बाद सरसों की बीजाई करें।

यांत्रिकी विधियों द्वारा खरपतवार प्रबंधन

यांत्रिकी खरपतवार नियंत्रण विधि सबसे सरल एवं कृषकों द्वारा आसानी से अपनाई जाने वाली विधि है। अतः जिन स्थानों पर मजदूरी की दर सस्ती है एवं निंदाई के समय मजदूरों की उपलब्धता आसानी से हो जाती है, वहाँ पर यांत्रिकी विधि अधिक लाभकारी होती है। यांत्रिकी खरपतवार नियंत्रण विधि में मुख्य रूप से उपयोग किये जाने वाले यंत्र इस प्रकार है जैसे कि खींचकर चलाये जाने वाले निंदाई यंत्र, आगे–पीछे चलाये जाने वाले निंदाई यंत्र, पहियेदार निंदाई, यंत्र, इंजन चलित निंदाई यंत्र इत्यादि। यांत्रिकी खरपतवार नियंत्रण विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण तो होता ही है, साथ ही साथ गुडाई हो जाने के कारण मृदा में वायु संचार हो जाने के कारण उपज में वृद्धि होती है।

शस्य विधियों द्वारा खरपतवार प्रबंधन

सरसों की शीघ्र बढने वाली किस्म का प्रयोग करें ताकि प्रारम्भिक अवस्था में उगनें वालें खरपतवारों को अच्छी प्रतिस्पर्धा दे सके। सरसों के पौधों का समान जमाव व शीघ्र बढ़वार की वजह से खरपतवारों की बढ़वार को कम स्थान मिलता है। इसके लिये निम्न बातों का ध्यान रखना जरूरी है –

- उच्च गुणवत्ता के बीजों का प्रयोग
- उचित खेत की तैयारी
- उचित बीज व उर्वरकों की मात्रा
- सरसों की बीजाई समय पर करें
- उचित विधि तथा उचित गहराई पर बीज की बुवाई
- उचित फसल चक्र अपनाकर
- खरपतवारों को बीज बनने से पहले ही उखाड़ कर नष्ट करें।

शाकनाशीयों द्वारा खरपतवार प्रबंधन

उपरोक्त विधियां अपनाकर यदि खरपतवार नियन्त्रण मे नहीं आये तो कम से कम रासायनिक शाकनाशीयों के प्रयोग द्वारा खरपतवारों को नियन्त्रित किया जा सकता है। आधुनिक कृषि में रासायनिक खरपतवार प्रबंधन की परम आवश्यकता है। शाकनाशीयों द्वारा खरपतवार प्रबंधन करना मजदूरों

सरसों के मुख्य शाकनाशीयों एवं उनके प्रयोग का उचित समय

शाकनाशीय का वैज्ञानिक नाम	शाकनाशीय का व्यापारिक नाम	सक्रिय तत्व की मात्रा/है.	दवा की मात्रा/है.	शाकनाशीयों के प्रयोग का समय
फलुक्लोरेलीन 45% EC	बासालीन	1 लीटर	2.25 लीटर	बुवाई से पूर्व भूमि में अच्छी तरह मिलाऐं
पेन्डीमिथालिन 30% EC	स्टाम्प	1 लीटर	3.33 लीटर	बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व
आईसोप्रोटूरान 75% EC	टाल्कन/एरीलान	750–1000 ग्राम	–	बुवाई के 25–30 दिन बाद छिड़काव करें

सरसों के मुख्य खरपतवारों का उचित प्रबंधन

खरपतवार	शाकनाशीयों	सक्रिय तत्व की मात्रा/है.	दवा की मात्रा/है.	शाकनाशीयों के प्रयोग का समय
बथुआ/खरथवा व अन्य	पेन्डीमिथालिन	1 लीटर	3.3 लीटर	बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व
प्याजी	फलुक्लोरेलीन	1 लीटर	2.25 लीटर	बुवाई से पूर्व भूमी में अच्छी तरह मिलाए।
जंगली पालक	फलुक्लोरेलीन	1 लीटर	2.25 लीटर	बुवाई से पूर्व भूमी में अच्छी तरह मिलाए।
ओरोबैंकी/मरगोजा	ओरोबैंकी के प्रति पोधे पर 2 बूँद सोयाबीन तेल का छिडकाव अथवा ग्लाईफोसेट 41% SL खरपतवारनाशी का 25 ग्राम/हे. बुवाई के 30 दिन बाद व दूसरा छिडकाव 50 ग्राम/हे. बुवाई के 55–60 दिन बाद 375 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल में छिडकाव करें।			

द्वारा तथा यंत्रों द्वारा शारीरिक शक्ति से कम लागत आती है तथा समय की बचत होती है। सरसों मे प्रयोग होने वाले कुछ प्रभावशाली शाकनाशीयों का विवरण नीचे दिया गया है।

सरसों में रासायनिक खरपतवार प्रबंधन के समय कुछ ध्यान रखने योग्य बातें:

क्या करें–

रसायनों का प्रयोग अनुमोदित मात्रा के अनुसार ही करें।

खरपतवारनाशी प्रतिष्ठित कम्पनी का ही खरीदें

रसायनों की बोतल/डिब्बों में दिये गये निर्देशों के अनुसार ही रसायन का प्रयोग करें।

खरपतवारनाशी के पैकेट पर वैधता अवधि (Expiry date) जाँच लें।

रसायनों का प्रयोग शुष्क मौसम में प्रातःकाल में ही करें।

हवा की दिशा में ही छिड़काव करें।

खरपतवार के प्रकार व संख्या को ध्यान में रखकर खरपतवारनाशी का चयन करें ।

ग्लाईफोसेट खरपतवारनाशी का प्रयोग करते समय खेत में नमी का होना आवश्यक है।

खरपतवारनाशी का प्रयोग करते समय फलेट फेन नोजल का प्रयोग करें ।

खरपतवारनाशी चक्र का अनुसरण करें ताकि खरपतवारों की प्रतिरोधी क्षमता विकसित ना हो।

प्रयोग करते समय पंप में उचित दबाव रखना चाहिए जिससे कि स्प्रे समान रूप से हो पाये।

छिडकाव समाप्त हाने के बाद साबनु से अच्छी तरह हाथ, मुँह अवश्य धोलें, अच्छा होगा यदि स्नान भी कर लें

पतियों पर से औस की बूदें सुखने पर स्प्रे करे।

खरपतवारनाशी के अच्छे परिणाम हेतु प्रति हेक्टेयर 600–700 लीटर पानी का उपयोग करे।

क्या ना करें–

खरपतवारनाशीयों का प्रयोग करते समय रेत, यूरिया या मिट्टी को साथ ना मिलायें।

तेज हवा चलते समय रसायन का छिड़काव न करें।

हवा की विपरित दिशा में छिडक़ाव नहीं करना चाहिए।

खरपतवारनाशी का खुले पैकेट ना लें।

एक जगह पर दो बार छिड़काव न करें अन्यथा फसल के झुलसने के आसार होते हैं।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजनाः किसानों की नई उम्मीद

अशोक कुमार शर्मा, विनोद कुमार एवं रूपेन्द्र कौर
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि प्रधान होने के कारण भारत सरकार ने समय–समय पर कृषि के विकास के लिये अनेक योजनाओं को शुरू किया, जिसमें से कुछ योजनाएं, जैसेः गहन कृषि विकास कार्यक्रम (1960–61), गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (1964–65), हरित क्रान्ति (1966–67), सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (1973) आदि। लेकिन इन सभी योजनाओं के बाद भी कृषि क्षेत्र की अनिश्चिताओं का समाधान नहीं हुआ, जिससे आज 21वीं सदी में भी किसान सुरक्षित नहीं है।

किसानों की फसल के संबंध में अनिश्चितताओं को दूर करने के लिये भारत सरकार ने 13 जनवरी 2016, को प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (प्राइम मिनिस्टर क्रॉप इनश्योरेंस स्कीम) को मंजूरी दे दी। ये योजना 13 जनवरी को लोहड़ी (किसानों का त्योहार) के शुभ अवसर पर भारतीय प्रधानमंत्री, नरेन्द्र मोदी द्वारा किसानों के लिए तोहफा है। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, किसानों की फसल को प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुई हानि को किसानों के प्रीमियम का भुगतान देकर एक सीमा तक कम करायेंगी। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के अन्तर्गत, किसानों को बीमा कम्पनियों द्वारा निश्चित, खरीफ की फसल के लिये 2% प्रीमियम और रबी फसल के लिये 1.5% प्रीमियम का भुगतान करेगा।

प्राईम मिनिस्टर क्रॉप इनश्योरेंस स्कीम, पूरी तरह से किसानों के हित को ध्यान में रख कर बनायी गयी है। इसमें प्राकृतिक आपदाओं के कारण खराब हुई फसल के खिलाफ किसानों द्वारा भुगतान की जाने वाली बीमा की किस्तों को बहुत नीचा रखा गया है, जिनका प्रत्येक स्तर का किसान आसानी से भुगतान कर सके। ये योजना न केवल खरीफ और रबी की फसलों के लिए भी सुरक्षा प्रदान करती है, वार्षिक वाणिज्यिक और बागवानी फसलों के लिये किसानों को 5% प्रीमियम का भुगतान करना होगा।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के मुख्य तथ्य :

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, किसानों के त्योहार लोहड़ी, मकर संक्रान्ति, पोंगल, बिहू के शुभ अवसर पर भारतीय किसानों के लिये उपहार है। किसानों के कल्याण के लिये इस फसल बीमा योजना में शामिल किये गये मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं :

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की भुगतान की जाने वाली प्रीमियम दरों को किसानों की सुविधा के लिये बहुत कम रखा गया है ताकि सभी स्तर के किसान आसानी से फसल बीमा का लाभ ले सकें।

इस योजना को 2016 में खरीफ फसलों के मौसम से शुरू किया गया।

इसके अन्तर्गत सभी प्रकार की फसलों (रबी, खरीफ, वाणिज्यिक और बागवीन की फसलें) को शामिल किया गया है।

खरीफ (धान या चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, गन्ना आदि) की फसलों के लिये 2% प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा।

रबी (गेंहूँ, जौ, चना, मसूर, सरसों आदि) की फसल के लिये 1.5% प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा।

वार्षिक वाणिज्यिक और बागवानी फसल बीमा के लिये 5% प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा।

सरकारी सब्सिडी पर कोई ऊपरी सीमा नहीं है। यदि बचा हुआ प्रीमियम 90% होता है तो ये सरकार द्वारा वाहन किया जाएगा।

शेष प्रीमियम बीमा कम्पनियों को सरकार द्वारा दिया जायेगा। ये राज्य तथा केन्द्रीय सरकार में बराबर–बराबर बाँटा जायेगा।

ये योजना राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (एम.एन.आई.एस.) और संशोधित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (एम.एन.ए.आई.एस.) का स्थान लेती है।

इसकी प्रीमियम दर एन.ए.आई.एस. और एम.एन.ए.आई.एस. दोनों योजनाओं से बहुत कम है साथ ही

इन दोनों योजनाओं की तुलना में पूरी बीमा राशि को कवर करती है।

इससे पहले की योजनाओं में प्रीमियम दर को ढ़कने का प्रावधान था जिसके परिणामस्वरूप किसानों के लिये भुगतान के कम दावे पेश किये जाते थे। ये कैपिंग सरकारी सब्सिडी प्रीमियम के खर्च को सीमित करने के लिये थी, जिसे अब हटा दिया गया है और किसान को बिना किसी कमी के दावा की गयी राशि के खिलाफ पूरा दावा मिल जायेगा।

प्रधानमंत्री फसल योजना के अन्तर्गत तकनीकी का अनिवार्य प्रयोग किया जायेगा जिससे किसान सिर्फ मोबाईल के माध्यम से अपनी फसल के नुकसान के बारें में तुरंत आंकलन कर सकता है।

ये योजना सभी प्रकार की फसलों के प्रीमियम को निर्धारित करते हुये सभी प्रकार की फसलों के लिये बीमा योजना को लागू करती हैं।

प्रधानमंत्री फसल योजना के अन्तर्गत आने वाले 3 सालों के अन्तर्गत सरकार द्वारा 8,800 करोड़ खर्च करने के साथ ही 50% किसानों को कवर करने का लक्ष्य रखा गया है।

प्रीमियम की दरों में एकरूपता लाने के लिये, भारत में सभी जिलों को समूहों में दीर्घकालीन आधार पर बांट दिया जायेगा।

ये नयी फसल बीमा योजना एक राष्ट्र एक योजना विषय पर आधारित है। ये पुरानी योजनाओं की सभी अच्छाईयों को धारण करते हुये उन योजनाओं की कमियों और बुराईयों को दूर करता है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को शुरू करने के कारण–

पूरे विश्व में भारतीय व्यवस्था सबसे अनोखी अर्थव्यवस्था को धारण किये हुये है। भारतीय अर्थव्यवस्था को कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था कहा जाता है क्योंकि भारत की लगभग 71% जनसंख्या कृषि आधारित उद्योगों से अपना जीवन यापन करती है साथ ही पूरे विश्व में लगभग 1.5% खाद्य उत्पादकों का निर्यात भी करता है। भारत दूसरा सबसे बड़ा कृषि उत्पादक देश है जो सकल घरेलू उत्पादन का लगभग 14.2% आय का भाग रखता है। इस तरह ये स्पष्ट हो जाता है कि भारत की लगभग आधी से ज्यादा जनसंख्या और देश की कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 14% आय का भाग कृषि से प्राप्त होता है जिससे देश की अर्थव्यवस्था को एक मजबूत आधार मिलता है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को निम्न प्रश्नों एवं उत्तरों के माध्यम से अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

प्रश्नः फसल बीमा क्या है ?

उत्तरः फसल बीमा किसानों की फसलों से जुड़े जोखिम की वजह से हो सकने वाले नुकसान से रक्षा करने का माध्यम है। इससे किसानों को अचानक आए जोखिम या खराब मौसम से फसल को हुए नुकसान की भरपाई की जाती है।

प्रश्नः इस समय कौन–कौन सी फसल बीमा योजनाएं चल रही हैं?

उत्तरः इस समय राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (एनएआईएस), संशोधित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (एमएनएआईएस), मौसम आधारित फसल बीमा योजना (डब्ल्यूबीसीआईएस) एवं नारियल पाम बीमा योजना (सीपीआईएस) चल रही हैं। राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना और संशोधित कृषि बीमा योजना को रबी 2015–16 के बाद बंद कर किसानों को अधिक सुरक्षा देने के लिए अब खरीफ 2016 से प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) शुरू की जा रही है।

प्रश्नः पहले की योजनाओं – एनएआईएस और एमएनउआईएस को रबी 2015–16 के बाद क्यों बंद किया जा रहा है?

उत्तरः इन योजनाओं में कुछ ऐसे प्रावधान थे जिनसे किसानों को अधिक प्रीमियम देने के बावजूद नुकसान का सही मुआवजा नहीं मिल पा रहा था। बीमित प्रीमियम ज्यादा होने पर तो प्रीमियम पर कैपिंग के कारण बीमा की मूल राशि घटा दी जाती थी। इसके अलावा ज्यादा जोखिम वाले जिलों में ज्यादा प्रीमियम देना पड़ता था, नजदीकी जिलों में प्रीमियम की दर अलग अलग होती थी एवं किसानों के दावों के भुगतान में काफी देर होती थी। ये योजनाऐं किसान के लिए ज्यादा मददगार और फायदेमंद नहीं थीं। इस कारण रबी 2015–16 के बाद इन्हें बंद किया जा रहा है।

प्रश्नः नई योजना, प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीएीई) में किसानों को ज्यादा से ज्यादा कितना प्रीमियम देना होगा?

उत्तरः इस योजना में किसानों को पुरानी सभी योजनाओं की तुलना में सबसे कम प्रीमियम राशि देनी होगी। किसानों को प्रीमियम की रकम का बोझ अब महसूस नहीं होगा। इस बोझ की वजह से पहले बहुत से किसान बीमा नहीं कराते थे और उन्हें नुकसान होने पर कोई भरपाई नहीं मिल पाती थी। नई योजना में अब सभी फसलों के लिए खरीफ में ज्यादा से ज्यादा 2% और रबी में ज्यादा से ज्यादा 1.5%

बीमा दर रखी गयी है। इसके अलावा सालाना बागवानी/व्यावसायिक फसल के लिए प्रीमियम की दर ज्यादा से ज्यादा 5% की गई है। ये दरें पहले से काफी कम है।

प्रश्नः क्या पहले की योजनाओं की तरह इस नई योजना में भी किसानों को कैपिंग की समस्या का सामना करना पड़ेगा?

उत्तरः नहीं, पहले की योजनाओं में अधिक प्रीमियम होने पर बीमित राशि की सीमा तय करने से नुकसान होने पर भरपाई की रकम भी कम हो जाया करती थी, इसलिए नई योजना में इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया है। अब किसानों को बीमित राशि की पूरी रकम के अनुसार पूरा हर्जाना मिल सकेगा।

प्रश्नः इस योजना के तहत कौन–कौन से जोखिम कवर किए गए हैं ?

उत्तरः इस योजना के तहत निम्नलिखित जोखिम कवर किए गए हैं –

1. **उपज नुकसान के आधार पर :** इस योजना में आग लगने के अलावा बिजली गिरने, तूफान, ओला पड़ने, चक्रवात, अंधड़, बवंडर, बाढ़, जलभराव, जमनी धंसने, सूखा, खराब मौसम, कीट एवं फसल को होने वाली बीमारियां आदि जोखिम से फसल को होने वाले नुकसान को शामिल करके एक ऐसा बीमा कवर दिया जायेगा जिसमें इनसे होने वाले सारे नुकसान से सुरक्षा प्रदान की जाएगी।
2. **संरक्षित बुआई के आधार पर :** अगर बीमित किसान बुआई/रोपाई के लिए खर्च करने के बावजूद खराब मौसम की वजह से बुआई/रोपाई नहीं कर सकते तो वे बीमित राशि के 25% तक नुकसान का दावा ले सकेंगे।
3. फसल कटाई के बाद रखी फसल को चक्रवात, बेमौसम बारिश और स्थानीय आपदा जैसे ओलों, जमीन ध ंसने और जल भराव से होने वाले नुकसान का अंदाजा प्रभावी खेत के आधार पर किया जायेगा और इसके अनुसार किसानों के नुकसान का आकलन करके दावा तय किये जाएंगे।

प्रश्नः इस योजना के तहत कौन–कौन से राज्य भागीदार हैं?

उत्तरः यह योजना सभी राज्य सरकारों और संघ शासित क्षेत्रों के लिए स्वैच्छिक है। अतः इस योजना में सभी राज्य और संघ शासित क्षेत्र शामिल हो सकते हैं।

प्रश्नः इस योजना के तहत कौन–कौन से किसान किन–किन फसलों का बीमा करा सकते हैं?

उत्तरः राज्य सरकारों/संघ शासित क्षेत्रों द्वारा तय किए गए इलाके में तय की गई फसल जो कि अनाज, खाद्यान्न, तिलहन, सालाना व्यावसायिक और बागवानी फसल हो सकती है, उगाने वाले किसान बीमा करा सकते हैं। नई बीमा योजना तय किए गए क्षेत्र में केसीसी खाता धारक किसानों (जिन्हे ऋणी किसान कहा जाता है) के लिए अनिवार्य है तथा अन्य सभी किसान अगर चाहें तो बीमा का लाभ ले सकते है।

प्रश्नः इस योजना के तहत किसान बीमा कैसे ले सकता है?

उत्तरः नई बीमा योजना के तहत बैंक, केसीसी खाता (जिन्हें ऋणी किसान कहा जाता है) धारक किसानों के लिए जरूरी प्रीमियम, बीमा कम्पनियों के पास अपने आप भेज देते है और उन किसानो ंका बीमा हो जाता है। अन्य सभी किसान निकटतम बैंक या तय की गई बीमा कंपनी के स्थानीय एजेंट को प्रीमियम का भुगतान करके फसल बीमा करा सकते हैं।

प्रश्नः क्या नई फसल बीमा योजना में खेतवार नुकसान का आकलन करने का नियम है?

उत्तरः नई बीमा योजना में यह नियम बनाया गया है कि स्थानीय आपदाओं जैसे ओला पडने, जमीन धंसने ओर जलभराव से नुकसान होने पर योजना में खेतवार नुकसान का आंकलन किया जाएगा। ठीक उसी तरह फसल कटाई के बाद खेत में पड़ी हुई फसल को 14 दिन के भीतर चक्रवात और बेमौसम बरसात से नुकसान होने पर भी खेतवार आकलन करके भुगतान करने का नियम बनाया गया है।

प्रश्नः क्या इस योजना में खराब मौसम के कारण बुआई/रोपाई न कर पाने पर नुकसान का मुआवजा देने का प्रावधान है?

उत्तरः हाँ, बीमा की गई फसल की खराब मौसम के कारण बुआई/रोपाई न कर पाने पर, बीमा मूल्य राशि का 25% तक सीधे किसान के खाते में जमा करने का प्रावधान इस योजना में किया गया है।

प्रश्नः क्या फसल बीमा में नुकसान के दावों के भुगतान को जल्द से जल्द करने के लिए कोई उपाय किए गये हैं?

उत्तरः नयी योजना में स्मार्टफोन से फसल कटाई आकलन की तस्वीरें खींचकर सर्वर पर अपलोड की जायेंगी जिससे फसल कटाई के आंकडे जल्द से जल्द बीमा कंपनी को मिल सकेगें। इससे दावों का भुगतान करने में लगने वाले समय को काफी कम किया जायेगा। रिमोट सेंसिंग और ड्रोन जैसी तकनीक के इस्तेमाल से फसल कटाई प्रयोग की संख्या को कम

करने में और नुकसान के आकलन की भी हो सकती है।

प्रश्नः इस योजना के तहत बीमा इकाई क्या है?

उत्तरः यह योजना क्षेत्रीय दृष्टिकोण आधार पर अमल में लाई जायेगी। मुख्य फसलों के लिए बीमा इकाई ग्राम/ग्राम पंचायत स्तर पर होगी और अन्य फसलों के लिए बीमा इकाई राज्य सरकार द्वारा तय की जायेगी और यह ग्राम/ग्राम पंचायत से बड़े आकार की भी हो सकती हैं।

प्रश्नः इस योजना के तहत किसानों के लिए बीमित राशि क्या होगी?

उत्तरः इस योजना के तहत बीमित राशि जिला स्तर तकनीकी समिति (डीएलटीसी) द्वारा उस फसल के लिए तय वित पैमाने के बराबर होगी।

प्रश्नः पूर्व की मौसम आधारित फसल बीमा योजना में क्या संशोधन किया गया है?

उत्तरः मौसम आधारित फसल बीमा योजना को संशोधित करके प्रशासनिक मानक और परिचालन के प्रावधान अब पीएमएफबीवाई के समान कर दिए गए हैं जैसे इस योजना के तहत अब किसानों के हिस्से की प्रीमियम दर को सभी फसलों के लिए खरीफ में ज्यादा से ज्यादा 2% तथा रबी में ज्यादा से ज्यादा 1.5% किया गया है और वार्षिक बागवानी–वाणिज्यिक फसल के लिए किसान की प्रीमियम दर को ज्यादा से ज्यादा 5% कर दिया गया है तथा बीमित राशि पर कैपिंग का प्रावधान भी हटा दिया गया है ताकि किसानों को पूर्ण बीमित राशि की क्षतिपूर्ति मिल सके।

इस प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना की विशेशताएं ये हैंः

फसल बीमा में यह सरकार की अब तक की सबसे बड़ी मदद है।

फलस्वरूप किसानों के लिए यह अब तक की सबसे कम प्रीमियम दर होगी।

शेष भार सरकार द्वारा वहन किया जाएगा 90%से ज्यादा होने पर भी।

खाद्यान्न, दलहन, तिलहन फसलों के लिए एक मौसम, एक दर होगी – जिलेवार और फसलवार अलग–अलग दर से अब मुक्ति मिलेगी– खरीफः सिर्फ 2% – रबीः सिर्फ 1.5%

पूरा संरक्षण मिलेगा–बीमा पर कोई कैपिंग नहीं होगी और इसके कारण दावा राशि में कमी या कटौती भी नहीं होगी।

पहली बार जल भराव को स्थानीय जोखिम में शामिल किया गया है।

पहली बार देश भर में फसल कटाई के बाद चक्रवात एवं बेमौसम बारिश का जोखिम भी शामिल किया गया है।

पहली बार सही आकलन और शीघ्र भुगतान के लिए मोबाइल और सैटेलाइट टेक्नोलॉजी के व्यापक उपयोग पर जोर दिया गया है।

पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम : पादप प्रजनक की दृष्टि में

प्रियमेधा

भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

भारत में उगायी जाने वाली सारी फसलों में अधिक पैदावार करने वाली किस्मों एवं संकर प्रजातियों का विकास करना पादप प्रजनकों की जिम्मेदारी है। इस संदर्भ में पादप प्रजनकों के बीच अपनी प्रजनित की गई बीजों का संरक्षण करने की जागरूकता में लगातार वृद्धि हो रही है। पादप संरक्षण के अंर्तगत पौधों की सभी जीनस एवं प्रजातियाँ आती हैं तथा यह संरक्षण 20 वर्ष के लिए प्रदान किया जाता है। भारत में पौधा किस्म के पंजीकरण के लिए पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम (PPVFRA), 2001 अधिनियमित किया गया है। संरक्षित पौधा किस्म के प्रजनक को उस किस्म का उत्पादन करने, बेचने, व्यापारिकरण करने, बाँटने आयात एवं निर्यात करने का अधिकार दिया जाता है। यह संरक्षण पंजीकृत वर्तमान किस्म (Extant Variety) को 15 साल, पेड़ एवं लताओं को 18 साल तथा अन्य फसलों के किस्मों के 15 साल के लिए प्रदान किया जाता है।

भारत में बौद्धिक सम्पदाओं की अतिरेक्ता है। भारत में विभिन्न क्षेत्रों में बौद्धिक संपति बनाने की अपेक्षित क्षमता भी है। हालांकि अनुसंधान के क्षेत्र में दिलचस्पी तथा प्रोत्साहन के लिए, वैज्ञानिक समुदाय में सभी बौद्धिक सम्पदा के संरक्षण की व्यवस्था करना बहुत जरूरी है। अनुसंधान के क्षेत्र में बौद्धिक सम्पदा अधिकार का तात्पर्य वैज्ञानिकों के आविष्कार एवं सृजनात्मकता को संरक्षित करना है। भारत में कृषि अनुसंधानों का अपना एक महत्व है तथा अनुसंधान कर्ताओं के बौद्धिक सम्पदाओं का संरक्षण, भारत में मौजूदा अनुसंधान प्रणाली की क्षमताओं को बढ़ाता है।

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन प्रदान करने की जिम्मेदारी खेती पर है। भारत में उगायी जाने वाली सारी फसलों में अधिक पैदावार करने वाली किस्मों एवं संकर प्रजातियों का विकास करना पादप प्रजनकों की जिम्मेदारी है। इस संदर्भ में पादप प्रजनकों के बीच अपनी प्रजनित की गई बीजों का संरक्षण करने की जागरूकता में लगातार वृद्धि हो रही है।

पौधा किस्म क्या हैं ?

पौधों की नई किस्मों के संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संघ (UPOV) के अनुसार, पौधों का एक ऐसा समूह, जो कि एकल वनस्पतिक वर्गीकरण के सबसे निम्न श्रेणी में आता है, पौधा किस्म कहलाता है। हरेक पौधा किस्म की एक विशेषता होती है जो कि उसे समान प्रजाति के अन्य पौधा किस्मों से अलग करती है।

पौधा किस्मो का संरक्षण –

किसी भी नीवन प्रक्रिया या अनुसंधान, जो कि किसी पौधा किस्म के विकास में शामिल है, उनको संरक्षित करना या विशेष अधिकार प्रदान करना, पौधा किस्मों का संरक्षण कहलाता है। वर्तमान में, तीन मुख्य निकायों के माध्यम से पौधा किस्मों का संरक्षण किया जा सकता है। पौधा के नई किस्मों के संरक्षण केअंतर्राष्ट्रीय संघ (UPOV), विश्व व्यापार संगठन (WTO), बौद्धिक सम्पदा अधिकार के पहलुओं से संबंधित व्यापार पर करार (TRIPS) के माध्यम से तथा जैवविविधता सचिवालय पर सम्मेलन, के प्रावधान के माध्यम से पौधा किस्मों का संरक्षण करता है। हालांकि, प्रत्येक समझौतों के जनादेश भिन्न हैं परंतु नवीन अनुसंधानों के संरक्षण करना सबकी आम जरूरत है। विश्वस्तरीय निकायों के अलावा राष्ट्रीय स्तर पर भी पौधा किस्मों के संरक्षण हेतु पहल की गई है। पौधा किस्मों के संरक्षण होने के कारण किस्मों के आर्थिक मूल्य में वृद्धि होती है। यह पौधा किस्मों की उपलब्धता को बढ़ाता है। इसलिए नई पौधा किस्मों के वितरण कर्ताओंको पौधा किस्मों के संरक्षण से जुड़ी हुई, विविक, आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों का सामना करना पड़ता है।

पादप संरक्षण की अवधारणा की उत्पत्ति –

सबसे पहले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सन् 1930 में पादप पटेंट एक्ट का विनियमन किया गया। इसके बाद नीदरलैंड में सन् 1941 में प्रजनक अध्यादेश जारी किया गया, जिसमें पहली बार पादप प्रजनकों को कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण फसलों

के पहली पीढ़ी के प्रमाणित बीजों के विपणन का अधिकार दिया गया। सन् 1953 में जर्मनी ने पादप किस्मों के संरक्षण तथा फसलों के बीजों के संरक्षण का कानून लागू किया (जिससे पादप प्रजनकों को फसल उत्पादों एवं बीजों के वाणिज्यिकरण का विशेषाधिकार मिला।

सन् 1961 में पेरिस ने पौधों की नई किस्मों के संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संघ को अपनाया। इस संघ की स्थापना के बाद पादप प्रजनकों के उनकी विकसित की गई किस्मों के ऊपर अधिकार को विश्वस्तरीय अभिस्वीकृति मिली। एक बहुपक्षीय संधि होने के कारण, सभी हस्ताक्षरकर्त्ता राष्ट्र इसके प्रावधानों से बंधे हुए थे। यह संधि सन् 1978 एवं 1991 में संशोधित हुई ताकि पादप प्रजनकों के संरक्षण की चुनौतियों को तेजी से समायोजित किया जा सके। सन् 1991 के संशोधन के अनुसार पादप संरक्षण के अंर्तगत पौधों की सभी जीनस एवं प्रजातियाँ आती हैं तथा यह संरक्षण 20 वर्ष के लिए प्रदान किया जाता है। किसी भी पादप किस्म को संरक्षित करने के लिए उस किस्म को कुछ मानदंडों को पूरा करना होता है। इन मानदंडों को सामान्यतः एन.डी.यू.एस. (NDUS) के नाम से उल्लेखित किया जाता है, जो कि, नवीनता (Noverty), स्पष्टता (Distinctness), एकरूपता (Uniformity) एवं स्थिरता (Stability) का संक्षिप्त नाम है।

पौधों की नई किस्मों के संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संघ (UPOV) के अनुसार इन शब्दों के निम्नलिखितानुसार पारिभाषित किया जाता है –

नवीनता – किसी किस्म को तभी नया समझा जाएगा, अगर, प्रजनक अधिकार के लिए आवेदन दाखिल करने की तिथि तक, प्रजनक के द्वारा किस्म के प्रजनन सामग्री को ना तो बेचा गया हो और ना ही दूसरों को उक्त किस्म को उपयोग करने की दृष्टि से दिया गया हो।

स्पष्टता – किसी किस्म की स्पष्टता तभी मानी जाएगी जबकि वह किस्म, अन्य किस्मों, जिनकी जानकारी, आवेदन दाखिल करने की तिथि तक, सामान्य ज्ञान की बात हो, से स्पष्ट रूप से अलग हो।

एकरूपता – किसी किस्म का एकरूप होना तभी माना जाएगा जबकि यह अपने प्रासंगिक विषेशताओं में पर्याप्त रूप से एक समान हो।

स्थिरता – किसी किस्म को तभी स्थिर माना जाएगा जबकि उसकी प्रासंगिक विषेशता, बार–बार उगाये जाने पर भी समान रहे।

व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPS) के अंर्तगत पौधा किस्म संरक्षण

व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार समझौते मे विश्व के अन्य देशों के साथ–साथ भारत भी हस्ताक्षरकर्त्ताओं में शामिल है। यह समझौता जनवरी, 1995 से प्रभावी हुआ। यह समझौता अपने प्रावधानों के अंर्तगत बौद्धिक संपदा जिसमें पादप संरक्षण भी आता है, को शामिल करता है। पादप किस्मों का संरक्षण इस समझौत के अनुच्छेद संख्या 27 के अनुसार, विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के सभी सदस्यों को, अन्वेषकों को पादप संरक्षण प्रदान करना आवश्यक है।

इस अनुच्छेद के अनुसार पौधा किस्मों की पेटेंट द्वारा या प्रभावी सुई जेनेरिस (sui generis) प्रणाली द्वारा या फिर दोनों के संयोजन द्वारा संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। विश्व व्यापार संगठन के प्रति सदस्यों की प्रतिबद्धता, के अनुसार अधिकतर विकासशील देश, जिन्होंने कृषि के क्षेत्र में बौद्धिक संपदा अधिकार नहीं विस्तारित की थी, उनको यह करना पड़ा। विश्व व्यापार संगठन का सदस्य एवं व्यापार से संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते का हस्ताक्षरकर्त्ता होने के नाते भारत के लिए यह अनिवार्य या कि वह पौधा किस्मों को या तो पेटेंट या सुई जेनेरिस प्रणाली या फिर दोनों के द्वारा संरक्षित करें। भारत ने पौधा किस्मों को सुई जेनेरिस प्रणाली द्वारा संरक्षित किये जाने का निर्णय लिया। इस निर्णय के अंर्तगत भारत में पौधा किस्म के पंजीकरण के लिए पौधा किस्म और कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम (PPVFRA), 2001 अधिनियमित किया गया।

पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम 2001 (PPVFRA, 2001))

भारत सरकार द्वारा ऐसे पादप प्रजनकों को एवं किसानों को जिन्होंने नई पौधा किस्मों का विकास किया है या विकास के लिए पादप अनुवांशिक संसाधनों को संरक्षित, विकसित या उपलब्ध कराया है, की पहचान करने एवं उनके अधिकारों को संरक्षित करने के लिए सुई जेनेरिस प्रणाली के द्वारा इस प्राधिकरण को लाने का प्रयास किया गया।

पी. पी. वी. एफ. आर. अधिनियम, 2001, ने कृषि के विकास में तेजी लाई तथा नई पौधा किस्मों के विकास के लिए अनुसंधान एवं विकास कार्यों के क्षेत्र में निवेश को प्रोत्साहित किया, जिसके कारण बीज उद्योग की वृद्धि होने के साथ–साथ किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले बीजों की उपलब्धता में भी तेजी आई।

भारत में चार प्रकार के पौधा किस्मों का पंजीकरण पी. पी. वी. एफ. आर. ए. अधिनियम, 2001, के अंर्तगत किया जा सकता है।

1. नई किस्में (New Varity) ऐसी किस्म जो, भारत में या भारत के बाहर, आवेदन भरने की तिथि के एक साल पहले तक पब्लिक डोमेन में नहीं हो, उन किस्मों को नई किस्में कहते हैं।

2. **वर्तमान किस्म (Extant Variety) –** ऐसी किस्म जो बीज प्राधिकरण, 1996 में अधिसूचित हुई हो, या ऐसी किस्म जिसके बारे में सामान्य स्तर पर जानकारी उपलब्ध हो या किसान के द्वारा विकसित किस्म, या कोई भी ऐसी किस्म जिसकी जानकारी पब्लिक डोमेन में हो, वर्तमान किस्म समझी जाती है।

3. **किसान की किस्म (Farmers Variety) –** ऐसी किस्म जिसकी खेती पारम्परिक रूप से की जा रही है तथा किसान द्वारा अपने खेत में विकसित की गई है या फिर ऐसी किस्म जो कि किसी किस्म की जंगली रिश्तेदार या लैंड रेसेज, जिसके बारे में किसान को सामान्य जानकारी हो, किसान की किस्म कहलाती है।

4. **अनिवार्य रूप निकाली गई किस्म (Essentially Derived Variety) –** 'अनिवार्य रूप से निकाली गई किस्म' उस किस्म को कहा जा सकता है जोकि 'प्रारंभिक किस्म' से या फिर ऐसी किस्म जोकि 'प्रारंभिक किस्म' से निकाली गई हो,से अनिवार्य रूप से निकाली गई हो जबकि यह किस्म 'प्रारंभिक किस्म' की सारी अनिवार्य विशेषताओं को बनाए रखते हुए, उस प्रारंभिक किस्म से स्पष्ट रूप से भिन्न हो।

पी. पी. वी. एफ. आर. ए. अधिनियम, 2001, के अंर्तगत सभी पौधा किस्मों का पंजीकरण नहीं कराया जा सकता है। ऐसी पौध किस्में जिनके व्यापारीकरण को रोकना आम जनता की नैतिकता या जीव–जन्तुओं की स्वास्थ्य के लिए जरूरी हो, या वातावरण के लिए गंभीर खतरा पैदा करने वाला हो या ऐसी किस्म जिसमें टर्मिनेटर तकनीक हो या ऐसी प्रजाति या जीनस की किस्म जोकि केन्द्रीय सरकार की अधिसूचना में सूचीबद्ध ना हो, को इस प्राधिकरण के अंतर्गत पंजीकृत नहीं किया जा सकता है।

प्राधिकरण के अंतर्गत प्रदान की गई छूट

किसानों की छूट – किसान, इस प्राधिकरण के अंतर्गत संरक्षित किस्मों को उगाने, बचाने, उपयोग में लाने, बुवाई करने, पुनः बुवाई करने, हस्तांतरित करने, बांटने या अपने कृषि उत्पादों को बेचने का हकदार है।

प्रजनक की छूट – पादप प्रजनक या अनुसंधानकर्त्ता, पंजीकृत किस्म को अपने प्रयोगों के आयोजन में उपयोग में ला सकता है। अनुसंधानकर्ता, पंजीकृत किस्म को दूसरी किस्मों के विकास के लिए प्रारंभिक किस्म की तरह उपयोग में ला सकता है।

पौधा किस्म के पंजीकरण के लिए आवेदन दाखिल करने की प्रक्रिया

पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण अधिनियम 2001 के उद्देश्य को पूरा करने के लिए पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण प्राधिकरण की स्थापना अक्टूबर, 2005 में की गई। इसका मुख्यालय एन.ए. एस.सी. कॉम्पलेक्स, नई दिल्ली में स्थित है। पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार संरक्षण, आवेदन, शुल्क संरचना इत्यादि की जानकारी इस मुख्यालय एवं वेबसाइट के द्वारा ली जा सकती है।

किसी पौधा किस्म के पंजीकरण के लिए आवेदन दाखिल करने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना होता है –

1. किस्म को दिया गया विशेष नाम
2. किस्म में ट्रमिनेटर तकनीक को शामिल करने वाला को जीन या जीन सीक्वेंस नहीं होने का शपथपत्र।
3. पूर्ण पासपोर्ट आंकड़ा, जिसमें पूर्वज सामग्री के नाम, उसका भारत में भौगोलिक स्थान तथा वे सभी जानकारियाँ होती है जो किसी, किसान (किसानों) (गाँव, समुदाय या संस्थान, जिनकी भागेदारी इस किस्म के प्रजनन एवं विकास में हो।
4. किस्म की विशेषताओं के साथ–साथ एन.यू.डी.एस से संबंधित जानकारियाँ।
5. एक घोषणा पत्र, जिसमें इस किस्म के प्रजनन के उपयोग की गई जनन सामग्री विधिवत् प्राप्त की गई है, का उल्लेख हो।

आवेदनकर्त्ता को एक निश्चित मात्रा में किस्म का बीज, उसके अंकुरण प्रतिशत, शुद्धता एवं बीज गुणवत्ता जाँच के रिपार्ट के साथ, प्राधिकरण में जमा करना जरूरी है। संरक्षित पौधा किस्म के प्रजनक को उस किस्म का उत्पादन करने, बेचने, व्यापारिकरण करने, बाँटने आयात एवं निर्यात करने का अधिकार दिया जाता है। यह संरक्षण पंजीकृत वर्तमान किस्म (Extant Variety) को 15 साल, पेड़ एवं लताओं को 18 साल तथा अन्य फसलों के किस्मों के 15 साल के लिए प्रदान किया जाता है।

क्यों जरूरी है नीम कोटेड यूरिया

संदीप कुमार रस्तोगी
कृषि विज्ञान केन्द्र, गूंता, बानसूर (राज.)

पौधों को हरा भरा एवं स्वस्थ्य रखने के लिए कुल 17 तरह के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। ये पोषक तत्व हैं प्राथमिक (नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम), द्वितीयक (कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं सल्फर) तथा तृतीयक पोषक तत्व (बोरान, जिंक, मैग्नीज, आयरन, कॉपर, मॉलिब्डेनम एवं क्लोरीन)। इनमें से पौधों के विकास तथा प्रजनन के लिये नाइट्रोजन सबसे जरूरी पोषक तत्व होता है।

पौधों की आवश्यकता के अनुसार ये सभी तत्व मृदा में उपलब्ध होते हैं। यदि इन तत्वों की मृदा में कमी पायी जाती है तो उसकी पूर्ति करने के लिए अलग से पोषक तत्व प्रदान किये जाते हैं। नाइट्रोजन की पूर्ति के लिये यूरिया सबसे ज्यादा उपयोग में लिया जाता है क्योकि यूरिया मे अन्य नाइट्रोजन स्रोतों की अपेक्षा सबसे अधिक नाइट्रोजन (46:) पाया जाता है।

आइये जाने की कैसे काम करता है यूरिया ?

जब मृदा में यूरिया डाला जाता है तो वह सबसे पहले अमोनियम (NH4) में बदल जाता है और फिर जलीयकरण (hydrolysis)के बाद नाइट्राइट (NO2) और नाइट्रेट (NO3) में बदल जाता है। यह प्रक्रिया 'नाइट्रीकरण' कहलाती है। अधिकतर पौधे नाइट्रेट के रूप में नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं जबकि कुछ पौधे (जैसे – धान) अमोनिया (NH4) के रूप में भी नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं। जमीन के अंदर नाइट्रीकरण की प्रक्रिया इतनी तेजी से होती है कि नाइट्रोजन की बहुत कम मात्रा ही पौधों को प्राप्त हो पाती है। नाइट्रोजन की शेष मात्रा निक्षालन तथा अन्तः स्रवण (percolation) द्वारा जमीन में नीचे तथा किनारों में चली जाती है जिससे भूमिगत जल प्रदूषित हो जाता है तथा मृदा की प्रकृति भी खराब हो जाती है। यूरिया के जलीयकरण और नाइट्रीकरण द्वारा यूरिया की क्षति एक बड़ी समस्या है। इस समस्या से बचने का सबसे सरल और सफल उपाय है नाइट्रीकरण निरोधी पदार्थ (Nitrification Inhibitor) का उपयोग करना। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है नीम कोटेड यूरिया।

क्या है नीम कोटेड यूरिया?

नीम कोटेड यूरिया से अभिप्राय है साधारण यूरिया को नीम के तेल से आवरित करना यानि की साधारण यूरिया के दानो पर नीम का लेप चढ़ाना । खेतो में नीम कोटेड यूरिया के उपयोग से नाइट्रोजन धीरे–धीरे मृदा में समावेशित होती है। नीम कोटेड यूरिया के प्रयोग से नाइट्रीकरण मंद गति से होने लगता है तथा नाइट्रोजन का लीचिंग व वाष्पीकरण द्वारा ह्रास कम हो जाता है और नाइट्रोजन अधिक समय तक मृदा में रहती है जिससे पौधे नाइट्रोजन को लम्बे समय तक ग्रहण कर सकते हैं। नीम कोटेड यूरिया की कम मात्रा से अधिक उत्पादन मिलता है तथा लागत भी कम आती है। ऐसा पाया भी गया है कि नीम कोटेड यूरिया के इस्तेमाल से फसल की उपज में लगभग 15–20% तक की वृद्धि हो सकती है।

तिलहनी एवं दलहनी फसलों में जिप्सम का महत्व

आर. सी. सचान
भा.कृ.अनु.प.-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राज.)

जिप्सम के उपयोग से देशभर में तिलहनी एवं अनाज वाली फसलों उत्पादन एवं गुणवत्ता में बढोत्तरी तथा भूमि के स्वास्थ में भी सुधार होता रहता है। जिप्सम पोषक तत्व सल्फर (गंधक) का महत्व सबसे अच्छा एवं सस्ता स्त्रोत है तथा देश में असानी से उपलब्ध है।

उपयोग – फसलों के लिए नाइट्रोजन (एन), फॉस्फोरस (पी) तथा पोटास (के) के बाद सल्फर (एस) चौथा प्रमुख पोषक तत्व है। एक अनुमान के अनुसार तिलहनी फसलों के पौधों को फास्फोरस के बराबर में सल्फर की भी आवश्यकता होती है। तिलहनी फसल उत्पादन राज्यों में किस्मों द्वारा प्रायः सल्फर रहित उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। जैसे – डीएपी एवं यूरिया का उर्वरक प्रयोग किया जाता है तथा गंधक युक्त सिंगल सुपर फास्फेट (एसएसपी) का प्रयोग कम मात्रा में किया जा रहा है। तथा उर्वरक उपज देने वाली उन्नत किस्मों द्वारा भूमि से अधिक गंधक का उपयोग किया जा रहा है। एक ही खेत में बार–बार तिलहनी एवं दलहनी फसलों की खेती करने से मृदा में गंधक तत्व की कमी हाती जा रही है।

जिप्सम की मात्रा – मृदा में इस तत्व की कमी दूर करने के लिए एवं फसलों में गुणवत्ता पूर्ण अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिकों ने बुबाई से पहले 250 किलो जिप्सम प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में डालने की सिफारिश की है। जिप्सम के अन्दर 13.5% कैल्शियम तत्व तथा 19% कैल्शियम तत्व पाये जाते हैं। इसके अलावा इसके अलावा क्षारीय भूमियों को सुधारने हेतू मिट्टी परीक्षण के आधार पर जिप्सम का उपयोग कर मिट्टी की दशा में सुधार किया जा सकता है।

तिलहन फसलों में जिप्सम का महत्व – देश भर में बोई जाने वाली खरीफ की फसलें जैसे– मूगंफली, सोयाबीन, तिल, एवं रवी में बोई जाने वाली मुख्यतः भारतीय राई सरसों तथा कुछ क्षेत्रों में बोई जाने वाली तारामीरा (दूंआ) आदि तिलहनी फसलों में गधंक के उपयोग से तेल की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अलावा दाने सुडौल एवं चमकीले बनते हैं। जिसके कारण तिलहनी फसलों की पैदावार 10–15% प्रति हैक्टेयर बढ़ जाती है।

दलहनी फसलों में जिप्सम का उपयोग – जैसे कि वैज्ञानिकों ने पाया है कि दलहनी फसलों में प्रोटीन तत्व भरपूर मात्रा में पाया जाता है। प्रोटीन के निर्माण के लिए गंधक अति आवश्यक पोषक तत्व है। इसके दलहनी फसलों के दाने सुडौल एवं चमकदार बनते हैं। यह पौधों की जडों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु की कियाशीलता को बढ़ाती है। जिससे पौधे के वातावरण में उपस्थित नाईट्रोजन का अधिक से अधिक उपयोग कर सके।

निदेशालय में आयोजित कार्यक्रमों की झलकियाँ

22वें स्थापना दिवस के अवसर पर सिद्धार्थः सरसों संदेश के 6वें अंक का विमोचन करते अतिथिगण

सरकारी कामकाज को हिन्दी में करने के लिए प्रोत्साहन योजना के तहत कर्मचारी को पुरस्कृत करते अतिथि

निदेशालय में आयोजित कार्यक्रमों की झलकियाँ

23वीं ए.आई.सी.आर.पी. की बैठक को सम्बोधित करते हुए
डॉ जे. एस. संन्धू, सहायक उप महानिदेशक (फसल विज्ञान)

डॉ धीरज सिंह, निदेशक, सरसों अनुसंधान निदेशालय
प्रगतिशील किसान को सम्मानित करते हुए

निदेशालय में आयोजित कार्यक्रमों की झलकियाँ

मेरा गांव मेरा गौरव योजना के तहत गोद लिए गांव में आयोजित संगोष्ठी में
विचार रखते हुए निदेशक

मेरा गांव मेरा गौरव योजना के तहत गोद लिए गांव में किसानों को
तकनीकी ज्ञान देते हुए निदेशालय के वैज्ञानिक एवं तकनीकी अधिकारी

निदेशालय में आयाजित हिन्दी कार्यक्रम